शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला - ६७

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

(श्रीसिद्धान्तशिखामणिः का अवधी दोहा-चौपाई में पद्यानुवाद)

सत्प्रेरक

श्रीकाशीविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री 1008 जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर
शिवाचार्य महास्वामी जी महाराज

अनुवादक

प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी
पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. 35/77, जङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी-221001

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. 35/77, जङ्गमवाड़ी मठ,
वाराणसी-221001

© शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

प्रथम संस्करण : 2014

ISBN : 978-93-82639-07-7

मूल्य रु. 300.00

मुद्रक :
मित्तल ऑफसेट्
सुन्दरपुर, वाराणसी

।। ॐ नमः पञ्चजगद्गुरुभ्यः ।।

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के संस्थापक
श्राजगद्गुरुविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री श्री श्री १००८ जगद्गुरु
डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का

शुभाशीर्वचन

श्रीसिद्धान्तशिखामणि अट्ठाईस शैवागमों पर आधारित वीरशैव धर्मग्रन्थ है। जगद्गुरु रेणुकाचार्य और अगस्त्य महर्षि के संवाद रूप में विद्यमान इस ग्रंथ की रचना महान् योगी और कवि श्री शिवयोगि शिवाचार्य ने की है। इस ग्रन्थ में समस्त मानव जाति के मनोविकास का महामार्ग बताया गया है। इसमें बताये गये एक सौ एक स्थल मनोविकास के उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की सीढ़ियाँ हैं। इस ग्रन्थ के पारायण और स्वाध्याय से प्रत्येक जीव भोग और मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। देश-विदेश के सभी शिवभक्तों को इस ग्रंथ का प्रयोजन मिले— इस उद्देश्य से इसका अनुवाद कार्य प्रारंभ किया गया। सहृदय विद्वानों के सहयोग से एक ही वर्ष में कन्नड, मराठी, तेलुगु, मलयालम, हिन्दी, अंग्रेजी, उड़िया, गुजराती, नेपाली एवं रशियन् भाषाओं में अनुवाद कार्य पूर्ण हुआ और अनेक ग्रंथ शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित भी हो गये।

उत्तर भारत में गोस्वामी तुलसीदास विरचित *'श्रीरामचरितमानस'* की बड़ी ख्याति है। हमारे मन में विचार आया कि *श्रीसिद्धान्तशिखामणि* भी *श्रीरामचरितमानस* के जैसे अवधी भाषा में पद्य रूपांतर हो। हमारे इस संकल्प को महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, के संस्कृत-विभाग के पूर्व आचार्य प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी ने केवल सात महीनों में पूर्ण किया।

आपकी श्रद्धा, विद्वत्ता और कार्य के प्रति तत्परता अद्वितीय है। अवधी भाषा में यह पहला वीरशैव धर्मग्रन्थ है। उत्तर भारत के विद्वज्जनों और सामान्य भक्तजनों को भी इसका प्रयोजन अवश्य मिलेगा। प्रो. द्विवेदी जी की इस अपूर्व साहित्य सेवा से हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। काशी विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा और श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य से प्रार्थना करते हैं कि प्रो. प्रभुनाथ जी जीवनभर स्वस्थ रहकर निरन्तर लोक कल्याण के साहित्य की रचना करते रहें। दि. २६.२.२०१४ के दिन काशी जंगमवाडी मठ में सम्पन्न हुई विद्वत् सभा में इस ग्रंथ का सांकेतिक रूप में शिवार्पण हुआ है। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के संस्कृत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. अमरनाथ पाण्डेय जी ने अपने कर-कमलों द्वारा इस ग्रन्थ का शिवार्पण किया। उनके ऊपर भी बाबा विश्वनाथ की कृपा सदा बनी रहे। प्रो. पाण्डेय जी ने *श्रीसिद्धान्तशिखामणि* का साहित्यिक मूल्यांकन करने का संकल्प भी किया है। हम चाहेंगे कि यह भी शीघ्र शिवार्पण हो।

प्रो. द्विवेदी जी के **श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस** का विधिवत् शिवार्पण काशी जंगमवाडीमठ में ७-७-२०१४ से ११-११-२०१४ तक होने वाले पीठारोहण के रजत महोत्सव में सम्पन्न होगा। इस शुभ संदर्भ में *श्रीसिद्धान्तशिखामणि* के विविध रूपों के २५ ग्रंथों का शिवार्पण सम्पन्न होने वाला है। देश-विदेश की विविध भाषाओं के विद्वानों से हम भविष्य में भी आशा रखते हैं कि काशी पीठ की साहित्य सेवा में आप सब लोगों का सहयोग मिलता रहेगा।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के टंकण कुशल चिदानंद ओ. हिरेमठ ने *श्रीसिद्धान्तशिखामणि* के संस्कृत श्लोकों का अक्षर-संयोजन किया है। श्री राजकुमार जायसवाल ने हिन्दी भाग के साथ संपूर्ण ग्रंथ का अक्षर-संयोजन का कार्य सम्पन्न किया है। अत: इन दोनों को अनन्त मंगलाशीर्वाद। इस संस्था के कार्यदर्शी डॉ. जी. सी. केण्डदमठ ने ग्रंथ मुद्रण की पूर्ण जिम्मेवारी समर्थरूप से निभाया है। अत: इनको भी अनंत मंगलाशीर्वाद।

अवधी भाषा-भाषी इस ग्रंथ का संपूर्ण लाभ प्राप्त करें।

सबको अनंतमंगलाशीर्वाद।

इत्याशीषः

प्रस्तावना

भारतीय धर्मपरम्परा में वीरशैव धर्म एक सनातन धर्म माना जाता है। इस धर्म के संस्थापक पाँच आचार्य हैं। उन्हें श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य कहा जाता है। श्रीसिद्धान्तशिखामणि एक वीरशैव धर्म ग्रन्थ है, अतः इस प्रसङ्ग में जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी एवं पञ्चाचार्य का संक्षेप में परिचय देते हुए श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी एवं श्रीसिद्धान्तशिखामणि के बारे में विस्तृत विवरण दिया जा रहा है। हम आगे चलकर उपर्युक्त विषय पर यथासम्भव प्रकाश डालेंगे। उससे जिज्ञासु लोगों की जिज्ञासा का प्रचुर मात्रा में समाधान हो सकेगा।

भारतीय धर्मदर्शनों में वीरशैव धर्मदर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। इसकी स्थापना रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण, धेनुकर्ण एवं विश्वकर्ण नामक पाँच प्रमुख शिवगणों ने शिव के आदेशानुसार की। इन्हीं पाँच शिवगणों को श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य कहते हैं। ये पञ्चाचार्य भूलोक में क्रमशः आन्ध्रप्रदेश के कोल्लीपाकी क्षेत्र में सोमनाथ, मध्यप्रदेश के उज्जैन में स्थित वट क्षेत्र के सिद्धेश्वर, आन्ध्रप्रदेश के श्रीशैल क्षेत्र के मल्लिकार्जुन एवं उत्तरप्रदेश के काशी क्षेत्र के विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगों से प्रकट हुए। उन्होंने धर्मस्थापना के निमित्त रम्भापुरी (कर्नाटक), उज्जैन (मध्यप्रदेश एवं कर्नाटक), ओखीमठ (उत्तराञ्चल) तथा काशी (उत्तर प्रदेश)क्षेत्रों में पाँच धर्मपीठों की स्थापना की। ये पाँच पीठ वीरशैव धर्म के राष्ट्रिय पीठ माने जाते हैं। इन पाँचों पीठों के आचार्यों ने पाँच महर्षियों को सूत्र रूप में वीरशैव धर्म-दर्शन का उपदेश दिया। इनमें रम्भापुरी पीठ के श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी ने महर्षि अगस्त्य जी को पड्विडि-सूत्र का, उज्जैन पीठ के जगद्गुरु दारुकाचार्य जी ने दधीचि महर्षि को वृष्टि-सूत्र का, हिमवत् केदार पीठ के जगद्गुरु घण्टाकर्णाचार्य जी ने व्यास महर्षि को लम्बनसूत्र का, श्रीशैलपीठ के जगद्गुरु धेनुकर्णाचार्य जी ने सानन्द महर्षि को मुक्तागुच्छ-सूत्र और काशी पीठ के जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्य जी ने महर्षि दुर्वासा को पञ्चवर्ण-महासूत्र का उपदेश दिया।

पञ्चाननमुखोद्भूतान्   पञ्चाक्षरमनूपमान्।
पञ्चसूत्रकृतो वन्दे पञ्चाचार्यान् जगद्गुरून्।।

(पञ्चमुख सदाशिव के पाँच मुखों से आविर्भूत होकर न, म, शि, वा एवं य इन पञ्चाक्षरों के समान स्वरूप वाले पाँच सूत्रों की रचना करने वाले जगद्गुरु पञ्चाचार्यों को नमस्कार)। यह परम्परागत श्लोक सुप्रसिद्ध है।

इनमें काशी पीठ के जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्य जी के द्वारा महर्षि दुर्वासा को उपदिष्ट पञ्चवर्णमहासूत्र का भाष्य, हिन्दी व्याख्या के साथ ईसवी सन् २००५ में काशी जङ्गमवाडी

मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इस शोधसंस्था के निदेशक राष्ट्रियपण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने अत्यन्त परिश्रम से हिन्दी अनुवाद के साथ उसका सम्पादन किया है। आशा है अन्य आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट अवशिष्ट चार सूत्रों का संशोधन और सम्पादन भी शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

रम्भापुरी पीठ के जगद्गुरु के द्वारा महर्षि अगस्त्य को पड्विडि-सूत्र के साथ आगमोक्त वीरशैव सिद्धान्त का जो विस्तार से उपदेश किया गया था, उसका संग्रह श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने किया है। यही ग्रन्थ आज श्रीसिद्धान्तशिखामणि के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैव धर्म दर्शनों का प्रतिपादक एक अद्वितीय संस्कृत ग्रन्थ माना जाता है। जैसे वेदान्त-प्रस्थानत्रयी में उपनिषदों की सारभूत भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा उपदिष्ट होने पर भी महर्षि व्यास के द्वारा लिपिबद्ध की गयी, उसी प्रकार जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के द्वारा महर्षि अगस्त्य जी को उपदिष्ट वीरशैव सिद्धान्त को शिवयोगी शिवाचार्य नामक सुप्रसिद्ध वीरशैव आचार्य ने रेणुकागस्त्यसंवाद के रूप में लिपिबद्ध किया। जिस प्रकार भगवद्गीता सभी उपनिषदों का सारसर्वस्व है, उसी प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि कामिकादि वातुलान्त २८ सिद्धान्तागमों का सारभूत है।

इक्कीस परिच्छेदों में उपनिबद्ध श्रीसिद्धान्तशिखामणि में प्रायः १४०० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के पहले परिच्छेद से लेकर चौथे परिच्छेद तक मङ्गलाचरण, कवि का वंशवर्णन, कैलास-पर्वत-वर्णन, जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के लिङ्गावतार का वर्णन और महर्षि अगस्त्य जी के आश्रम आदि का वर्णन किया गया है। इक्कीसवें परिच्छेद में विभीषण की प्रार्थना के अनुसार श्रीलङ्का में जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के द्वारा तीन करोड़ शिवलिङ्गों की युगपत् स्थापना करने की महिमा वर्णित है। इस ग्रन्थ के पञ्चम परिच्छेद से बीसवें परिच्छेद तक के भाग में वीरशैव धर्म-दर्शन का षट्स्थल सिद्धान्त एक सौ एक (१०१) अवान्तर स्थलों के रूप में सविस्तर प्रतिपादित किया गया है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि ही ऐसा पहला ग्रन्थ है, जिसमें वीरशैव षट्स्थल सिद्धान्त को एकोत्तरशत स्थलों के रूप में शास्त्रोक्त रीत्या प्रतिपादित किया गया है। अन्य शैवागमों में षट्स्थलों का केवल नामोल्लेख तथा उनके सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है, लेकिन श्री शिवयोगी शिवाचार्य जी ने आगमोक्त षट्स्थल सिद्धान्त को आधार मानते हुए उन षट्स्थलों को १०१ स्थलों में विस्तृत करके एक अपूर्व एवम् अद्भुत पद्धति से उनका विवेचन किया है। अतः षट्स्थलों के एकोत्तरशत स्थलों के रूप में प्रथम विवेचक श्री शिवयोगी शिवाचार्य ही माने जाते हैं।

ग्रन्थनाम रहस्य– श्रीरेणुकागस्त्यसंवादात्मक इस ग्रन्थ का 'श्रीसिद्धान्त-शिखामणि' नामकरण किया गया है। इसका रहस्य यह है कि कामिकादि वातुलान्त शिवोपदिष्ट २८ शैवागम सिद्धान्तागम के नाम से प्रसिद्ध है।[१] इन सिद्धान्तागमों के उत्तर भाग में वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित है। इस तरह सिद्धान्तागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित वीरशैव सिद्धान्त को श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने अपनी विशिष्ट रचनाशैली में संगृहीत किया है। यह संगृहीत सिद्धान्त शिखामणि, अर्थात् शिरोरत्न के समान होने के कारण इसे 'सिद्धान्तशिखामणि' कहा जाता है। इसी अर्थ का समर्थन करते हुए ग्रन्थकार ने स्वत: कहा है–

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तरम्।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणि:।।

अत: आगम प्रतिपादित अनेक सिद्धान्तों में वीरशैव सिद्धान्त एक शिखामणिसदृश होने के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रतिपादित है। इसीलिए इस ग्रन्थ को श्रीसिद्धान्तशिखामणि कहा गया है।

ग्रन्थकार और उनका काल– ग्रन्थकार श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में श्लोक सं० १३ से २० तक अपने वंश का वर्णन किया है। इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि इनके वंश में बहुत पहले शिवयोगी नामक एक महान् योगी उत्पन्न हुए थे। उनके वंश में मुद्ददेव नामक आचार्य हुए। उनके सिद्धनाथ नामक एक सुपुत्र थे। उनको पुन: शिवयोगी नामक पुत्र उत्पन्न हुए। यह शिवयोगी ही इस ग्रन्थ के रचयिता शिवयोगी शिवाचार्य हैं।

(ग्रन्थकार का वंशवृक्ष)
↓
शिवयोगी
↓
मुद्ददेव
↓
सिद्धनाथ
↓
शिवयोगी (सिद्धान्तशिखामणि के रचयिता)

१. सिद्धान्तशब्द: पङ्कजादिशब्दवद योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशतन्त्रेषु प्रसिद्ध: (रत्नत्रयम्, पृ. ५) ।

इस वंशवर्णन से शिवयोगी शिवाचार्य जी के देश और काल के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ भी पता नहीं चलता। १७वीं शताब्दी में वर्तमान कर्नाटक के मरितोण्टदार्य नामक एक विद्वान् ने इस ग्रन्थ पर तत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत व्याख्या लिखी। उन्होंने अपने व्याख्यान की अवतरणिका के प्रारम्भ में– 'अत्र कलिकालप्रवेशानन्तरं लोकहितार्थं रेणुकगणेश्वर इति प्रसिद्धो रेवणसिद्धेश्वर: कुम्भसम्भवाय वीरशैवशास्त्रमुपदिष्टवान्। तदनन्तरं रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसम्भूत-सिद्धरामेश्वरसम्प्रदायप्रसिद्ध: सकलनिगमागमपारग: शिवयोगीश्वर इत्यभिधानवान् कश्चिन्माहेश्वरस्तद्रेणुकागस्त्ससंवादं निर्विघ्नेन स्वशिष्यान् बोधयितुं स्वमनसि कृतसंकल्पसिद्धान्तश्रेष्ठनिगमागमैक्यगर्भीकारलक्षणस्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं सप्तभि: श्लोकैर्निबध्नाति'[१] इस अवतरणिका में ग्रन्थकार शिवयोगी शिवाचार्यजी को श्रीसिद्धरामेश्वरजी के सम्प्रदाय से सम्बद्ध, अर्थात् उनका वंशज माना गया है। लेकिन मरितोण्टदार्यजी की यह उक्ति तर्कसङ्गत नहीं प्रतीत होती।

महाराष्ट्र प्रान्त के सोलापुर में १२वीं शताब्दी में श्री सिद्धरामेश्वर नामक एक महान् शिवयोगी आचार्य हुए। उनके पिता का नाम मुद्दगौडा था। यहाँ पर शिवयोगी शिवाचार्य ने अपने पूर्ववंशजों में एक का नाम मुद्ददेव कहा है। उधर मुद्दगौडा का पुत्र सिद्धराम था। यहाँ मुद्ददेव को मुद्दगौडा समझकर और सिद्धनाथ को सिद्धराम समझकर मरितोण्टदार्यजी के मन में भ्रम पैदा हो गया होगा। वस्तुत: सोलापुर के श्रीसिद्धरामेश्वर के वंश के साथ श्री शिवयोगी शिवाचार्यजी का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। कर्नाटक के वीरशैव विद्वान् डा. ज. च. नि.[२] और एन. आर. करिबसव शास्त्री[३] आदि विद्वानों ने श्री मरितोण्टदार्यजी की विचारसरणि को विसंगत माना है।

ग्रन्थ के कालनिर्णय में दासगुप्त की अनवधानता– डॉ. एस. एन. दासगुप्त भारतीय दर्शनशास्त्र के बहुत बड़े इतिहासज्ञ माने जाते हैं। इन्होंने A History of Indian Philosophy, Vol.No.5, Page No.44 में श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के काल के बारे में लिखते समय कहा है– 'श्रीसिद्धान्तशिखामणि में श्री बसवेश्वर जी के नाम का उल्लेख होने से यह ग्रन्थ श्री बसवेश्वर के बाद का तथा श्रीकरभाष्य में श्रीसिद्धान्तशिखामणि का उल्लेख होने से यह श्रीपति पण्डिताराध्य जी से पहले की रचना हो सकती है।' किन्तु श्री दासगुप्त जी के मत की अपेक्षा इन दो व्यक्तियों की युक्तियों के आधार पर भी सिद्धान्तशिखामणि का काल श्रीकरभाष्य की अपेक्षा प्राचीन मानना अधिक युक्त है।

१. सि.शि., पृष्ठसंख्या १-२
२. कन्नडमणिकान्तिपीठिका, पृष्ठ-१६ से २० (ई. सन् १९५१) ।
३. सिद्धान्तशिखामणि, कन्नड प्रस्तावना, पृष्ठ- ५, (ई. सन् १९२१) ।

लेकिन यह ग्रन्थ बसवेश्वर के बाद का है, यह कथन निराधार है, क्योंकि श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मूल श्लोकों में कहीं पर भी श्री बसवेश्वर का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु श्री मरितोण्टदार्यकृत तत्त्वप्रदीपिका व्याख्या की अवतरणिका में वीरभद्राचार्य एवं बसवेश्वराचार्य का प्रतिपादन किया गया है।[१]

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसिद्धान्तशिखामणि की तत्त्वप्रदीपिकाव्याख्या के कर्ता श्रीमरितोण्टदार्य श्री बसवेश्वर के परवर्ती थे, न कि मूल लेखक शिवयोगी शिवाचार्य। श्रीदासगुप्त जी सम्भवतः सिद्धान्तशिखामणि के काल के निर्णय के सन्दर्भ में मूलग्रन्थ तथा उसकी व्याख्या में भेद को न समझने के कारण अनवधानता कर बैठे।

यहाँ पर एक तथ्य समझ लेना चाहिये कि महात्मा बसवेश्वर ने अपने एक वचन में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के–

प्रसादाद् देवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाऽङ्कुरः ।।

इस श्लोक को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है।[२] यह श्लोक श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के नवम परिच्छेद का ३६वाँ श्लोक है। इसके अतिरिक्त १२वीं शताब्दी के चन्नबसवेश्वर आदि सन्तों ने जातिवाद के निराकरण प्रसङ्ग में–

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना ।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेदः प्रकीर्त्यते ।। (सि.शि. ११.५५)

श्रीसिद्धान्तशिखामणि के इस श्लोक को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। अतः श्रीशिवयोगी शिवाचार्य १२वीं शताब्दी से पहले ही विद्यमान थे, यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त श्रीपति पण्डिताराध्य विरचित श्रीकरभाष्य में[३] श्रीसिद्धान्त-शिखामणि का सप्रमाण उल्लेख होने के कारण इस ग्रन्थकार का समय श्रीपति पण्डिताराध्य से पूर्व मानना पड़ेगा। श्रीपति पण्डिताराध्यजी के कार्यकाल के बारे में भारतीय दर्शनशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित बलदेव उपाध्यायजी[४] ने ख्रीष्ट सन् १०६० ई० माना है और श्रीकरभाष्य में श्री रामानुजाचार्य जी का तथा उनके श्रीभाष्य का उल्लेख होने के कारण श्रीपति जी श्री

१. सि.शि., ९-३६, तत्त्वप्रदीपिकाव्याख्या, पृष्ठ १८५ (वीरशैव साहित्य संशोधन मंडल), सोलापुर प्रकाशन, (ई. १९९०) ।
२. बसवेश्वर के वचन भाग (१) पृष्ठ, १०७ कर्नाटक विश्वविद्यालय प्रकाशन, ई. सन् १९७६
३. ब्रह्मसूत्र श्रीकरभाष्य, १-१-१
४. भारतीय दर्शन, पृष्ठ-४६१ चौखम्बा ओरियंटालिया, ई. सन् १९७६

रामानुजाचार्य से परवर्ती सिद्ध होते हैं। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जी ने रामानुजाचार्य का काल ख्रीष्ट सन् १०२७ ई० माना है।[१]

काशीपीठ के पूर्व जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य जी[२] तथा श्री टी. एस. नारायण शास्त्री जी[३] ने श्रीकरभाष्य का काल प्राचीन शिलाशासनों के आधार पर क्रमशः ख्रीष्ट सन् १०६४ ई० तथा १०७२ ई० माने हैं। इन सभी विद्वानों के विचारों से श्रीपति पण्डिताराध्य जी का काल निश्चित रूप से ११ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनके द्वारा लिखित श्रीकरभाष्य में उल्लिखित श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रचयिता श्रीशिवयोगी शिवाचार्य जी को उससे भी पूर्ववर्ती अवश्य मानना चाहिये। इसके अतिरिक्त श्रीसिद्धान्तशिखामणि में श्रीशिवयोगी शिवाचार्य ने कहा है–

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बौद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वान्तांशुमालिना।।

इस श्लोक में बौद्ध आदि प्रतिसिद्धान्तों से शिवभक्तों की रक्षा के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की– ऐसा इनके उपर्युक्त वचन से सिद्ध होता है। भारत में बौद्ध धर्म के प्रबल प्रचार का समय ६००-८०० ईस्वी माना जाता है। अतः श्रीसिद्धान्तशिखामणि का रचनाकाल भी ६००-८०० ईस्वी मानना चाहिये। इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि का रचनाकाल लगभग ७वीं शताब्दी से पहले का मानने में कोई अनौचित्य नहीं है।

शिवयोगी शिवाचार्य का देश-विचार– श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रचनाकार श्रीशिवयोगी शिवाचार्य ने अपना वंशवर्णन करते समय कहीं भी अपने गाँव या प्रदेश का नाम निर्देश नहीं किया है। अतः उनके देश के बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है। तथापि मैसूर के वे. पं. काशीनाथ शास्त्रीजी और डॉ. ज. च. नि. महोदय ने 'शिवयोगी शिवाचार्य जी कर्नाटक प्रदेश के रहे, तत्रापि बीजापुर जिले के सालोटगी ग्राम निवासी रहे' इस प्रकार उनके स्थान का प्रतिपादन किया है।[४]

श्रीसिद्धान्तशिखामणि के टीकाकार– वीरशैवों के धर्मग्रन्थ के रूप में प्रख्यात श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर संस्कृत, कन्नड, हिन्दी, मराठी, तेलुगु तथा अंग्रेजी आदि

१. Indian Philosophy, Vol. No.2, Page No. 665, Published D. R. Bhagi, Bombay 1977 A.D.
२. श्रीकरभाष्य चतुःसूत्रीपीठिका, पृष्ठ-४, जङ्गमवाडी मठ, वाराणसी प्रकाशन, ई. सन् १९७५
३. 'The Indian Review' Vol. No. May 1915, Page No. 5
४. सिद्धान्तशिखामणि प्रस्तावना, पृष्ठ-७, काशीनाथ ग्रन्थमाला, मैसूर, ई. सन् १९७२.

भाषाओं में अनेक विद्वानों ने व्याख्याएँ लिखी हैं। वीरशैव धर्म-दर्शन के किसी और संस्कृत ग्रन्थ की इतनी भाषाओं में व्याख्या नहीं है। इससे इस ग्रन्थ की महत्ता और लोकप्रियता सिद्ध होती है।

१७वीं शताब्दी में वर्तमान सोसले रेवणाराध्य नामक कन्नड विद्वान् ने इस ग्रन्थ के ऊपर 'सिद्धार्थबोधिनी' नामक कन्नड व्याख्या की रचना की। उसके बाद १७वीं शताब्दी में श्री मरितोण्टदार्यजी ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत व्याख्या की रचना की। तत्पश्चात् मैसूर के आस्थानविद्वान् लिं. एन्. आर्. करिबसव शास्त्री जी, मैसूर के ही लिं. पं. काशीनाथ शास्त्री जी, एम्. एल्. नागण्णा जी, बीजापुर के ज्ञानयोगाश्रम के संस्थापक श्री मल्लिकार्जुन स्वामीजी आदि बीसवीं शताब्दी के विद्वानों ने कन्नड भाषा में अपनी-अपनी शैली में व्याख्या लिखी है।

कर्नाटक के चित्रदुर्ग के एस्. एम्. सिद्धय्या नामक विद्वान् ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर कन्नड भाषा में 'भामिनीषट्पदी' नामक कन्नड छन्द में पद्य रूप में व्याख्या लिखी है। यह एक विलक्षण कृति है। बंगलोर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृतविभागाध्यक्ष डॉ. एम्. शिवकुमार स्वामी जी ने १९६८ ईस्वी में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के चुने हुए श्लोकों पर अंग्रेजी अनुवाद करके इसे 'श्रीरेणुकगीता' के नाम से प्रकाशित किया है। अभी उन्हीं विद्वान् ने मरितोण्टदार्य जी की व्याख्या के साथ मूल सम्पूर्ण ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में विस्तृत अनुवाद किया है। इसका प्रकाशन ई. सन् २००७ में जंगमवाडी मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा सम्पन्न हो गया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के पूर्व आचार्य पं. राधेश्याम चतुर्वेदी ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या लिखी है। वह ई. सन् २००६ में प्रकाशित हो चुका है।

कर्नाटक के सुप्रसिद्ध संशोधक एवं बहुत बड़े साहित्यरचनाकार डॉ. ज. च. नि. (निडुमामिडि संस्थान के श्री ष. ब्र. डॉ. चन्नबसवराज देशिकेन्द्र महास्वामी जी) महोदय ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ के ऊपर 'जीवनसिद्धान्त' के नाम से विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्या लिखी है, जो छः भागों में १९६९-१९७० ईस्वी में प्रकाशित होकर कर्नाटक में विद्वन्मान्य हो गयी है।

मैं अपने पूर्वाश्रम में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर कन्नड भाषा में प्रवचन करता रहा। धीरे-धीरे उस ग्रन्थ के १०१ स्थलों पर अलग-अलग प्रवचन ग्रन्थ प्रकाशित करने की इच्छा हुई। 'श्रीसिद्धान्तशिखामणिप्रवचनप्रभे' नाम से ई.सन् १९८९ तक इसके छः

भाग प्रकाशित हो गये। काशी जंगमवाडी मठ के पीठाधीश्वर बनने के पश्चात् मैंने अवशिष्ट सभी स्थलों पर प्रवचन लिखकर पूरे १०१ स्थलों को २ बृहद् भागों में (१९४९ पृष्ठ) ई. सन् २००० में छपवाकर पहली बार प्रकाशित कराया।

कन्नड भाषा में प्रकटित प्रवचनशैली के इन दोनों भागों के अभी तक अतिशय लोकप्रिय होने के कारण पाँच संस्करण निकल चुके हैं। इन दोनों भागों के संकलनकार्य में काशी जंगमवाडी मठ के वरिष्ठ शोधच्छात्र और बबलेश्वर बृहन्मठ के पट्टाध्यक्ष श्री ष.ब्र. डॉ. महादेव शिवाचार्य एवं हिप्परगी व एडूर मठाध्यक्ष श्री ष.ब्र. डॉ. सिद्धराम पण्डिताराध्य शिवाचार्य स्वामी जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, अतः वे भी साधुवाद के पात्र हैं।

श्री सिद्धान्तशिखामणि पर आधृत हमारे प्रवचनों का सोलापुर के मराठी वीरशैव साहित्य के बहुत बड़े विद्वान् डॉ. शे. दे. पसारकर ने संग्रह करके मराठी भाषा में उनका अनुवाद किया। उन मराठी प्रवचनों का संग्रह 'जन्म हा अखेरचा' नाम से प्रकाशन हुआ है। उसके भी अभी तक पाँच संस्करण निकल चुके हैं। इस तरह श्रीसिद्धान्तशिखामणि में प्रतिपादित वीरशैव दार्शनिक सिद्धान्त को लोगों को समझाने के लिए अनेक विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं में टीका, व्याख्यान और प्रवचनादि लिखकर वीरशैव साहित्य के संवर्धन में अपना बहुत बड़ा योगदान किया है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर आधृत शोधप्रबन्ध– एक दार्शनिक ग्रन्थ होने के कारण श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर एक समीक्षात्मक अध्ययन करने की इच्छा हमारे मन में हुई। १९७३ ईसवी में वेदान्ताचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन वेदान्तविभागाध्यक्ष स्वर्गीय पं. देवस्वरूप मिश्र के मार्गदर्शन में 'श्रीसिद्धान्तशिखामणेर्दर्शनान्तरीयसिद्धान्तैः सह समीक्षा' विषय पर अनुसन्धान कार्य १९७४ में प्रारम्भ हुआ। ई. सन् १९८४ में अनुसन्धान कार्य पूरा हुआ। बाद में ई. सन् १९८९ में शैवभारती भवन जंगमवाडी मठ के द्वारा इसका प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशन के लिए केन्द्र सरकार के मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय के शिक्षा विभाग के द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी। 'श्रीसिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा' नामक यह शोध-प्रबन्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभाग में शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्ताचार्य की एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान संङ्काय के धर्मागम विभाग की आचार्य परीक्षा के लिए पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हुआ है।

काशी जंगमवाडी मठीय जगद्गुरु विश्वाराध्य गुरुकुल के शोधच्छात्र श्री. ष. ब्र. डॉ. सिद्धराम पण्डिताराध्य शिवाचार्य (सिद्धराम देव हिप्परगी) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के

संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान सङ्काय के वेदान्त विभाग में प्रोफेसर पण्डित सुधांशुशेखर शास्त्री जी के मार्गदर्शन में श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीता का तुलनात्मक अध्ययन कर डाक्टरेट उपाधि प्राप्त की। इस शोधप्रबन्ध में श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीता के तात्त्विक सिद्धान्तों की तुलना की गयी है।

बेंगलोर विभूतिपुर वीरसिंहासन संस्थान मठ के पट्टाध्यक्ष श्री ष.ब्र. डॉ. महान्तलिंग शिवाचार्य स्वामीजीने बेंगलोर विश्वविद्यालय से "शैवागम और श्रीसिद्धान्तशिखामणि" इस विषय पर शोध कार्य करके डाक्टरेट उपाधि प्राप्त की है। यह ग्रंथ २०१३ में प्रकाशित हुआ है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर राष्ट्रिय शास्त्रसङ्गोष्ठी– दिनांक १५ अक्टूबर से १७ अक्टूबर १९९७ तक काशी जंगमवाडी मठ में 'श्रीसिद्धान्तशिखामणि के विविध आयामों पर विचार विमर्श' नामक एक राष्ट्रस्तरीय शास्त्रसंगोष्ठी का आयोजन हुआ था। उसमें पूरे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से बीस प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया था। इस गोष्ठी में विद्वानों के निबन्धवाचन तथा उसके ऊपर चर्चाएँ हुई। इन सारे विषयों को 'सिद्धान्तशिखामणि मीमांसा' नामक शोध ग्रन्थ के रूप में जंगमवाडी मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा ईसवी सन् २००० में प्रकाशित किया गया। इस प्रकार अनेक विद्वानों ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ के ऊपर व्याख्यान, प्रवचन, संशोधन आदि कार्य करके दार्शनिक क्षेत्र में इसकी महत्ता को समझाया है।

श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी की लिङ्गोद्भव लीला– शिव के आदेशानुसार वीरशैव धर्म के संस्थापक श्री जगद्गुरु पञ्चाचार्य भूलोक में शिवलिंग से प्रकट हुए। यह विषय शिवागमों में प्रतिपादित है। श्रीसिद्धान्तशिखामणि के तृतीय एवं चतुर्थ परिच्छेद में श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी की लिंगोद्भव लीला वर्णित है। उसके अनुसार एक बार कैलास में भगवान् शिव की सभा चल रही थी। तब भगवान् शिव ने ताम्बूल प्रसाद देने के लिए रेणुक गणेश्वर का आह्वान किया। उस आह्वान से प्रसन्न रेणुक गणेश्वर शीघ्रता में पास में बैठे हुए दारुक गणेश्वर को लांघ कर शिवजी के पास पहुँच गये। इसे देखकर क्रुद्ध शिवजी ने रेणुक गणेश्वर को भूलोक में जन्म लेने के लिए आदेश दे दिया।

उसी समय रेणुक गणेश्वर ने भगवान् शिवजी से प्रार्थना की– "हे भगवन्! आपके आदेश से मैं भूलोक जाने को तैयार हूँ लेकिन सामान्य मनुष्यों जैसा जन्म मुझे न लेना पड़े, आप ऐसी कृपा करें।" इस प्रार्थना से सन्तुष्ट शिवजी ने कहा– "हे रेणुक! तुम बिल्कुल भयभीत न हो। भूलोक के त्रिलिङ्ग देश (आन्ध्र प्रदेश) में विद्यमान सुप्रसिद्ध श्रीशैल क्षेत्र

की उत्तर दिशा में 'कोल्लिपाक' नामक एक क्षेत्र है। वहाँ मैं सोमेश्वर लिङ्ग के नाम से विद्यमान हूँ। तुम उस शिवलिङ्ग में प्रकट हो जाओ। तब तुम्हें मानुष भाव का स्पर्श नहीं होगा। इस प्रकार तुम लिङ्गोद्भव होकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए मेरे द्वारा उपदिष्ट वेद-वेदान्तसम्मत शिवाद्वैत सिद्धान्त अर्थात् वीरशैव सिद्धान्त की स्थापना करोगे।" शिव के आदेशानुसार रेणुक गणेश्वर उस सोमेश्वर शिवलिङ्ग से दिव्य देहधारी होकर प्रकट हुए। उसी घटना को जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी की लिङ्गोद्भव लीला कहते हैं।

मार्कण्डेय महर्षि को यम के भय से मुक्त करने के लिए जैसे शिव एक स्थावर लिङ्ग से प्रकट हुए थे एवं प्रह्लाद को अनुगृहीत करने के लिए नृसिंह भगवान् जैसे राजमहल के स्तम्भ से प्रकट हुए थे, उसी प्रकार जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी लोकोद्धार के लिए श्री सोमेश्वर शिवलिङ्ग से प्रकट हुए। जन्म और प्राकट्य में बहुत बड़ी भिन्नता है। जन्म होने के लिए जन्म से पहले जनक और जननी की सहविद्यमानता नितान्त जरूरी होती है, किन्तु प्रकट होने के लिए जननी-जनकों की आवश्यकता नहीं होती। जो लोग योगसिद्ध होते हैं, उनका अस्तित्व पहले से ही विद्यमान होता है। वे जहाँ चाहे वहाँ प्रकट होने की क्षमता रखते हैं। श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य शिव के ही समान अणिमादि अष्ट सिद्धियों के धनी थे। अतः उनका भूलोक में शिवलिंग से प्रकट होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

महर्षि पतंजलि– 'ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च' (यो.सू. ३.४५) के योगसूत्र में और 'यथा परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यतः प्रविशति' भोजवृत्ति में कहा गया है, योगसामर्थ्य के द्वारा अणिमादि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त योगी अणुरूप धारण करके अत्यन्त कठिन से कठिन वज्रादि में भी प्रविष्ट होकर पुनः प्रकट हो सकता है।

ऐसी अलौकिक घटनाएँ सामान्य जनता के लिए असम्भव सी लगती है, पर योगसिद्धों के लिए यह सहज घटना मानी जाती है। काशी में विशुद्धानन्द नामक एक दिव्य योगी २०वीं शताब्दी में हुए थे। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज जी उनके परमशिष्य रहे। एक बार योगसामर्थ्य की चर्चा करते हुए विशुद्धानन्दजी ने 'जात्यन्तरपरिणाम' इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा कि एक जाति की वस्तु को दूसरी जाति में परिवर्तित किया जा सकता है। इसे सुनकर पं. गोपीनाथ कविराज के– "यह कैसे सम्भव होगा?" ऐसा तर्क प्रस्तुत करने पर विशुद्धानन्द जी ने अपने हाथ में स्थित एक गुलाब के फूल को योगसामर्थ्य से उनकी (गोपीनाथ की) इच्छा के अनुसार लाल बन्धूक कुसुम के रूप में परिवर्तित करके दिखाया। इस विषय की चर्चा पं. गोपीनाथ कविराज जी ने कल्याण मासिक के योगाङ्क के पृष्ठ ७४८ में 'सूर्यविज्ञान' नामक लेख में की है।

काशी के प्रसिद्ध तैलङ्ग स्वामी जी ने २८० वर्ष तक जीवित रहकर अनेक लीलाएँ की हैं। उनकी लीलाओं के बारे में श्री राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय नामक लेखक ने २८.०१.१९८३ में यहाँ के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' अखबार में एक लेख लिखा था। उसके अनुसार एक ब्रिटिश अधिकारी ने तैलङ्ग स्वामीजी को नङ्गे घूमने की वजह से जेल में बन्द कर दिया। लेकिन दूसरे दिन ताला बन्द रहने के बावजूद तैलङ्ग स्वामीजी बाहर निकल आये थे। इस तरह सारे देश में योग की चमत्कारिक घटनाएँ घटती आयी हैं। अत: साक्षात् शिव के सान्निध्य में रहने वाले एक शिवगण श्रीरेणुक गणेश्वर की शिव के समान अणिमादि अष्टसिद्धि से युक्त होने के कारण लिङ्गोद्भव लीला-एक सहज सम्भवनीय घटना है।

श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य द्वारा त्रिकोटि शिवलिङ्ग स्थापनलीला- श्रीसिद्धान्तशिखामणि के अन्तिम २१वें परिच्छेद में त्रिकोटि शिवलिंग स्थापन-लीला का वर्णन आया है। उस परिच्छेद का सार यह है कि लङ्काधिपति रावण ने नवकोटि लिङ्ग की स्थापना करने का सङ्कल्प किया था। अपने जीवन काल में ही उसने छ: कोटि लिङ्गों की स्थापना की थी। श्रीराम के साथ युद्ध करते-करते स्वर्ग को प्राप्त कर रहे रावण ने अपने छोटे भाई विभीषण को बुलाकर अपने शेष संकल्प को पूरा करने का दायित्व सौंपा। एक ही मुहूर्त में तीन कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना करने के लिए विभीषण बहुत दिन तक चिन्तित रहे।

उसी समय श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी महर्षि अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश करने के बाद व्योम मार्ग से श्रीलङ्का नगरी आ पहुँचे। श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के श्रीलङ्का में पधारने का समाचार सुनकर विभीषण उनके पास आए और उन्हें गौरव के साथ अपने राजमहल में ले गये। वहाँ पर उनकी वैभव के साथ पादपूजा करके उन्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण के सङ्कल्प को सुनाया। उस समय जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी ने रावण के सङ्कल्प को पूर्ण करने के लिए एक ही समय में तीन कोटि गुरु-रूप धारण करके तीन कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना की। जगद्गुरु रेणुकाचार्य ने अपनी योगसिद्धि से अपने ही जैसे तीन करोड़ आचार्यों का रूप धारण करके अपनी महिमा को दिखाया।

इस प्रकार, श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य ने भूलोक में सोमेश्वर लिङ्ग से आविर्भूत होकर महर्षि अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश दिया। बाद में श्रीलङ्का में त्रिकोटि शिवलिङ्गों की स्थापना करके अपनी महती शक्ति का प्रदर्शन किया। अवतार का प्रयोजन पूर्ण होने के पश्चात् रेणुकाचार्य पुन: उसी सोमेश्वर शिवलिङ्ग में अन्तर्हित हो गये।

सारांश यह कि श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य ने लोककल्याण एवं वीरशैव धर्म की स्थापना के लिए अवतीर्ण होकर लोगों को अपनी महिमा का भान कराया और महर्षि

अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का ज्ञान दिया। वह ज्ञान श्री शिवयोगी शिवाचार्य के द्वारा संगृहीत होकर आज श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रूप में सबके लिए सुलभ हो गया है। यह ग्रन्थ वीरशैव धर्म का प्रमुख आकर ग्रन्थ माना जाता है।

श्रीजगद्गुरु चन्द्रशेखरशिवाचार्य महास्वामी जी
जंगमवाडी मठ, वाराणसी

आत्मनिवेदन

परमपूज्य जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी महाराज काशीस्थ जंगमबाड़ी मठ में प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि की पूर्वसंध्या में अनेक पवित्र धर्मानुष्ठानों के साथ ही विद्वत्सत्कार का आयोजन करते हैं। मैं विगत वर्षों से उनका कृपा-भाजन हूँ। महाशिवरात्रि, सं. 2069 वि. की पूर्वसन्ध्या के शुभ अवसर पर मैंने अवधी दोहों में विरचित **श्रीरामानन्दसतसई** श्रद्धेय स्वामी जी की सेवा में भेंट की। उसे देखकर वे परम प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझसे कहा— "वीरशैव सम्प्रदाय का श्रेष्ठ सम्मानित आधार ग्रन्थ है- **श्रीसिद्धान्तशिखामणि**। इसका अनुवाद, हिन्दी सहित अनेक भारतीय भाषाओं में हो चुका है और कई विदेशी भाषाओं में भी हुआ है। महाराष्ट्री भाषा की अभंग शैली (गेय पदों) में भी इसका अनुवाद हो चुका है। उत्तर भारत में भक्तजन **श्रीरामचरितमानस** का सङ्गीतमय पाठ करते हैं। सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि श्रीसिद्धान्तशिखामणि की भी इसी पद्धति में गेय पदों में प्रस्तुति हो। आपकी श्रीरामानन्दसतसई देखकर मुझे लगा कि आप ऐसा कर सकते हैं।"

मैंने विनयपूर्वक पूज्य महास्वामी जी से कहा कि प्रयत्न करूँगा। इसके पूर्व भी मैंने पूज्य स्वामी जी के निर्देशानुसार वीरशैव सम्प्रदाय के दो लघु ग्रन्थों का भाषिक परिमार्जन करके उन्हें नूतन कलेवर प्रदान किया था। सम्भवतः उन कार्यों से सन्तुष्ट रहने के कारण ही उन्होंने मुझसे ऐसा प्रस्ताव किया होगा। जो भी हो, मैंने इसे भगवान् श्रीकाशी विश्वनाथ एवं माता अन्नपूर्णा का प्रसाद ही माना।

पूज्य महास्वामी जी ने अभीष्ट कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रसाद स्वरूप श्रीसिद्धान्तशिखामणि (हिन्दी अनुवाद सहित) ग्रन्थ अनुग्रहपूर्वक दे दिया। मैं उसे लेकर घर चला आया और मनोयोगपूर्वक निर्दिष्ट कार्य में संलग्न हुआ। काशी से बाहर की यात्राओं और प्रवास में यह कार्य स्थगित रहता था किन्तु जब मैं घर रहता था तो मात्र इसी पवित्र कार्य में अपना समय लगाता था। इसके लए मैंने इतर पठन और लेखन कार्यों को विराम दे दिया था। इस प्रकार, श्रीसिद्धान्तशिखामणि का अवधी छन्दोबद्ध रूपान्तरण प्रायः सात महीनों में सम्पन्न हो सका।

परमेश्वर जो कार्य जब और जिससे कराना चाहते हैं, करा लेते हैं। इस कार्य के सम्बन्ध में भी यह मान्यता पूर्णतः चरितार्थ है। पूज्य महास्वामी जी की प्रबल

हार्दिक इच्छा और मेरे श्रद्धेय गुरुवर्य का शुभाशीष इसमें मुख्य हेतु हैं। श्रीसिद्धान्तशिखामणि एक गूढ़ दार्शनिक ग्रन्थ है किन्तु उसकी 'तत्त्वप्रदीपिका' संस्कृत व्याख्या और 'ज्ञानवती' हिन्दी अनुवाद से मुझे पर्याप्त सहायता मिली। अतः, हिन्दी व्याख्याकार डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता सम्प्रेषित करना मेरा धर्म है।

'श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस' आप सहृदय विज्ञजनों के हाथों में पहुँच गया- यह परमेश्वर का अनुग्रह है। मुख्यतः यह अवधी की चौपाइयों और दोहों में ही निबद्ध है। किन्तु कहीं-कहीं छन्द और सोरठा का भी प्रयोग हो गया है। दर्शन के पारिभाषिक पदों को बैठाने में आयास अवश्य हुआ और अनेकत्र लय बनाये रखने के लिए उन्हें तोड़ना भी पड़ा है। तथापि, विज्ञजन अन्वयपूर्वक उनका समायोजन करके मूल अर्थ तक पहुँच जायेंगे। श्लोकों में निबद्ध मान्य सैद्धान्तिक प्रतिपाद्य की रक्षा करने का पूरा ध्यान रखा गया है; किन्तु यदि कहीं एतद्विषयक त्रुटि या प्रमाद परिलक्षित हो तो वह मेरी असमर्थता का सूचक है और तदर्थ क्षमाप्रार्थी हूँ।

आगमिक मान्यताओं के परिवेश में वीरशैवसिद्धान्त का निरूपण होने के कारण **श्रीसिद्धान्तशिखामणि** के इस अवधी रूपान्तर **श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस** में काव्यात्मकता तो नहीं आ पायी है किन्तु प्रयुक्त छन्दों के अनुरूप लयात्मक गेयता का अभाव नहीं है। इसका सङ्गीतमय पाठ करके भक्तजन पुण्य के साथ ही आनन्द भी प्राप्त करेंगे।

यह अनूदित कृति कैसी बन पड़ी है— इसका निर्णय तो सहृदय जन करेंगे। तथापि, यदि पूज्य महास्वामी जी को इसका अवलोकन तथा श्रवण कर मनस्तोष और प्रसन्नता होती है तो उनकी हार्दिक इच्छा-सम्पूर्ति में निमित्तभूत यह जन अवश्य ही कृतार्थ होगा।

अन्ततः,

उमा संभु मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
मोहि ते बनेउ जो साधु असाधू। छमहु सन्त जन मम अपराधू।।

।।शं करोतु श्रीशङ्करः।।

वाराणसी
मकर-सङ्क्रान्ति, 2070 वि.
दि. 15 जनवरी, 2014 ई.

विद्वच्चरणचञ्चरीक-
प्रभुनाथ द्विवेदी

विषयानुक्रमणिका

शुभाशीर्वचन	***iii-iv***
प्रस्तावना	***v-xvi***
आत्मनिवेदन	***xvii-xviii***
विषयानुक्रमणिका	***xix-xx***
श्रीसिद्धान्तशिखामणिन्यासादि	***xxi-xxii***
श्रीसिद्धान्तशिखामणिध्यानम्	***xxiii***
श्रीसिद्धान्तशिखामणिमाहात्म्यम्	***xxiv***
फलश्रुति	***xxiv***
प्रथमः परिच्छेदः	**०१-११**
द्वितीयः परिच्छेदः	**१२-२१**
तृतीयः परिच्छेदः	**२२-४३**
चतुर्थः परिच्छेदः	**४४-५७**
पञ्चमः परिच्छेदः	**५८-७५**
षष्ठः परिच्छेदः	**७६-९१**
सप्तमः परिच्छेदः	**९२-१०७**
अष्टमः परिच्छेदः	**१०८-११९**
नवमः परिच्छेदः	**१२०-१४१**
दशमः परिच्छेदः	**१४२-१५९**
एकादशः परिच्छेदः	**१६०-१७७**

द्वादशः परिच्छेदः	**१७८-१८९**
त्रयोदशः परिच्छेदः	**१९०-१९९**
चतुर्दशः परिच्छेदः	**२००-२११**
पञ्चदशः परिच्छेदः	**२१२-२२७**
षोडशः परिच्छेदः	**२२८-२४५**
सप्तदशः परिच्छेदः	**२४६-२६३**
अष्टादशः परिच्छेदः	**२६४-२७९**
एकोनविंशः परिच्छेदः	**२८०-२९९**
विंशः परिच्छेदः	**३००-३१७**
एकविंशः परिच्छेदः	**३१८-३३०**

॥ श्री जगद्गुरवः पंचाचार्याः प्रसीदन्तु ॥

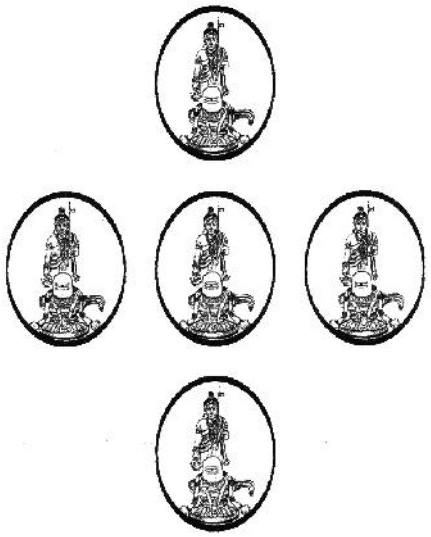

ॐ नमः पञ्चाचार्येभ्यो
नमः पञ्चाननमुखोद्भूतेभ्यो
नमः पञ्चसूत्रकर्तृभ्यो
नमः पञ्चाक्षरमनुस्वरूपेभ्यो
नमः शिवाद्वैतविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो
नमो वीरशैवमहामतसंस्थापकेभ्यो
नमो जगद्गुरुभ्यः॥

।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणि न्यासादिः।।

अथ ऋष्यादिन्यासः

अस्य श्रीसिद्धान्तशिखामणिशास्त्रमहामन्त्रस्य
भगवान् श्रीशिवयोगिशिवाचार्य ऋषिः।
अनुष्टुप् छन्दः। श्री सच्चिदानन्दस्वरूपः परशिवो देवता।

सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः
इति बीजम्।

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी
इति शक्तिः।

शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं श्रुणु सादरम्
इति कीलकम्।

●

अथ करन्यासः

एक एव शिवस्साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः
इति अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः
इति तर्जनीभ्यां नमः।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः
इति मध्यमाभ्यां नमः।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थितः
इति अनामिकाभ्यां नमः।

मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः
इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

बीजे यथाऽङ्कुरः सिद्धस्तथाऽत्मनि शिवः स्थितः
इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

●

अथ अंगन्यासः

एक एव शिवस्साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः
इति हृदयाय नमः।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः
इति शिरसे स्वाहा।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामक:
इति शिखायै वषट्।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थित:
इति कवचाय हुम्।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थित:
इति नेत्रत्रयाय वौषट्।
बीजे यथाऽङ्कुर: सिद्धस्तथाऽत्मनि शिव: स्थित:
इति अस्त्राय फट्।

श्रीशिवप्रीत्यर्थे श्रीसिद्धान्तशिखामणिपाठे विनियोग:।

●●●

।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणिध्यानम्।।

स्वस्ति श्रीगणनायकेन मुनयेऽगस्त्याय तत्त्वार्थिने
शिष्याय प्रतिबोधिते भगवता श्रीरेणुकेन स्वयम्।
तात! त्वं शिवयोगिवर्यसुकृतिर्मे मानसे मन्दिरे
श्रीसिद्धान्तशिखामणे वस सदा ज्ञानप्रदीपो भव।।१।।

शरणागतदीनार्तपरित्राणैकहेतवे।
श्रीरेणुकगणेशाय ज्ञानमुद्राय ते नम:।।२।।

अगस्त्यसंशयव्रातमहाध्वान्तांशुमालिनम्।
वन्दे शिवसुतं देवं रेणुकाख्यं जगद्गुरुम्।।३।।

नम: शिवाचार्यवराय तुभ्यं श्रीवीरशैवागमसागराय।
विनाऽपि तैलं भवताऽत्र येन प्रज्वालितो ज्ञानमणिप्रदीप:।।४।।

यस्मिन्नागमशास्त्रतत्त्वमखिलं सम्यक् च संसूचितं
भक्तैर्वांञ्छितभुक्तिमुक्तिफलदं यत्कल्पवृक्षात्मकम्।
तं शैवागमसम्मतं निगमविद् विद्वद्भिरासेवितं
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं प्रतिदिनं ध्यायेत् सदा सादरम्।।५।।

पूज्यश्रीशिवयोगिवर्यरचितं सिद्धान्तरत्नाकरं
सूक्ष्मं धार्मिकतात्त्विकस्थलयुतं चैकाधिकं तत् शतम्।
त्रैलोक्यं पदमादिमं परपदं सर्वान्तिमे योजितं
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं दिनदिनं ध्यायेत् सदा शांतिदम्।।६।।

●●●

।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणिमाहात्म्यम्।।

य: पठेत् प्रयतो नित्यं श्रीसिद्धान्तशिखामणिम्।
शिवसायुज्यमाप्नोति भयशोकादिवर्जित:।।१।।

सदाऽध्ययनशीलस्य श्रीसिद्धान्तशिखामणे:।
क्षीयन्ते सर्वपापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।२।।

जलस्नानाद् वरं पुंसां श्रीसिद्धान्तशिखामणौ।
ज्ञानार्णवे सदा स्नानं संसारमलनाशनम्।।३।।

श्रीरेणुकगणाध्यक्षमुखपद्माद्विनि:सृत:।
कण्ठपीठे सदा धार्य: श्रीसिद्धान्तशिखामणि:।।४।।

श्रीरेणुकगणाध्यक्षवचनामृतसागरम्।
पायं पायं सदा पुंसां पुनर्जन्म न विद्यते।।५।।

सर्वागमव्रजो गावस्तासां दोग्धा च रेणुक:।
वत्सोऽगस्त्य: सुधीर्भोक्ता दुग्धं शिखामणिर्महान्।।६।।

एकं शास्त्रं श्रीशिवाद्वैतसंज्ञम् एको देव: श्रीमहादेव एव।
एको मन्त्र: शैवपञ्चाक्षरोऽयम् कर्माप्येकं इष्टलिङ्गार्चनं हि।।७।।

।। अथ फलश्रुति:।।

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं श्रीगोप्यचिन्तामणिम्।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां भुक्तिं च मुक्तिं पराम्।।

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

मंगलाचरन

दोहा - श्री गुरु परम उदार चित करुना कँह सुभ खान।
प्रनवउँ तेहि के पदपदुम जे भवसागर जान।।१।।
परम अग्य हौं जड़मती सुमिरौं सम्भु सुजान।
सकल लोक कल्यान हित जे कीन्हें बिष पान।।२।।
जाकी महिमा अगम अति पार न पावहिं बेद।
सो जोगीस्वर परमसिव ब्यापक अनत अभेद।।३।।
बिना ग्यान नहिं मुकुति महि कहहिं सास्त्र सबु लोग।
मुकुति हेतु नर जतन बहु जप तप नाना जोग।।४।।
बीरसैवसिद्धांत यहु ग्यानहि दिब्य प्रकास।
जौ उर अंतर प्रबिसि तौ भव बंधन को नास।।५।।
रिसि अगस्ति कँह दीन्ह जस श्री रेनुक यहु ग्यान।
जगत बिदित संबाद सुभ निगमागमहि प्रमान।।६।।
श्रीसिवजोगी उर धरेउ सिवाचार्ज महराज।
श्रीसिद्धांतसिखामनी तारन भयउ जहाज।।७।।
सिवाचार्ज सिवजोगि पुनि किरिपा करि मति धीर।
निज सिष्यन्ह उपदेसेउ बिमल ग्यान गंभीर।।८।।
बीरसैवसिद्धांत यहु सहजहिं जानउ लोग।
अवधी छंदन्हि रचि रहेउँ नासन कौ भवरोग।।९।।
'श्रीसिद्धांतसिखामनिमानस' धरि सुभ नाउँ।
बीरसैवसिद्धांत यहु परम मुकुति कै ठाउँ।।१०।।
जे गावहिं अरु सुनहिं एहि भरि श्रद्धा बिस्वास।
सिवसाजुज्य पाइ ते भव तर बिनहिं प्रयास।।११।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
प्रथमः परिच्छेदः

त्रैलोक्यसम्पदालेख्यसमुल्लेखनभित्तये।
सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः।।१।।

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य विषयं यं प्रचक्षते।
वेदान्तिनो जगन्मूलं तं नमामि परं शिवम्।।२।।

यस्योर्मिबुद्बुदाभासः षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयः।
निर्मलं शिवनामानं तं वन्दे चिन्महोदधिम्।।३।।

यद्भासा भासते विश्वं यत्सुखेनानुमोदते।
नमस्तस्मै गुणातीतविभवाय परात्मने।।४।।

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वोन्मेषविधायिने ।
निष्कलङ्कस्वभावाय नमः शान्ताय शम्भवे।।५।।

स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय स्वेच्छावर्तनवर्तिने।
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय नमः साम्बाय शम्भवे।।६।।

यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम्।
नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

अथ
श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
पहिला परिच्छेद

दोहा - **परम रम्य तिरलोकु यहु संपति रही सुहाय।**
तेहि कँह रचना रचन कौ सुभ आधार लहाय।।1।।

चौपाई - सोइ आधार रूप भगवाना। चिदानंद सत को नहिं जाना।।
परम तत्व सिव कहहिं सुजाना। ब्रम्हरूप ब्रम्हांड समाना।।
सुमिरउँ ब्रम्हरूप जगदीसा। बार बार नावउँ पद सीसा।।
जेहि बेदांत बिग्य अस कहहीं। ब्रह्म चराचर कारन अहहीं।।
सोइ ब्यवहार बिषय सब जानहिं। सगुन अगुन कछु भेद न मानहिं।।
सो परमातम सिव अबिनासी। सुमिरत भजत सकल सुखरासी।।
तेहि सिव करउँ सतत परनामा। श्रद्धा सहित सकल तजि कामा।।

दोहा - **छत्तिसतत्वसमूह जेहि उर्मिबुद्‌बुदाभास।**
सो सिव चित्सागर बिमल हिअ मँह भरत हुलास।।2।।

चौपाई - करउँ ताहि पुनि पुनि परनामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।
जेहि ते लहि सुचि सुठि परकासू। सकल जगत आलोक निवासू।।
जेहि सुख खानि मानि सब लोगू। लहि आनन्द अनंदित भोगू।।
गुनातीत बैभव बिख्याता। परमातमा परम सुख दाता।।
तेहि पद कमल नवावउँ सीसा। सुमिरत जपत जाँहिं अघ खीसा।।
जहँ लगि उत्पति प्रलय कहानी। सो सबु संभु लागि बिग्यानी।।
निष्कलंक निरमल सति भाऊ। छाँड़ि संभु नहिं औरउ काऊ।।
परम सान्त सचराचर स्वामी। संभु नमामि नमामि नमामी।।

दोहा - **जथा मोर के अण्डरस बिबिध बरन परिछिन्न।**
जथाकाल प्रगटहिं तथा संभु ते सबु उद्‌भिन्न।।3।।

यामाहुः सर्वलोकानां प्रकृतिं शास्त्रपारगाः।
तां धर्मचारिणीं शम्भोः प्रणमामि परां शिवाम्।।८।।

यया महेश्वरः शम्भुर्नामरूपादिसंयुतः।
तस्यै मायास्वरूपायै नमः परमशक्तये।।९।।

शिवाद्यादिसमुत्पन्नशान्त्यतीतपरोत्तराम्।
मातरं तां समस्तानां वन्दे शिवकरीं शिवाम्।।१०।।

इच्छाज्ञानादिरूपेण या शम्भोर्विश्वभाविनी।
वन्दे तां परमानन्दप्रबोधलहरीं शिवाम्।।११।।

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी।
अहर्निशमहं वन्दे तामीशानमनोरमाम्।।१२।।

कश्चिदाचारसिद्धानामग्रणीः शिवयोगिनाम्।
शिवयोगीति विख्यातः शिवज्ञानमहोदधिः।।१३।।

शिवभक्तिसुधासिन्धुजृम्भणामलचन्द्रिका।
भारती यस्य विदधे प्रायः कुवलयोत्सवम्।।१४।।

चौपाई - जगदम्बिका सकल गुन खानी। अर्धांगिनि सिव संभु भवानी।।
करउँ प्रनाम दुहूँ कर जोरे। संभु सहित निज भाग निहोरे।।
संभु स्वबस संतत भगवंता। कहहिं बेदसम्मत सबु संता।।
निज इच्छा बल बिग्रह धरहीं। निज इच्छा सबु कारज करहीं।।
निज इच्छा बल रचहिं त्रिलोकी। संभुहि करउँ प्रनाम बिलोकी।।
जहाँ पहुँचि ऐश्वर्ज बिलाहीं। जिन्हहिं देखि सौन्दर्ज लजाहीं।।
सोइ त्रिसूलधारी सिव नामा। करउँ ताहि सादर परनामा।।
निगमागम सद्ग्रंथ पुराना। सास्त्र सोधि जिन्ह मरम बखाना।।

दोहा - जे पंडित ते दृढ़ कहहिं प्रकृति लोक को मूल।
सोइ सिवा सहगामिनी बान्हे गाँठि दुकूल॥4॥

चौपाई - परमसिवा जे अहहिं भवानी। तेहि प्रनवउँ सिसु अहउँ अमानी।।
जेहि सहचार संभु अबिनासी। नाम रूप जुत सोउ उदासी।।
सो माया कछु बरनि न जाई। रहइ न कबुहिं संभु बिलगाई।।
परमसक्ति सिव संभु घनेरी। भइ सहाय पिय परम अहेरी।।
नानारूप सृष्टिगुनसीला। जेहि मिलि करहिं संभु सबु लीला।।
ताहि जोरि कर नितहि मनावउँ। श्रीपदरज निज सीस चढ़ावउँ।।
आदि सक्ति जो प्रगट भवानी। रूप सील गुन तेज बखानी।।
महाजोति सत जोति प्रकासा। परा कला सत कोटि बिलासा।।

दोहा - सान्त्यतीतपरोत्तरा सिव सो प्रथमहि जात।
बंदउँ तेहिं सिवदाइनिहिं सकल जगत कै मात॥5॥

चौपाई - जेहि सबु कहहिं सक्ति अबिनासी। सिवा रूप नित सहज प्रकासी।।
इच्छा ग्यान क्रिया त्रिक् रूपा। संभु सक्ति मंगला अनूपा।।
बिस्वबिभावनि ब्यापक सोई। सिव मँह सिव ते सिवमय होई।।
परमानन्द प्रबोधतरंगिनि। लहर लहर लहरइ चउ रंगिनि।।
सिवा जगत जननी अभिरामा। सादर ताहि करउँ परनामा।।
मुकुतिहेतु जे सरनहिं आवहिं। अनायास सद्विद्या पावहिं।।

दोहा - सद्बिद्याजुत जो करइ जो सिवसन्निधि देइ।
सदा सिवानी सुंदरी सुभ असीस मोंहि देइ॥6॥

तस्य वंशे समुत्पन्नो मुक्तामणिरिवामलः।
मुद्देवाभिधाचार्यो मूर्धन्यः शिवयोगिनाम्।।१५।।

मुद्दानात्सर्वजन्तूनां प्रणतानां प्रबोधतः।
मुद्देवेति विख्याता समाख्या यस्य विश्रुता।।१६।।

तस्यासीन्नन्दनः शान्तः सिद्धनाथाभिधः शुचिः।
शिवसिद्धान्तनिर्णेता शिवाचार्यः शिवात्मकः।।१७।।

वीरशैवशिखारत्नं विशिष्टाचारसम्पदम्।
शिवज्ञानमहासिन्धुं यं प्रशंसन्ति देशिकाः ।।१८।।

यस्याचार्यकुलाज्जाता सतामाचारमातृका।
शिवभक्तिः स्थिरा यस्मिन् जज्ञे विगतविप्लवा।।१९।।

तस्य वीरशिवाचार्यशिखारत्नस्य नन्दनः।
अभवच्छिवयोगीति सिन्धोरिव सुधाकरः।।२०।।

चिदानन्दपराकाशशिवानुभवयोगतः ।
शिवयोगीति नामोक्तिर्यस्य याथार्थ्ययोगिनी।।२१।।

चौपाई - तासु चरन बन्दउँ दिनराती। तबहूँ भगति न मोर अघाती।।
जिअँ प्रसन्न जाना मैं माई। आपन कथा कहउँ अब गाई।।
कुल प्रसिद्ध सिवजोगी काहू। सुभ आचरन सिद्ध नरनाहू।।
प्रथम रेख सिवजोगिन्ह जोई। जो सिवग्यान पयोनिधि होई।।
सुधासिन्धु सिवभगति घनेरी। उफनत जाहि चंद्रिका हेरी।।
ता सम विमल भारती जाकी। कुबलय उत्सव कर तन थाकी।।

दोहा - मुकुतामनि जस बिमल एक, तेहि कुल पुरुष सुजात।
सिवजोगिन्ह सिरसस्थ सो सकल भुवन बिख्यात॥7॥

चौपाई - मुद्देव तेहिकर सुभ नामा। देवोपम काया अभिरामा।।
सिद्धि सकल तिन्ह चरननि लागी। आचारज त्यागी बड़भागी।।
सबु प्रानिन्ह कँह करि परितोषा। देहिं तिन्हहिं आनन्द असेषा।।
प्रनतजनन्ह कँह करइँ प्रबोधा। सकल सास्त्रमत करि करि सोधा।।
तेहि ते मुद्देव बिख्याता। कीन्ह नामु जनु स्वयं विधाता।।
जगत प्रसिद्ध भयउ यहु नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

दोहा - मुद्देव के सुत भयउ सिद्धनाथ अति धीर।
परम सान्त आचार सुचि सास्त्र ज्ञान गंभीर॥8॥

चौपाई - पितहि प्रसन्न करत जे अइहीं। जेहि पितुमातु मोद मन भरहीं।।
सोइ सुत लोगु जथारथ कहहीं। आसिरबाद बड़न्ह ते लहहीं।।
ऐसेइ सिद्धिनाथ मनभावा। सिवाचार्ज सिवरूप कहावा।।
सिवसिद्धान्त जथामति गहहीं। परमतत्व कँह निर्नय करहीं।।
जिन्हहिं प्रसंसहि सकल समाजा। बीरसैवचूड़ामनि छाजा।।
बीरसैव आचारज ग्यानी। जिन्ह के सुभ आचरन बखानी।।

दोहा - अति विसिष्ट आचारधन महासिन्धु सिवग्यान।
कहि कहि जेहि प्रसंसहिं देसिक जन बहु मान॥9॥
जे आचारजकुल भई सदाचार कहुँ मात।
जामे सोइ सिवभगति थिर होइ निष्कलुस समात॥10॥

शिवागमपरिज्ञानपरिपाकसुगन्धिना ।
यदीयकीर्तिपुष्पेण वासितं हरितां मुखम्।।२२।।

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बुद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वांतांशुमालिना।।२३।।

स महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः।
शिवतत्त्वपरिज्ञानचन्द्रिकावृतचन्द्रमाः ।।२४।।

आलोक्य शैवतन्त्राणि कामिकाद्यानि सादरम्।
वातुलान्तानि शैवानि पुराणान्यखिलानि तु।।२५।।

वेदमार्गाविरोधेन विशिष्टाचारसिद्धये।
असन्मार्गनिरासाय प्रमोदाय विवेकिनाम्।।२६।।

सर्वस्वं वीरशैवानां सकलार्थप्रकाशनम्।
अस्पृष्टमखिलैर्दोषैरादृतं शुद्धमानसैः।।२७।।

तेष्वागमेषु सर्वेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
पुरा देवेन कथितं देव्यै तन्नन्दनाय च।।२८।।

चौपाई - परम पुनीत पूत तेहि भयऊ। सिन्धु सुधाकर सुत जस लयऊ।।
बीरसैव चूड़ामनि नन्दन। सिवजोगी सिसु प्रीति निकन्दन।।
चिदानन्दमय परम प्रकासा। ब्रम्हसरीर प्रथित आकासा।।
पराकासबपु सिव सब कहहीं। सोइ सिवतत्व सु-अनुभव करहीं।।
सिवजोगी सुभ नाउँ जथारथ। आगम निगम जानि परमारथ।।
प्रगटेउ सुत सों पुन्य पुरातन। परमसैव आचार्ज सनातन।।

दोहा - सिवागमहि परिग्यान कँह पाक सुगन्धहि पूर।
रहेउ गमकि कीरति कुसुम जाकी दिसि दिसि दूर॥11॥
सो सिवभगति सनातनी सिवजोगिहि तेहि पाइ।
भई सनाथ जथारथ भुवन फिरत हरषाइ॥12॥

चौपाई - जे आखिन्ह आगे पट डारहिं। भरमावहिं अरु बुद्धि बिगारहिं।।
सौगतमत बिपरीत बिबादा। उपजावहिं जे लोक बिषादा।।
तेहि रबि प्रगट महा तम नासा। सो सिवजोगी बिसद प्रकासा।।
ताकी जोति सकल महि छाई। तिमिर पटल नहिं सकइ दुराई।।
महाबीर सिवजोगी स्वामी। बीरसैव बिचरहिं अनुगामी।।
संरच्छन सो सबु बिधि कीन्हा। सुगम धरम मारग तेहि कीन्हा।।
सौम्य सुसीतल ससिसम सोहा। सैवतत्व जोन्हा मन मोहा।।

दोहा - सैवतंत्र सबु सादर कामिक बातुल आदि।
सोधे सकल पुरान पुनि बिरचेउ तन्त्र सुबादि॥13॥
बीरसैव सुठि धरम कँह कीन्ह पन्थ निर्मान।
सोधि सोधि बिरचेउ सुथल आगम निगम पुरान॥14॥

चौपाई - श्रुतिसम्मत सबु कही सुबानी। कतहूँ बेद बिरोध न आनी।।
सिष्टाचार बिसेष पुराना। सिद्धि हेतु सबु आगम आना।।
प्रभुसम्मत जँह लगि उपदेसा। निरसन करहिं असेष भदेसा।।
जे विवेकजुत परम सयाने। लहहिं प्रमोद साधु सनमाने।।
बीरसैव सरबस निधि आही। पुलकित सुजन ताहि अवगाही।।
मरम सहित सबु अरथ सुबासा। अगम सुगम करि करइ प्रकासा।।

तत्सम्प्रदायसिद्धेन रेणुकेन महात्मना।
गणेश्वरेण कथितमगस्त्याय पुनः क्षितौ।।२९।।

वीरशैवमहातन्त्रमेकोत्तरशतस्थलम् ।
अनुग्रहाय लोकानामभ्यधात् सुधियां वरः।।३०।।

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तरम्।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणिः।।३१।।

अनुगतसकलार्थै शैवतन्त्रैः समस्तैः
प्रकटितशिवबोधाद्वैतभावप्रसादे ।
विदधतु मतिमस्मिन् वीरशैवा विशिष्टाः
पशुपतिमतसारे पण्डितश्लाघनीये।।३२।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ मङ्गलाचरण-श्रीशिवयोगिशिवाचार्यवंशवर्णनं नाम प्रथमः परिच्छेदः।

दोहा - **दोस न जामे लेस कहुँ सकल गुनन्ह कँह खान।**
सुद्धहृदय बुध आदरहिं संतत करहिं बखान॥15॥
जहँ लगि आगम बिदित सबु जँह लगि मिलत पुरान।
सैवतंत्र यहु प्रथित अति करन बिस्व कल्यान॥16॥

चौपाई - सिव करि कृपा तन्त्रु यहु गावा। पारबतिहि षण्मुखहि सुनावा।।
यहु सुभ कथा पुनीत पुरानी। जानहिं रिसि मुनि सबु विज्ञानी।।
सिद्ध गनेस्वर रेनुक नामा। संप्रदायमहिमा अभिरामा।।
सैवसास्त्र सोइ छितितल आना। रिसि अगस्ति सन कीन्ह बखाना।।
सान्त सुचित्त सुनेउ रिसिराया। सैवतंत्र सुंदर मनभाया।।
सिद्ध गनेस्वर रेनुकबानी। सब गुन सहित प्रीतिरस सानी।।

दोहा - **किएउ अनुग्रह लोक पर कहेउ सुधी बर बीर।**
थल सत एक अधिक पुनि सैवतंत्र गम्भीर॥17॥

छन्द - जद्यपि सर्वोत्तर तदपि निरुत्तर सैवतंत्र सुठि सबु माना।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी तंत्र न उर आनहिं आना।।
संसार अपारा अति दुस्तारा पार करइ सोइ जलजाना।
जाके पतवारा सुदृढ़ सँवारा सिद्धान्तसिखामनि नहिं आना।।
सिवजोगि सुधारा श्रुति अनुसारा पावन परम अनूपा।
यहु तंत्र जे गावहिं अति सुख पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

दोहा - **यहु सिद्धान्तसिखामनी सैवतन्त्रसमुदाय।**
अरथ समाहित सकल एहि सोहत तत्व निकाय॥18॥
पसुपतिमतसारांस यहु पंडित करइँ बखान।
सावधान मन साधि कै लेहु परम सिव ग्यान॥19॥
पढ़हु सुनहु पुनि गुनहु एहि पइहहु परमानन्द।
रमहु भाव अद्वैत मँह मिलिहहि मुकुति अमन्द॥20॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह पहिला परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
द्वितीयः परिच्छेदः

सच्चिदानन्दरूपाय सदसद्व्यक्तिहेतवे।
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय स्वयम्भुवे।।१।।

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वमौक्तिकशुक्तिकाम्।
वन्दे माहेश्वरीं शक्तिं महामायादिरूपिणीम्।।२।।

अस्ति सच्चित्सुखाकारमलक्षणपदास्पदम्।
निर्विकल्पं निराकारं निरस्ताशेषविप्लवम्।।३।।

परिच्छेदकथाशून्यं प्रपञ्चातीतवैभवम्।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानामगोचरपदे स्थितम्।।४।।

स्वप्रकाशविराजन्तमनामयमनौपमम्।
सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वशक्तिनिरङ्कुशम्।।५।।

शिवरुद्रमहादेवभवादिपदसंज्ञितम्।
अद्वितीयमनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम्।।६।।

तत्र लीनमभूत् पूर्वं चेतनाचेतनं जगत्।
स्वात्मलीनं जगत्कार्यं स्वप्रकाश्यं तदद्भुतम्।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

दूसरा परिच्छेद

चौपाई - प्रनवउँ साम्ब संभु परमेसा। जेहिं सेवहिं गन नाना भेसा।।
उतपति कारन रहित अनूपा। नित सत्‌चित् आनन्दसरूपा।।
भाव अभाव सकल जे अहहीं। परमेस्वर कारन सबु कहहीं।।
बिनवउँ परम सक्ति कल्यानी। आदि अनन्त अखण्ड अमानी।।
माया महा जगत आधारा। सम्भु सक्ति को बरनै पारा।।
तत्व सदासिव लागि अरम्भा। सकल तत्व को गनइ अचम्भा।।
सबु कँह मुकुता सुक्ति समाना। सिरजइ करि प्रपंच बिधि नाना।।

दोहा - सकलहेतु सो सिव परम, ब्रम्ह सच्चिदानन्द।
निराकार लच्छनरहित बिभु प्रभु परमानन्द।।21।।

चौपाई - निरबिकल्प जिन्ह जोगिन्ह देखा। करहिं उपद्रव सान्त असेषा।।
कथमपि परिच्छेद नहिं होई। जाकर सोइ प्रपंच सबु गोई।।
सुनत सतत बैभव जिसु काना। बिस्वबिदित नहिं कबहुँ अघाना।।
सकल सास्त्र मँह जे परमाना। तासु कबहुँ नहिं ब्रम्ह अमाना।।
अकथ अगोचर सो परमेसा। सर्ब अचिन्त्यसरूप महेसा।।
स्वयं प्रकास रूप भगवाना। दोसरहित गुनरासि निधाना।।

दोहा - निरुपमेय ब्यापक अमित निरमल सान्त सुसोह।
सर्बसक्ति सर्बग्य पुनि स्वबस प्रीतिसन्दोह।।22।।

चौपाई - जाके नाम अनेक बखाना। गावहिं आगम निगम पुराना।।
रुद्र संभु सिव भव भयहारी। महादेव संतत अबिकारी।।
अनिर्देस्य तेहि सम नहिं कोऊ। ब्रम्ह सनातन परम सो होऊ।।
जीव अजीव जगत तेहि माहीं। सृष्टि काल पुनि पुनि बिलगाहीं।।

शिवाभिधं परं ब्रह्म जगन्निर्मातुमिच्छया।
स्वरूपमादधे किञ्चित्सुखस्फूर्तिविजृम्भितम्।।८।।

निरस्तदोषसम्बन्धं निरुपाधिकमव्ययम्।
दिव्यमप्राकृतं नित्यं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्।।९।।

चन्द्रार्धशेखरं शुद्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
शुद्धमुक्ताफलाभासमुपास्यं गुणमूर्तिभिः।।१०।।

विशुद्धज्ञानकरणं विषयं सर्वयोगिनाम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।।११।।

अप्राकृतगुणाधारमनन्तमहिमास्पदम्।
तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।।१२।।

समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात्तत्स्वरूपानुसारिणी।।१३।।

जगत्सिसृक्षुः प्रथमं ब्रह्माणं सर्वदेहिनाम्।
कर्तारं सर्वलोकानां विदधे विश्वनायकः।।१४।।

सो सबु कारन ईस कहावा। प्रगट होइ कारज बनि आवा।।
अति बिचित्र सो बरनि न जाई। ब्रम्ह ते प्रगट को सकइ दुराई।।

दोहा - **परब्रम्ह सिवसंग्यक करइ जो सृष्टि बिचार।**
धरइ रूप आनन्दमय प्रगटि हुलास अपार।।23।।

चौपाई - जे सरूपगत दोस कहाहीं। ते परमेस्वर मँह कछु नाहीं।।
रहित उपाधि संभु अबिनासीं। जेहि सेवहिं सबु गृही उदासी।।
प्राकृत तँह न रहइ लवलेसा। दिब्य मनोहर रूप असेसा।।
नित्य त्रिलोचन रूप सुहावा। नीलकंठ सुभ नाम कहावा।।
निरमल फटिक समान सरीरा। कहहिं सुनहिं समुझहिं सबु धीरा।।
अतिसय पावन बेद बखाना। सोह भाल बिधु अरध सुहाना।।

दोहा - **मुकुताफल जस बिसद सिव तेहि ते लोक प्रकास्य।**
त्रिगुनमूर्ति ब्रम्हा बिसुन रुद्रहु केर उपास्य।।24।।

चौपाई - सबु जोगिन्ह के बिसय जे अहहीं। ग्यान बिसुद्ध करन सबु कहहीं।।
कोटि सुरुज सम जासु प्रकासा। कोटि चन्द सम प्रभा बिलासा।।
सो सबु परमतत्व सिव माना। जेहि कर करहिं जोगिजन ध्याना।।
जेहि सर्वग्य भाव बुध कहहीं। तृप्ति अनादि बोध सबु अहहीं।।
प्राकृत गुन सों बिलग बखाने। गुनाधार परमेस समाने।।
महिमा अमित जाइ नहिं बरनी। को कहि सकइ ईस कै करनी।।

दोहा - **परमसक्ति ताकी सुभग लछन सच्चिदानन्द।**
सकल लोक निर्मान हित रासि सरूप अमन्द।।25।।

चौपाई - सो समवायरूप सबु जाना। इच्छा जबहि करहिं भगवाना।।
तब धरि रूप प्रभुहि अनुसारी। प्रगट समान सरूप सँवारी।।
सकल बिस्वनायक भगवाना। करन चहहिं जबु लोक बिताना।।
जीवाजीव चराचर जेते। नाना रूप बरन जगु तेते।।

तस्मै प्रथमपुत्राय शङ्करः शक्तिमान् विभुः।
सर्वज्ञः सकला विद्याः सानुग्रहमुपादिशत् ।।१५।।

समस्तलोकान्निर्मातुं समुद्यमपरोऽभवत्।
कृतोद्योगोऽपि निर्माणे जगतां शङ्कराज्ञया।
अज्ञातोपायसम्पत्तेरभवन्माययाऽऽवृतः।।१६।।

विधातुमखिलाँलोकानुपायं प्राप्तुमिच्छया।
पुनस्तं प्रार्थयामास देवदेवं त्रियम्बकम्।।१७।।

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणाकर।
अस्मदादिजगत्सर्वनिर्माणनविधिक्षम।।१८।।

उपायं वद मे शम्भो जगत्स्रष्टः! जगत्पते।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिस्त्वं सर्वकर्ता सनातनः।।१९।।

इति संप्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वनायकः।
उपायमवदत् तस्मै लोकसृष्टिप्रवर्तनम्।।२०।।

उपायमीश्वरेणोक्तं लब्ध्वाऽपि चतुराननः।
न समर्थोऽभवत् कर्तुं नानारूपमिदं जगत्।।२१।।

रचना चतुर निपुन गुनसीला। बिरचि बिरंचि कीन्ह प्रभु लीला।।
प्रथमहिं तेहि ब्रम्हहि उपजायउ। सो ब्रम्हा सबु लोक बनायउ।।

दोहा - **प्रथम सुतहि तेहि संकर सक्तिमान सर्वज्ञ।**
उपदेसेउ बिद्या सकल जाते रहइ न अग्य॥26॥

चौपाई - ब्रम्हा परम अनुग्रह माना। पिता दीन्ह निमरल बिज्ञाना।।
संकर सरिस पिता सुत पावा। धन्य भाग्य निज भूरि मनावा।।
लहि असीस संकर सन ब्रम्हा। लोक बनावन कीन्ह अरम्भा।।
कीन्हेउ बहुत बिचार बिरंची। लोकसृष्टि बिधि परम प्रपंची।।
कीन्ह सकल उद्यम स्त्रम भारी। होइ न रचना थकि मति मारी।।

दोहा - **जीव अजीव चराचर निरमिति निपट निगूढ़।**
हहरि परे निरुपाय बिधि किंकर्तब्यबिमूढ़॥27॥
कर जोरे बिनती करत त्र्यम्बक सों बिधि जाय।
जेहि ते बिरचउँ लोकु सबु कहहु सो देव उपाय॥28॥

चौपाई - महादेव बिनवउँ तोहि पाहीं। तो सम कोउ करुनाकर नाहीं।।
बार बार तव पद धरि सीसा। बिनवउँ कृपा करहु जगदीसा।।
मोहिं जुत सकल बिस्व निर्माना। समरथ करन देव नहिं आना।।
जगत सृष्टि कारन तुम्ह अहऊ। रच्छा निरत जगतपति रहऊ।।
तुम्ह सरबग्य सनातन स्वामी। सर्वसक्तिसम्पन्न नमामी।।
सो उपाय सबु आपु बतावहु। मोहिं सो जगत सृष्टि करवावहु।।
एहि बिधि बिनय सुनाइ सुनाई। ब्रम्हा दीन्हीं सम्भु दुहाई।।

दोहा - **अखिललोकनायक सिव ब्रम्हहि दीन्ह प्रसाद।**
सृष्टि उपाय बतायऊ सुत कँह मिटेउ बिषाद॥29॥

चौपाई - जदपि कहेउ सिव बारहिं बारा। चतुरानन गहि ताहि सम्हारा।।
तदपि न समरथ भयउ बिरंची। बिरचन जगत अनेक प्रपंची।।
पुनि सिर धुनहिं बहुरि पछिताहीं। सुठि उपाय आवत मति नाहीं।।

पुनस्तं प्रार्थयामास ब्रह्मा विह्वलमानसः।
देवदेव महादेव जगत्प्रथमकारण।।२२।।

नमस्ते सच्चिदानन्द स्वेच्छाविग्रहराजित।
भव शर्व महेशान सर्वकारणकारण।।२३।।

भवदुक्तो ह्युपायो मे न किञ्चिज्ज्ञायतेऽधुना।
सृष्टिं विधेहि भगवन् प्रथमं परमेश्वर।
ज्ञातोपायस्ततः कुर्यां जगत्सृष्टिमुमापते।।२४।।

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वयोनिना।
ससर्जात्मसमप्रख्यान् सर्वगान् सर्वशक्तिकान्।।२५।।

प्रबोधपरमानन्दपरिवाहितमानसान्।
प्रमथान् विश्वनिर्माणप्रलयापादनक्षमान्।।२६।।

तेषु प्रमथवर्गेषु सृष्टेषु परमात्मना।
रेणुको दारुकश्चेति द्वावभूतां शिवप्रियौ।।२७।।

सर्वविद्याविशेषज्ञौ सर्वकार्यविचक्षणौ।
मायामलविनिर्मुक्तौ महिमातिशयोज्ज्वलौ।।२८।।

व्याकुल भयउ तनय सिव केरा। आयउ हृदय बिषाद घनेरा।।
अति संकोच लाजहु मन माँहीं। कहबु संभु मनिहहिं कि नाहीं।।
देव देव कहि पुनि घिघियाना। जगत प्रथम कारन जेहि माना।।

दोहा - **स्वेच्छा तनु धरि सोभित चिदानन्द सतिभाउ।**
होइ प्रसन्न एक बार पुनि सो उपाय समुझाउ॥30॥
सबु कारन कँह मूल तुम्ह हे महेस ईसान।
पुत्र विरंचि प्रनाम करि बिनवत पितहि सयान॥31॥

चौपाई - जो कछु आपु उपाय बतावा। सो मोरे मति तनिकु न आवा।।
ईस बनावहु सृष्टि बिधाना। जानहु सबु उपाय बिग्याना।।
यहु उपकार करहु तुम्ह स्वामी। सबु जानहु सिव अन्तरजामी।।
देखि तुम्हार क्रिया निपुनाई। हमहूँ करब उपाय बनाई।।
अबु जनि करहु बिलम्बु गोसाईं। हौं सुत तोर पिता तुम्ह साईं।।
पुनि पुनि कीन्ह बिरंचि प्रनामा। भयउ सुखद ताकर परिनामा।।

दोहा - **बिस्व जोनि ब्रम्हा कृत सुनि बिनती ईसान।**
बिरचेउ नाना प्रमथगन कीन्हेउ आपु समान॥32॥

चौपाई - जे ब्यापक सबुबिधि बलवाना। गुनागार पुनि सम्भु समाना।।
परमानन्द मगन मन बानी। बुद्धि बिसद अति परम सयानी।।
जे समरथ रचना संसारा। पालन परलय बिबिध प्रकारा।।
ते गन प्रमथ ईस उपजाये। सबिनय सकल सम्भु पहिं आये।।
तेहि मँह सिव के अति प्रिय दोऊ। रेनुक दारुक कह सबु कोऊ।।
ते प्रमथन्ह मँह परम सयाने। सिव अति प्रीति दुहूँ सनमाने।।

दोहा - **सबु विद्या मँह निपुन अति सबु कारज मँह दच्छ।**
मायामल ते रहित पुनि सदाचार सो स्वच्छ॥33॥

चौपाई - महिमा अमित सो को कहि पावा। तासों उज्ज्वल चरित बनावा।।
आत्मानन्द फुरइ दिन राती। तेहि रसस्वाद न जीभ अघाती।।

आत्मानन्दपरिस्फूर्तिरसास्वादनलम्पटौ।
शिवतत्त्वपरिज्ञानतिरस्कृतभवामयौ।।२९।।

नानापथमहाशैवतन्त्रनिर्वाहतत्परौ।
वेदान्तसारसर्वस्वविवेचनविचक्षणौ।।३०।।

नित्यसिद्धौ निरातङ्कौ निरङ्कुशपराक्रमौ।
तादृशौ तौ महाभागौ संवीक्ष्य परमेश्वरः।।३१।।

समर्थौ सर्वकार्येषु विश्वासपरमाश्रितौ।
अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे नियतौ विभुः।।३२।।

गणेश्वरौ रेणुकदारुकावुभौ विश्वासभूतौ नवचन्द्रमौलेः।
अन्तःपुरद्वारगतौ सदा तौ वितेनतुर्विश्वपतेस्तु सेवाम्।।३३।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
जगत्सृष्टिविचार-रेणुकदारूकावतरणं
नाम द्वितीयः परिच्छेदः।

सबु लौकिक रस त्यागहिं फीका। आत्मानन्द सरस सुठि नीका।।
सिवहिं तत्व परमारथ जानहिं। तेहि बल भवभय रोग नसावहिं।।
परम सिवाद्वय तंत्र बखाना। कोउ जानइ तेहि मारग नाना।।
दोउ जानइँ सो तन्त्र अपारा। परिपालन तत्पर सुबिचारा।।

दोहा - **सकल वेद वेदान्त पुनि सरबस जानहिं तत्व।**
करहिं बिबेचन निपुन दोउ तेहिकर सहित महत्व॥34॥

छन्द - ते दोउ बड़भागी परमविरागी नित्यसिद्ध सिव सनमाना।।
देखेउ परमेस्वर सो अबिनस्वर निरभय दोउ मनु मँह माना।।
जानेउ तिपुरारी दोउ भट भारी परम अजेय जगत जाना।
समरथ सबु काजा सौर्ज विराजा अति भरोस नित परमाना।।
अन्तःपुर द्वारा दृढ़ रखवारा कीन्ह उन्हहिं धन भगवाना।।
व्यापकु जगनायक सबु सुखदायक प्रभु हित दयानिधाना।।

दोहा - **गननायक रेनुक तथा दारुक भरे हुलास।**
ठाढ़ि दुआरे सिव भवन सहित प्रेम बिस्वास॥35॥
रच्छा मँह तत्पर रहइँ निसि दिन दोऊ बीर।
द्वारपाल गननायक धरम धुरंधर धीर॥36॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह दूसरा परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
तृतीयः परिच्छेदः

कदाचिदथ कैलासे कलधौतशिलामये।
गन्धर्ववामनयनाक्रीडामौक्तिकदर्पणे।।१।।

मन्दारबकुलाशोकमाकन्दप्रायभूरुहे।
मल्लीमरन्दनिष्यन्दपानपीनमधुव्रते।।२।।

कुङ्कुमस्तबकामोदकूलङ्कषहरिन्मुखे।
कलकण्ठकुलालापकन्दलद्रागबन्धुरे।।३।।

किन्नरीगीतमाधुर्यपरिवाहितगह्वरे।
सानन्दवरयोगीन्द्रवृन्दालङ्कृतकन्दरे।।४।।

हेमारविन्दकलिकासुगन्धिरसमानसे।
शातकुम्भमयस्तम्भशतोत्तुङ्गविराजिते।।५।।

माणिक्यदीपकलिकामरीचिद्योतितान्तरे।।
द्वारतोरणसंरूढशङ्खपद्मनिधिद्वये।।६।।

मुक्तातारकितोदारवितानाम्बरमण्डिते।
स्पर्शलक्षितवैडूर्यमयभित्तिपरम्परे।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
तीसरा परिच्छेद

चौपाई - कबहुँ परम प्रिय सिव मनभावा। धाम नाम कैलास सुहावा।।
उज्ज्वल रजत सिला सबु जहवाँ। बइठे सिव आसन गहि तहवाँ।।
सो गन्धर्वनारि समुदाई। दरपन मोतिन्ह खेल सुहाई।।
सोह असोक सघन अँवराई। कलप बिरिछ बकुलावलि छाई।।
मल्ली मधुर करहिं रसपाना। मत्त मधुप गुंजहिं बिधि नाना।।
कुंकुम कुसुम गुच्छ परिधारा। सरिता बहइँ अमोद अपारा।।
कूकहिं कोइलि मधुरी बानी। गिरि सोभा नहि जात बखानी।।

दोहा - प्रकृति सुखद सीतल पवन हरषहिं नयन निहार।
परम रम्य कैलास पर हर नित करत बिहार।।37।।

चौपाई - गीत मनोहर किन्नर रमनी। गावहिं छिन छिन पुलकइ अवनी।।
सबु गिरि खोह सिखर जहँ लागी। गीत मधुर धुनि ब्याप सुहागी।।
अति उछाह गिरिगुहा निवासी। रिषि मुनि जोगी गृही उदासी।।
कहहिं परसपर धनि यहु ठाऊँ। ध्यान जोग लगि कतहुँन जाऊँ।।
जोगी जती अनन्द मनावहिं। दै दै ताल संभु जस गावहिं।।
निरमल मानस सर रस पूरा। सुबरन पदुम सुगन्धि सुदूरा।।

दोहा - सुबरनमय मनिखचित तहँ सुभ सत खंभ बिराज।
परमरम्य सोभा निरखि सोभहु आवत लाज।।38।।

चौपाई - तेहि गिरि भीतर रह उँजिआरा। मानिक दिअना निसि दिन बारा।।
जोति बिमल गिरि गुहा समाई। बिनु ढाँपे मरीचि बिकिराई।।
तोरन रुचिर दुआरि सुहावा। जनु बिरंचि निज हाथ बनावा।।
संख पदुम दुइ निधि तहँ लागा। भाग दुनहुँ कर मानहु जागा।।

सञ्चरत्प्रमथश्रेणीपदवाचालनूपुरे।
प्रवालवलभीशृङ्गशृङ्गारमणिमण्डपे।।८।।

वन्दारूदेवमुकुटमन्दाररसवासितम्।
रत्नसिंहासनं दिव्यमध्यस्तं परमेश्वरम्।।९।।

तमास्थानगतं देवं सर्वलोकमहेश्वरम्।
त्रय्यन्तकमलारण्यविहारकलहंसकम्।।१०।।

उदारगुणमोंकारशुक्तिकापुटमौक्तिकम्।
सर्वमङ्गलसौभाग्यसमुदायनिकेतनम्।।११।।

संसारविषमूर्च्छालुजीवसञ्जीवनौषधम्।
नित्यप्रकाशनैर्मल्यकैवल्यसुरपादपम्।।१२।।

अनन्तपरमानन्दमकरन्दमधुव्रतम्।
आत्मशक्तिलतापुष्यत्त्रिलोकीपुष्पकोरकम्।।१३।।

ब्रह्माण्डकुण्डिकाषण्डपिण्डीकरणपण्डितम्।
समस्तदेवताचक्रचक्रवर्तिपदे स्थितम् ।।१४।।

चन्द्रबिम्बायुतच्छायादायादद्युतिविग्रहम्।
माणिक्यमुकुटज्योतिर्मञ्जरीपिञ्जराम्बरम्।।१५।।

चूडालं सोमकलया सुकुमारबिसाभया।
कल्याणपुष्पकलिकाकर्णपूरमनोहरम्।।१६।।

तना बितान सिखर गिरि राजे। जड़ि मुकुता मनि झालर साजे।।
धवल बिसद पट बनेउ चँदोवा। मनहुँ सुरभि पय जोन्हा धोवा।।

दोहा - रचि रचि नीलम मनि सिला भीति बनी चहुँ ओर।
नहिं जनाइ छूए बिना यहु अचरज अति घोर॥39॥

चौपाई - तँह संचरन प्रमथगन करहीं। रुनझुन धुनि नूपुर भलि करहीं।।
मूँगा जड़ि जड़ि सुरुचि सुहावा। परम अलौकिक छाजन छावा।।
करि सिंगार बिबिध मनभावा। भाँति भाँति कै सिखर बनावा।।
मनि मण्डप तहँ रहा लोभाई। सकल सरग संपति रहि छाई।।
करहिं देव सबु बिनय बहोरी। सेवहिं सिवहि प्रीति नहिं थोरी।।
पारिजाततरु कुसुम सुहावा। देवन्ह निज निज मुकुट लगावा।।
रतनजटित अरु पुहुप सुबासा। सिंहासन अति दिब्य ललासा।।

दोहा - परमेस्वर आसीन तेहि सोभा बरनि न जाइ।
सिंघासन के भाग जस सकल भुवन रह छाइ॥40॥
सिंघासन राजत भये सकल लोक अवतंस।
जथा उपनिषत्कमलबन बिहरत सुचि कलहंस॥41॥

चौपाई - सहित उदार सकल गुन खानी। गुनातीत परमेस्वर दानी।।
प्रनव सीपि पुट मोतिअ रूपा। तरल दीप्ति परकास अनूपा।।
सबुबिधि मंगल करन उपेता। सुठि सोहाग समुदाय निकेता।।
जगत गरल मुरछित जे अहहीं। औषध संजीवन हित तिन्हहीं।।
नित्य प्रकास रूप अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
मुकुति हेतु जे जतन कराहीं। संभु कलपतरु तिन्हके आहीं।।

दोहा - मधुकर दिब्य अलौकिक बिहरत संभु सुजान।
जो अनन्त आनन्दमधु करत अनवरत पान॥42॥

चौपाई - आत्मसक्ति बल्लरी सुहाई। पोसत त्रिभुवन कुसुम सदाई।।
त्रिभुवन पुहुप कली की नाईं। सोहहिं सदा सरूप बनाईं।।
जे ब्रम्हाण्ड कुण्डिका पावहिं। खण्ड-खण्ड लसि ताहि बनावहिं।।
अस निर्मान ग्यान बिधि मंडित। संभु बिलच्छन कोबिद पंडित।।

मुक्तावलयसम्बद्धमुण्डमालाविराजितम्।
पर्याप्तचन्द्रसौन्दर्यपरिपन्थिमुखश्रियम्।।१७।।

प्रात:सम्फुल्लकमलपरियायत्रिलोचनम्।
मन्दस्मितमितालापमधुराधरपल्लवम्।।१८।।

गण्डमण्डलपर्यन्तक्रीडन्मकरकुण्डलम्।
कालिम्ना कालकूटस्य कण्ठनाले कलङ्कितम्।।१९।।

मणिकङ्कणकेयूरमरीचिकरपल्लवैः।
चतुर्भिः संविराजन्तं बाहुमन्दारशाखिभिः।।२०।।

गौरीपयोधराश्लेषकृतार्थभुजमध्यमम्।
सुवर्णब्रह्मसूत्राङ्कं सूक्ष्मकौशेयवाससम्।।२१।।

नाभिस्थानावलम्बिन्या नवमौक्तिकमालया।
गङ्गयेव कृताश्लेषं मौलिभागावतीर्णया।।२२।।

पदेन मणिमञ्जीरप्रभापल्लवितश्रिया।
चन्द्रवत्स्फाटिकं पीठं समावृत्य स्थितं पुरः।।२३।।

वामपार्श्वनिवासिन्या मङ्गलप्रियवेषया।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपया।।२४।।

सकल देवमंडल निज करधृत। चक्रवर्तिपद करइ अलंकृत।।
सहस चन्द जोन्हा दुतिधारी। गौर कलेवर सो अबिकारी।।

दोहा - **जाके मानिकमुकुट कँह जोतिकिरन छबि पाइ।**
पीत बसन हर को बन्यो सोहत लिए ललाइ॥43॥

चौपाई - अति कोमल नव मृदुल सुहावन। चन्द्रकला सुन्दर मनभावन।।
सोह सो जटा मुकुट की नाईं। करत प्रकास मनोहरताईं।।
करि कल्यान कुसुम कलिका को। करनफूल सिव कानन्ह नीको।।
बिच बिच मुकुता बलय सुहावा। मुण्डमाल निज कंठ लगावा।।
मुख सोभा कछु बरनि न जाई। मनहुँ प्रगटि छबि मंजुलताई।।
निजसौन्दर्ज प्रगटि करि आवा। पूरनचन्द कि जोड़ लगावा।।

दोहा - **तीनहुँ नयन देखाहिं जस प्रात खिले राजीव।**
मधुर अधर निक लागहीं बाल प्रवाल सजीव॥44॥

चौपाई - खेलत अधर मन्द मुसुकाना। आखर अलप अधर पर आना।।
मकराकृति कुंडल लटकाहीं। दुनहुँ कपोल जथा मुसुकाहीं।।
खेला चंचल बहुत खेलाहीं। कानन्ह लगि जनु बहु बतिआहीं।।
कंठ नाल नीलिमा सुहाई। गरल कालिमा बाहेर छाई।।
कलपतरू बर साख सरीसा। धारहिं चारिहु भुजा गिरीसा।।
सो सबु सोह जटित मनि कंकन। राजहिं कर पल्लव भयभंजन।।

दोहा - **बच्छस्थल जे संभु कँह सकल जगत आधार।**
गौरिपयोधर तँह टिके भयो कृतारथ मार॥45॥

सोरठा - **बाम कंध अति सोह ब्रम्हसूत सुबरनमय।**
चिदानन्दसंदोह धारे रेसम पट रुचिर॥46॥

चौपाई - गरे परी नव मुकुता माला। लटकत नाभि तलक तक जाला।।
सोभा ताकी बरनि न जाई। कवि उपमा बहु कीन्ह खोजाई।।
मानहुँ उतरि भाल ते धाई। लिपटि परी गंगा हरषाई।।
दुति मंजीर रुचिर मनि खाँचे। पल्लव पदजुग लागहिं साँचे।।

इच्छाज्ञानक्रियारूपबहुशक्तिविलासया।
विद्यातत्त्वप्रकाशिन्या विनाभावविहीनया।।२५।।

संसारविषकान्तारदाहदावाग्निलेखया।
धम्मिल्लमल्लिकामोदझङ्कुर्वद्भृङ्गमालया।।२६।।

सम्पूर्णचन्द्रसौभाग्यसंवादिमुखपद्मया।
नासामौक्तिकलावण्यनाशीरस्मितशोभया।।२७।।

मणिताटङ्करङ्गान्तर्वलितापाङ्गलीलया।
नेत्रद्वितयसौन्दर्यनिन्दितेन्दीवरत्विषा।।२८।।

कुसुमायुधकोदण्डकुटिलभ्रूविलासया।
बन्धूककुसुमच्छायाबन्धुभूताधरश्रिया।।२९।।

कण्ठनालजितानङ्गकम्बुबिब्बोकसम्पदा।
बाहुद्वितयसौभाग्यवञ्चितोत्पलमालया।।३०।।

स्थिरयौवनलावण्यशृङ्गारितशरीरया।
अत्यन्तकठिनोत्तुङ्गपीवरस्तनभारया।।३१।।

मृणालवल्लरीतन्तुबन्धुभूतावलग्नया।
शृङ्गारतटिनीतुङ्गपुलिनश्रोणिभारया।।३२।।

धवल चन्द जस झलकत सोहा। पादपीठ निरमल मन मोहा।।
तेहि पर चरन जुगल अभिरामा। अकथनीय छबि लह बिसरामा।।

दोहा - **बाम भाग सोभित उमा अति प्रिय मंगल भेष।**
सकल लोक निर्मान हित सो समवाय असेष॥47॥

चौपाई - इच्छा ग्यान क्रियाबिधि रूपा। सक्ति अनंत अनिंद्य अनूपा।।
जे कछु बिद्या तत्व बखाने। उमा प्रकासइ तिन्ह बहु माने।।
अबिनाभाव रहहि सिव पाहीं। बिना एक दूसर गति नाहीं।।
जगतरूप बिस बन बिनसावनि। दावानल लौ बिकट भयावनि।।
बेनी जुहीमाल सुघराई। खिंचि सुगन्ध आवै भँवराई।।
रूप कठोर एक देखरावा। दूसर मंजुल मृदुल बनावा।।

दोहा - **मुख पंकज उपमान छबि पूरनचन्द प्रकास।**
नाक जड़ी मुकुतामनी मन्द करत जनु हास॥48॥
नीलकमल हारे बिथकि नयनजुगल छबि पेखि।
लीला करहिं अपांग दोउ मनिताटंक सुलेखि॥49॥

चौपाई - बाँकी भौंह बिलास लसानी। सोभा चाप मनोज लजानी।।
होठन्ह पहँ लछिमी मुसुकाहीं। समरथ उपमा कवनिउँ नाहीं।।
तदपि कछुक कबि कहत बनाई। जस बन्धूक कुसुम अरुनाई।।
कामदेव के संख सुहाए। निज सौन्दर्ज गरब अधिकाए।।
उमा कंठ किमि जाइ बखाना। कंबु सरिस नहि पावइ आना।।
सम सरीर संग सुभग सजाहीं। काम कम्बु तेहि देखि लजाहीं।।
थिर जौबन मँह भरी लुनाई। सो सरीर सबु रही सजाई।।

दोहा - **उमा रंचि भरि नमि रही पीन पयोधर भार।**
गदरायो जो उठि रह्यो करति चिबुक सों रार॥50॥

चौपाई - कटि तनुमध्य सोह अति खीना। जस मृनाल बिस तन्तु नवीना।।
सुभग सिंगार नदी उमगानी। ऊँच पुलिन रचि रहेउ सुहानी।।
तैसइ पाछि नितंबु बनावा। तेहि के भार मंद गति लावा।।
कुसुम्भ रंग कोमल परिधाना। सोहत मनहु अनंग बिताना।।

कुसुम्भकुसुमच्छायाकोमलाम्बरशोभया।
शृङ्गारोद्यानसंरम्भरम्भास्तम्भोरुकाण्डया।।३३।।

चूतप्रवालसुषुमासुकुमारपदाब्जया।
स्थिरमङ्गलशृङ्गारभूषणालङ्कृताङ्गया।।३४।।

हारनूपुरकेयूरचमत्कृतशरीरया।
चक्षुरानन्दलतया सौभाग्यकुलविद्यया।।३५।।

उमया सममासीनं लोकजालकुटुम्बया।
अपूर्वरूपमभजन् परिवाराः समन्ततः।।३६।।

पुण्डरीकाकृति स्वच्छं पूर्णचन्द्रसहोदरम्।
दधौ तस्य महालक्ष्मीः सितमातपवारणम्।।३७।।

तन्त्रीझङ्कारशालिन्या सङ्गीतामृतविद्यया।
उपतस्थे महादेवमुपान्ते च सरस्वती।।३८।।

झणत्कङ्कणजातेन हस्तेनोपनिषद्वधूः।
ओंकारतालवृन्तेन वीजयामास शङ्करम्।।३९।।

चलच्चामरिकाहस्ता झङ्कुर्वन्मणिकङ्कणाः।
आसेवन्त तमीशानमभितो दिव्यकन्यकाः।।४०।।

रुचि सिंगार फुरित उद्याना। जंघा कदली खंभ समाना।।
सरस रसाल कोंपलें चारू। दोउ पद पदुम तथा सुकुमारू।।

दोहा - अंग अंग भूषन सजे सकल सुमंगल मूल।
जस बसन्त रितु सोहहीं बिबिध बरन कौ फूल॥51॥

चौपाई - कंठ हार सुबरनमय राजत। रुनझुन धुनि नूपुर पग बाजत।।
बाजूबन्द लसइ दोउ बाँहीं। चमकै देह मनिन परछाहीं।।
लता अनंद नयन छबि राजी। कुल विद्या सौभाग्य बिराजी।।
सकल लोक जेहिकर परिवारा। बैठि उमा ढिग सिवहि निहारा।।
सिव आसीन अपूरबरूपा। सेवत सबु कुटुम्ब जग भूपा।।
उमा सहित सोभित तिपुरारी। तृपित नयन नहिं रूप निहारी।।

दोहा - पूरन चन्द सहोदर स्वेत कमल आकार।
महालच्छि सेवा करैं छत्रहि घाम नेवार॥52॥

चौपाई - सरस्वती कर बीना साजे। मधुर मधुर झंकृत रव बाजे।।
महादेव परिचर्जा करई। निज संगीत मोद मन भरई।।
विद्यामृत संगीत कहाई। करइ अनन्द सकल समुदाई।।
सबु उपनिषद् बधू सजि आवहिं। सिवहि व्यजन निज हाथ डोलावहिं।।
कंगन देत मधुर झनकारी। प्रनव ताड़पंखा अबिकारी।।
मनि कंगन रुनझुन धुनि करहीं। स्रवन पइठि सबुके मन हरहीं।।

दोहा - दिब्यकन्यका चँवर गहि मनिकंगन जुत हाथ।
नित सेवहिं ईसान कौ खड़ी चतुरदिक् साथ॥53॥

चौपाई - डोलत चँवर धवल चहुँ नीको। मध्य और आनन सिवजी को।।
भाँवरि राजहंस जनु देहीं। बीच किये सित कमल सनेही।।
बेद सहित षट् अंग बिभूती। जस गुरु सेवहिं सिष्य अधीती।।
रुद्र मंत्र करि करि उच्चारा। श्रद्धा भगति बिहित उपचारा।।
बेद सिरन्ह उपनिषद् सुहाई। सुन्दर चूड़ामनिहि बनाई।।
बेदपुरुष जस आयुध धारा। जथा बिभूषन बिबिध प्रकारा।।

चामराणां विलोलानां मध्ये तन्मुखमण्डलम्।
रराज राजहंसानां भ्रमतामिव पङ्कजम्।।४१।।

मन्त्रेण तमसेवन्त वेदाः साङ्गविभूतयः।
भक्त्या चूडामणिं कान्तं वहन्त इव मौलिभिः।।४२।।

तदीयायुधधारिण्यस्तत्समानविभूषणाः।
अङ्गभूताःस्त्रियः काश्चिदासेवन्त तमीश्वरम्।।४३।।

आप्ताधिकारिणः केचिदनन्तप्रमुखा अपि।
अष्टौ विद्येश्वरा देवमभजन्त समन्ततः।।४४।।

ततो नन्दी महाकालश्चण्डो भृङ्गी रिटिस्ततः।
सेनानी गजवक्त्रश्च रेणुको दारुकस्तथा।
घण्टाकर्णः पुष्पदन्तः कपाली वीरभद्रकः।।४५।।

एवमाद्या महाभागा महाबलपराक्रमाः।
निरङ्कुशमहासत्त्वा भेजिरे तं महेश्वरम्।।४६।।

अणिमादिकमैश्वर्यं येषां सिद्धेरपोहनम्।
ब्रह्मादयःसुरा येषामाज्ञालङ्घनभीरवः।।४७।।

मोक्षलक्ष्मीपरिष्वङ्गमुदिता येऽन्तरात्मना।
येषामीषत्करं विश्वसर्गसंहारकल्पनम्।।४८।।

दोहा - अस्त्र सस्त्र भूषन धरे तैसइ बिबिध प्रकार।
अंगभूत कछु कामिनी सेवहिं सिवहि सुचार॥54॥

चौपाई - निश्चल निश्छल जे अबिकारी। सहित अनन्त आठ अधिकारी।।
जेहि पर सिव कै अति बिस्वासा। तिन्हहिं सदा रक्खहिं निज पासा।।
ते विद्येस्वर आठ सयाने। महादेव सेवहिं सनमाने।।
सहित अनन्त सिखंडि सिवोत्तम। एकनेत्र एकरुद्रहु सूच्छम।।
अरु त्रिमूर्ति श्रीकंठ बखानहु। आठ बिद्येस्वर एहि सबु जानहु।।
नन्दी महाकाल पुनि चण्डा। भृंगी रिटी बीर बरिबण्डा।।
बीरभद्र अरु बीर कपाली। घंटाकरन महा बलसाली।।
षण्मुख एकदन्त अरु रेनुक। बिस्वकरन गोकरन सो दारुक।।
पुष्पदन्त प्रमुखादि सयाना। सहित प्रमथगन कोटिक नाना।।
परम उदार पराक्रमधारी। महासत्त्व पुनि स्वेच्छा चारी।।

दोहा - सेवहिं सकल महेस्वर सहित बिनय करजोरि।
पावहिं सिवपद पदुम रज पुलकि प्रीति नहिं थोरि॥55॥

चौपाई - जेहि सनमुख अणिमादि लजाहीं। अस सिधि प्रमथगनन्ह कै आही।।
जेहि अग्या लंघन नहिं करहीं। ब्रम्हादिक सुरेस सबु डरहीं।।
मोच्छ लच्छि आलिंगन लहहीं। अन्तःकरन मगन सबु रहहीं।।
इच्छा करहिं तनिक लव लावहिं। रचहिं बिस्व अरु बेगि नसावहिं।।
महिमा प्रमथगनन्ह को बरनी। जानहि सकल चराचर धरनी।।
ग्यानसक्ति जेहि परा अपारा। जेहि के बस सगरो संसारा।।

दोहा - करइ प्रकासित बस्तु सबु ग्यानसक्ति सबु रूप।
बिस्नुब्रम्हसम्पत्ति सबु जेहि सुख कन प्रतिरूप॥56॥

चौपाई - साधहिं सतत जोग जे जोगी। कहइ न कोउ कबहुँ जेहि भोगी।।
तेहू अस अभिलाषा करहीं। पाइ प्रमथ पद हर मन हरहीं।।
करहिं संकलप जौं मन माहीं। तिन्ह कँह जग अदेय कछु नाहीं।।
सो संकलप कलपतरु नामा। मनवांछित फल देइ ललामा।।

ज्ञानशक्तिः परा येषां सर्ववस्तुप्रकाशिनी।
आनन्दकणिका येषां हरिब्रह्मादिसम्पदः।।४९।।

आकाङ्क्षन्ते पदं येषां योगिनो योगतत्पराः।
काङ्क्षणीयफलो येषां सङ्कल्पः कल्पपादपः।।५०।।

कर्मकालादिकार्पण्यचिन्ता येषां न विद्यते।
येषां विक्रमसन्नाहा मृत्योरपि च मृत्यवः।
ते सारूप्यपदं प्राप्ताः प्रमथा भेजिरे शिवम्।।५१।।

ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्राद्या विश्वतन्त्राधिकारिणम्।
आयुधालङ्कृतप्रान्ताः परितस्तं सिषेविरे।।५२।।

आदित्या वसवो रुद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः।
दानवा राक्षसा दैत्याः सिद्धा विद्याधरोरगाः।
अभजन्त महादेवमपरिच्छिन्नसैनिकाः।।५३।।

वसिष्ठो वामदेवश्च पुलस्त्यागस्त्यशौनकाः।
दधीचिर्गौतमश्चैव सानन्दशुकनारदाः।।५४।।

उपमन्युभृगुव्यासपाराशरमरीचयः।
इत्याद्या मुनयः सर्वे नीलकण्ठं सिषेविरे।।५५।।

पार्श्वस्थपरिवाराणां विमलाङ्गेषु बिम्बितः।
सर्वान्तर्गतमात्मानं स रेजे दर्शयन्निव।।५६।।

करमकालदुख चिन्ता नाहीं। जिन्हहिं बिलोकत पाप नसाहीं।।
परमपराक्रम जासु बिसाला। ते निहिचय कालहु कर काला।।

दोहा - **महाभाग ते प्रमथगन लहि सारूप्य बिधान।**
होइ मगन पद पाइ पुनि सेवहिं प्रभु ईसान॥57॥
निज निज आयुध साजि कै ब्रह्मा बिस्नु सुरेस।
बिस्वनियामक संभु कौ सेवहिं बिगतकलेस॥58॥
देवजच्छगंधर्ब मुनि सबु नित आठहु जाम।
महादेव सेवा करहिं लागे निज निज काम॥59॥

चौपाई - जे आदित्य बारहों आये। आठहु बसुगन संग लिआये।।
रुद्र इगारह जच्छ कुबेरा। किन्नर दानव डारे डेरा।।
राच्छस दैत्य सकल गन्धर्बा। सिद्ध सर्प बिद्याधर सर्बा।।
निज निज सेन सहित कर जोरे। अग्या करहु कृपानिधि मोरे।।
हमहूँ सों सेवा कछु लेहू। सबु करिहउँ बस अग्या देहू।।
प्रभु रुख भाँपि टहल सबु करहीं। जस आयसु तैसहिं अनुसरहीं।।

दोहा - **अथ बसिष्ठ सौनक सुक बामदेव सानन्द।**
रिषि पुलस्त कुंभज भृगू गौतम ब्यास अमन्द॥60॥
पारासर उपमन्यु मुनि सो दधीचि देवर्षि।
नीलकंठ सेवा करहिं सहित मरीचि महर्षि॥61॥

चौपाई - जे समीप सेवा हित जाहीं। तेहि के बिमल अंग झलकाहीं।।
सबु मँह आपुहि आपु बिराजा। मनहुँ देखावहिं निज सम्राजा।।
कबहूँ छिन देवन्ह कर काजा। संभु निदेसहिं जानि अकाजा।।
कबहुँ तनिक निज कान लगावहिं। जबु गंधर्व मधुर धुनि गावहिं।।
बात तनिक सिव तिन्ह से करहीं। ब्रम्हा बिस्नु देव जे अहहीं।।
नृत्यकला छिन संभु बखानहिं। देवबधू निज भाग सराहहिं।।

क्षणं स शम्भुर्देवानां कार्यभागं निरूपयन्।
क्षणं गन्धर्वराजानां गानविद्यां विभावयन्।।५७।।

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैः क्षणमालापमाचरन्।
क्षणं देवमृगाक्षीणां लालयन्नृत्यविभ्रमम्।।५८।।

व्यासादीनां क्षणं कुर्वन् वेदोच्चारेषु गौरवम्।
विदधानः क्षणं देव्या मुखे बिम्बाधरे दृशः।।५९।।

हास्यनृत्यं क्षणं पश्यन् भृङ्गिणा परिकल्पितम्।
नन्दिना वेत्रहस्तेन सर्वतन्त्राधिकारिणा।।६०।।

अमुञ्चता सदा पार्श्वमात्माभिप्रायवेदिना।
चोदितान् वासयन् कांश्चिद्विसृजन् भ्रूविलासतः।
सम्भावयंस्तथा चान्यानन्यानपि नियामयन्।।६१।।

समस्तभुवनाधीशमौलिलालितशासनः।
अकुण्ठशक्तिरव्याजलावण्यललिताकृतिः।।६२।।

स्थिरयौवनसौरभ्यशृङ्गारितकलेवरः।
आत्मशक्त्यमृतास्वादरसोल्लासितमानसः।।६३।।

स्वाभाविकमहैश्वर्यविश्रामपरमावधिः।
निष्कलङ्कमहासत्त्वनिर्मितानेकविग्रहः।।६४।।

अखण्डारातिदोर्दण्डकण्डूखण्डनपण्डितः।
चिन्तामणिः प्रपन्नानां श्रीकण्ठः परमेश्वरः।।६५।।

दोहा - निज आसन गत संभु नित लीला करहिं अपार।
जे जस तस देखहिं सुनहिं करहिं बिमल ब्यवहार॥62॥

चौपाई - ब्यास आदि मुनि पुंगव जबहीं। सस्वर बेदपाठ सुचि करहीं।।
तबु छनु एकु सुनहिं धरि ध्याना। करहिं प्रसंसा संभु अमाना।।
बाम भाग जे सोह भवानी। निज पति निरखि रहत हरषानी।।
सकल सृष्टि सौन्दर्ज निधाना। उमा सरूप को करइ बखाना।।
आगिलि छिन संकर गँव पाई। नीलकण्ठ निज बदन घुमाई।।
ललकि लखे लोचन ललचाने। सरस बिम्बफल अधर लुभाने।।

दोहा - हास्यनृत्य भृंगी करत देखहिं दै बहुमान।
अट्टहास करि हँसहिं पुनि भावक संभु सुजान॥63॥

चौपाई - नंदी सबु कारज अधिकारी। सदा बेंत निज हाथ सुधारी।।
पास सदा सिव कँह रहि आवा। जानहिं प्रभु कँह मन गत भावा।।
नंदी जेहि कँह बोलि बुलावहिं। सिव सन आदर ते जन पावहिं।।
भृकुटि बिलास स्वयं जगदीसा। भगतन बोलि देहिं आसीसा।।
केहु प्रिय कारज लागि पठावहिं। कहि प्रिय बचन निकट बैठावहिं।।
आदर मान देहिं सब काहू। कबहुँ नियामहिं सहित उछाहू।।
सिव आदेस धरहिं सबु सीसा। लोकपाल जे सकल अधीसा।।
सक्ति अमोघ बरनि नहिं जाई। ब्यापि रही तन ललित लुनाई।।

दोहा - थिर जौबन कँह सुरभि सों सदा सुगंधित देह।
आतमसक्तिसुधारस उमगत सहित सनेह॥64॥
सहज महा ऐस्वर्ज कँह संभु चरम ह्वै धाम।
महासत्व अनवद्य तनु नैकहु पूरनकाम॥65॥

चौपाई - जेहि कर कंठ नील छबि मण्डित। करहिं बैरि भुजकण्डू खण्डित।।
सरनागत भगतन अभिलाषा। चिन्तामनि सम पुरवहिं आसा।।
गनन्ह मध्य सिव सोहत कैसे। बहु मनि मध्य महामनि जैसे।।
सभा मध्य रेनुक गननायक। पठयेउ बोलि संभु सुखदायक।।

सभान्तरगतं तत्रं रेणुकं गणनायकम्।
प्रसादं सुलभं दातुं ताम्बूलं स तमाह्वयत्।।६६।।

शम्भोराह्वानसन्तोषसंभ्रमेणैव दारुकम्।
उल्लङ्घ्य पार्श्वमगमल्लोकनाथस्य रेणुकः।।६७।।

तमालोक्य विभुस्तत्र समुल्लङ्घितदारुकम्।
माहात्म्यं निजभक्तानां द्योतयन्निदमब्रवीत्।।६८।।

रे रे रेणुक दुर्बुद्धे कथमेष त्वयाऽधुना।
उल्लङ्घितः सभामध्ये मम भक्तो हि दारुकः।।६९।।

लङ्घनं मम भक्तानां परमानर्थकारणम्।
आयुः श्रियं कुलं कीर्तिं निहन्ति हि शरीरिणाम्।।७०।।

मम भक्तमवज्ञाय मार्कण्डेयं पुरा यमः।
मत्पादताडनादासीत् स्मरणीयकलेवरः।।७१।।

भृगोश्च शङ्कुकर्णस्य मम भक्तिमतोस्तयोः।
कृत्वानिष्टमभूद् विष्णुर्विकेशो दशयोनिभाक्।।७२।।

मद्भक्तेन दधीचेन कृत्वा युद्धं जनार्दनः।
भग्नचक्रायुधः पूर्वं पराभवमुपागमत्।।७३।।

कृताश्वमेधो दक्षोऽपि मद्भक्तांश्च गणेश्वरान्।
अवमत्य सभामध्ये मेषवक्त्रोऽभवत् पुरा।।७४।।

पान प्रसाद देन तेहि चहहीं। धन्न जे प्रभु प्रसाद कर गहहीं।।
बिहवल भयउ सुनत प्रभुबानी। चलेउ तुरत जोरे दोउ पानी।।

दोहा - प्रभु पुकार संतोष हित हड़बड़ रेनुक धाय।
लाँघि दारुकहि ठाढ़ भे लोकनाथ ढिग जाय॥66॥

चौपाई - अनरथ लखि रेनुक जो कीन्हा। सिव तन प्रगट क्रोध कै चीन्हा।।
रेनुक समुझि आपु करतूता। प्रभु बिलोकि अति भयउ सभीता।।
सहेउ न सो अनरथ भगवाना। भगत परम प्रिय जो नित माना।।
भगत महातम निज देखरावा। तरजि रेनुकहि बचन सुनावा।।
रे कुबुद्धि रेनुक अज्ञानी। महिमा भगति न रंचहु जानी।।
कस काहे करतूति देखावा। दारुक लाँघि सभा मँह आवा।।
दारुक भगत मोहिं अति भावा। तुम्ह तौ आपन धरम नसावा।।

दोहा - मोर भगत लंघन भयो सबु अनरथ कौ मूल।
नासइ कुल कीरति सकल लछिमी आयु समूल॥67॥

चौपाई - कछु दृष्टान्त सुनावहुँ तोही। बचइ न मम भगतन कै द्रौही।।
भगत मृकंडुपुत्र रिषि मोरा। जम तेहि कीन्ह अवग्या घोरा।।
तबु हौं कीन्हों पाद प्रहारा। जम बराक निज लोक सिधारा।।
भृगु अरु शंकुकरन दोउ जाना। मोरे भगत सहित सम्माना।।
दोउ सन बिस्नू कीन्ह कुचाला। ताकर फल पायेउ तत्काला।।
भयउ बिकेस पाइ मम कोपू। जनमेउ सो दस बार अलोपू।।

दोहा - मोरे भगत दधीच संग कीन्ह बिस्नु संग्राम।
चक्र धनुष टूटेउ तहाँ हारे भा कोहराम॥68॥

चौपाई - अस्वमेध करि पुन्य बिताना। दच्छ हृदय उपजेउ अभिमाना।।
सभामध्य तहँ जुरे सयाने। मोरउ भगत गनेस्वर माने।।
तहाँ कीन्ह गनपति अपमाना। पायउ मुँह तबु भेंड़ समाना।।
स्वेत नाम मम भगत कहावा। सहज अनतिक्रम तेजस पावा।।
जबु सो उदासीन संभारा। तबु हौं हठि कालहु कँह जारा।।

श्वेतस्य मम भक्तस्य दुरतिक्रमतेजसः।
औदासीन्येन कालोऽपि मया दग्धः पुराऽभवत्।।७५।।

एवमन्येऽपि बहवो मद्भक्तानामतिक्रमात्।
परिभूता हताश्चासन् भक्ता मे दुरतिक्रमाः।।७६।।

अविचारेण मद्भक्तो लङ्घितो दारुकस्त्वया।
एष त्वं रेणुकानेन जन्मवान् भव भूतले।।७७।।

इत्युक्तः परमेशेन भक्तमाहात्म्यशंसिना।
प्रार्थयामास देवेशं प्रणिपत्य स रेणुकः।।७८।।

मानुषीं योनिमासाद्य महादुःखविवर्धिनीम्।
जात्यायुर्भोगवैषम्यहेतुकर्मोपपादिनीम्।।७९।।

समस्तदेवकैङ्कर्यकार्पण्यप्रसवस्थलीम्।
महातापत्रयोपेतां वर्णाश्रमनियन्त्रिताम्।
विहाय त्वत्पदाम्भोजसेवां किं वा वसाम्यहम्।।८०।।

यथा मे मानुषो भावो न भवेत् क्षितिमण्डले।
तथा प्रसादं देवेश विधेहि करुणानिधे।।८१।।

इति सम्प्रार्थितो देवो रेणुकेन महेश्वरः।
मा भैषीर्मम भक्तानां कुतो भीतिरिहेष्यति।।८२।।

जहँ कहुँ मोर भगत गन अहहीं। तिरस्कार तिन्हकर जे करहीं।।
तिन्हहिं कबहुँ हौं छाड़ब नाहीं। मोरे क्रोध अनल जरि जाहीं।।

दोहा - **रेनुक कहउँ बुझाइ तोहि भगत दुरतिक्रम मोर।**
जे ताकर लंघन करहिं पावहिं दुर्गति घोर॥69॥

चौपाई - सुनु जाके बिबेक बुधि नाहीं। सहसा करि पाछे पछिताहीं।।
तुहूँ कीन्ह अबिचारित करमा। दारुक लाँघि नसायउ धरमा।।
रेनुक जाहु भूतलहि अबहीं। जनम लेहु तूँ तहाँ मनुजहीं।।
रेनुक सुनेउ जो कह भगवाना। भगत महातम सुधा सों साना।।
ब्याकुल परेउ चरन कर जोरे। हौं सबु भाँति सरन मँह तोरे।।
छमहु देव अपराधु घनेरा। आखिन आगे छयउ अन्हेरा।।

दोहा - **भयउँ अधम सबु भाँति हौं करहु अनुग्रह देव।**
जे प्रभु दीठिन्ह उतरि गे ते कस उधरहिं टेव॥70॥

चौपाई - मानुस देह पाप कै खानी। संत कहहिं भवरोग बढ़ानी।।
जनम मरन दुख भोगहिं प्रानी। बिसम करम नानाबिध ठानी।।
देवन्ह टहल दीनता ब्यापै। मनुज जोनि मम हिरदै काँपै।।
त्रिबिध ताप सह मनुज सरीरा। बरनास्त्रम बँधि बोलइ कीरा।।
अइसन पाइ धरनि नर देहा। सेवा प्रभु कै करिहौं केहा।।
तव पदाब्ज सेवा सुभ त्यागी। तँह कस बसिअ ई रेनु अभागी।।

दोहा - **जथा धरनि पै मोंहिं कँह होइ न मानुस भाउ।**
बिनवउँ तोंहिं कृपानिधि तैंसइ कृपा बनाउ॥71॥
द्रवेउ उमापति सुनेउ जबु रेनुक आरत बानि।
सिव बोले मत डरहु मम भगत भीति नहिं आनि॥72॥

श्रीशैलस्योत्तरे भागे त्रिलिङ्गविषये शुभे।
कोल्लिपाक्याभिधानोऽस्ति कोऽपि ग्रामो महत्तरः।।८३।।

सोमेश्वराभिधानस्य तत्र वासवतो मम।
अस्पृशन् मानुषं भावं लिङ्गात्प्रादुर्भविष्यसि।।८४।।

मदीयलिङ्गसंभूतं मद्भक्तपरिपालकम्।
विस्मिता मानुषाः सर्वे त्वां भजन्तु मदाज्ञया।।८५।।

मदद्वैतपरं शास्त्रं वेदवेदान्तसंमतम्।
स्थापयिष्यसि भूलोके सर्वेषां हितकारकम्।।८६।।

मम प्रतापमतुलं मद्भक्तानां विशेषतः।
प्रकाशय महीभागे वेदमार्गानुसारतः।।८७।।

इत्युक्त्वा परमेश्वरः स भगवान् भद्रासनादुत्थितो।
ब्रह्मोपेन्द्रमुखान् विसृज्य विबुधान् भ्रूसंज्ञया केवलम्।
पार्वत्या सहितो गणैरभिमतैः प्राप स्वमन्तःपुरं।
क्षोणीभागमवातरत् पशुपतेराज्ञावशाद् रेणुकः।।८८।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ कैलासवर्णनं रेणुकावतरणकारणं च नाम तृतीयः परिच्छेदः।

चौपाई - रेनुक सुनहु धीर धरि बाता। जाहु धरनि नहिं होइहि घाता।।
पुन्य देस तँह भारत नामा। देव लहहिं तँह मन बिस्रामा।।
दक्खिन दिसि श्रीसैल सुहावा। तेहि उत्तर दिसि अति मनभावा।।
थल प्रसिद्ध सो तेलंगाना। नगर गाँउ बस नवा पुराना।।
गाउँ एक बड़ महिमा ताकी। कहहिं लोग सबु कोल्लीपाकी।।
थापा लिंग गाउँ मँह ओहा। मंदिर भव्य पुरातन सोहा।।

दोहा - हौं एहि रूप बसउँ तँह सोमेस्वर मम नाउँ।
जाहु प्रगटु तुम्ह होइहउ सोइ लिंगहि तेहि ठाउँ॥73॥
एहि बिधि तोहि न व्यापिहि मानुस भाउ कदापि।
मम बिग्रह तव उतपती तोहि मँह भाउ ममापि॥74॥

चौपाई - अचरज भरि पेखिहहँइँ सबु तोही। लिंग जथावत मंदिर ओही।।
भगत मुदित जन तहँ कर बासी। सेइहहिं तुम्हहिं न भजहु उदासी।।
रेनुक तुम्ह परिपालक होहू। मोरे भगतन पर करि छोहू।।
सिवाद्धैत कर करहु प्रचारा। सकल सास्त्र निगमागम सारा।।
एहि बिधि तँह सबुकर हित होई। धरमनीति छल छदम बिगोई।।
मम सिवभगत प्रताप अपारा। बेदपन्थजुत करहु प्रचारा।।

दोहा - भद्रासन ते उठि गयउ अस कहि श्रीभगवान।
सयनहि देवन्ह बिदा किय ब्रम्हा बिस्नु प्रधान॥75॥
उमा परमप्रिय गन सहित निज गृह कीन्ह प्रबेस।
रेनुक अग्या सिर धरेउ उतरेउ धरनी देस॥76॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह तीसरा परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
चतुर्थः परिच्छेदः

अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लिपाक्यभिधे पुरे।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रदुरासीत् स रेणुकः।।१।।

प्रादुर्भूतं तमालोक्य शिवलिङ्गात् त्रिलिङ्गजाः।
विस्मिताः प्राणिनः सर्वे बभूवुरतितेजसम्।।२।।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं साररुद्राक्षभूषणम्।
लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम्।
जटामुकुटसंयुक्तं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम्।।३।।

कटीतटीपटीभूतकन्थापटलबन्धुरम्।
दधानं योगदण्डं च भस्माधारं कमण्डलुम्।।४।।

शिवाद्वैतपरिज्ञानपरमानन्दमोदितम्।
निर्धूतसर्वसंसारवासनादोषपञ्जरम् ।।५।।

शिवागमसुधासिन्धुसमुन्मेषसुधाकरम्।
चित्तारविन्दसंगूढशिवपादाम्बुजद्वयम् ।।६।।

यमादियोगतन्त्रज्ञं स्वतन्त्रं सर्वकर्मसु।
समस्तसिद्धसन्तानसमुदायशिखामणिम्।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

चउथा परिच्छेद

चौपाई - सिव महिमा कछु जाइ न जानी। परमेस्वर कँह अकथ कहानी।।
धरनि आय रेनुक गननायक। जो सिव कहेउ सुमिरि प्रभु पायक।।
तेलंगाना देस सुनामा। बसि तँह कोल्लीपाकी ग्रामा।।
महालिंग सोमेस्वर केरा। प्रगटेउ रेनुक ज्योति घनेरा।।
तेलंगाना देस निवासी। दिब्य पुरुस एक देखि प्रकासी।।
भरि अचरज तरकहिं बिधि नाना। को कस कँह ते संकर बाना।।

दोहा - प्रगट भयउ सिवलिंग ते तेज न सक कहि जाइ।
महिमा अति सिवलिंग कँह की सिव अपुनेइ आइ।।77।।

चौपाई - सगरी देह भभूत लगाये। रचि कपर्द सिर मउर बनाये।।
धारे लिंग देह निज बिधि सों। लिंग पूजा मन लाग नियम सों।।
सजेउ पहिरि रुद्राच्छ बिभूषन। भाल सोह तिरपुंड तिलक सन।।
कथरी कमर करार सम्हारे। जोगडंड निज लच्छन धारे।।
गहे भभूत अधार कमंडल। अधर मधुर स्मित नयन अचंचल।।
सिवाद्वैत परिपूरन ग्याना। परमानंद मुदित सबु जाना।।
सकल बासना दोस पिंजारा। तहस नहस करि तजि संसारा।।

दोहा - सुधा सिंधु सिव आगम बढ़वन कौ बिधु पूर।
गोये संभुपदाब्ज द्वै चित्त कमल जस मूर।।78।।

चौपाई - जम नियमादि जोग कै अंगा। सो जानइ सबु तंत्र अभंगा।।
सबुइ काजु सरबस स्वाधीना। सिद्ध समाजु सिखामनि पीना।।

वीरसिद्धान्तनिर्वाहकृतपट्टनिबन्धनम्।
आलोकमात्रनिर्भिन्नसमस्तप्राणिपातकम्।।८।।

तमपृच्छन् जनाः सर्वे नमन्तः को भवानिति।
इति पृष्टो महायोगी जनैर्विस्मितमानसैः।।९।।

प्रत्युवाच शिवाद्वैतमहानन्दपरायणः।
पिनाकिनः पार्श्ववर्ती रेणुकाख्यगणेश्वरः।।१०।।

केनचित्कारणेनाहं शिवलिङ्गादिहाभवम्।
नाम्ना रेणुकसिद्धोऽहं सिद्धसन्ताननायकः।।११।।

स्वच्छन्दचारी लोकेऽस्मिन् शिवसिद्धान्तपालकः।
खण्डयन् जैनचार्वाकबौद्धादीनां दुरागमान्।।१२।।

इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां विषयस्थिरचक्षुषाम्।
उत्थाय व्योममार्गेण मलयाद्रिमुपागमत्।।१३।।

नवचन्दनकान्तारकन्दलन्मन्दमारुतम्।
अभङ्गुरभुजङ्गस्त्रीसंगीतरससंकुलम्।।१४।।

करिपोतकराकृष्टस्फुरदेलातिवासितम्।
वराहदंष्ट्रिकाध्वस्तमुस्तासुरभिकन्दरम्।।१५।।

बीरसैव सिद्धान्त प्रबीना। निरबाहन कौ कटि पट कीना।।
दरसन मात्र ते जे दुखदीना। तुरत करइ नित पापबिहीना।।
निरखि निरखि लै लै निज नामा। करन लगे सबु दंड प्रनामा।।
देव करन हम कँह बड़भागी। आयउ कवन देस तुम्ह त्यागी।।

दोहा - **को तुम्ह देव बिराजहू बेष अपूरब धारि।**
सबु के मन उतकंठ बड़ कहहु कि तुम्ह तिपुरारि॥79॥

चौपाई - जनिअहु तनिक धरहु सबु धीरा। जोगी बोलेउ गिरा गंभीरा।।
मैं सिवसेवक रेनुक नामा। बसउँ पिनाकि पास सिवधामा।।
सिवाद्वैत जे परमानन्दा। तेहि मँह मगन रहउँ स्वच्छंदा।।
जानहु मानहु मोंहि गनेस्वर। मोंहि प्रिय करि मानहिं परमेस्वर।।
कारन एक कठिन तँह आवा। जेहि लगि सो मोहिं धरनि पठावा।।

दोहा - **नायक सिद्धसमूह कै रेनुक सिद्ध अमन्द।**
बीरसैवसिद्धान्त पुनि पालउँ जग स्वच्छन्द॥80॥
बौद्ध जैन चार्वाक जे नास्तिक करहिं प्रलाप।
खण्डउँ तासु दुरागम बीरसैव दै थाप॥81॥

चौपाई - एक टक तेहि पर नैन गड़ाई। अति बिमुग्ध देखत समुदाई।।
रेनुक अस कहि आपु बुझाई। तिन्ह देखत उठि गगन उड़ाई।।
छिन मँह चलि मारग आकासा। पहुँचे मलयाचल कै पासा।।
सो गिरि नव चंदन बन भरई। मंद मरुत तँह सीतल बहई।।
सटि सर्पिनी सुतरु लपटानी। सरसइ तिन्ह संगीत सुहानी।।
मलय सुगन्ध पटीर बसाई। रेनुक बिथकि लखेउ हरषाई।।

दोहा - **खींचि बिदारहिं करिकलभ एला गन्ध बसाइ।**
सूअर मोथा खनि रहे गुहा रही महकाइ॥82॥

पटीरदलपर्यङ्कप्रसुप्तव्याधदम्पतिम्।
माधवीमल्लिकाजातीमञ्जरीरेणुरञ्जितम् ।।१६।।

तत्र कुत्रचिदाभोगसर्वर्तुकुसुमद्रुमे।
अपश्यदाश्रमं दिव्यमगस्त्यस्य महामुनेः।।१७।।

मन्दारचन्दनप्रायैर्मण्डितं तरुमण्डलैः।
शाखाशिखरसंलीनतारकागणकोरकैः।।१८।।

मुनिकन्याकरानीतकलशाम्बुविवर्धितैः।
आलवालजलास्वादमोदमानमृगीगणैः।।१९।।

हेमारविन्दनिष्यन्दमकरन्दसुगन्धिभिः।
मरालालापवाचालुवीचिमालामनोहरैः।।२०।।

इन्दीवरवरज्योतिरन्धीकृतहरिन्मुखैः।
लोपामुद्रापदन्यासचरितार्थतटाङ्कितैः।।२१।।

हारनीहारकर्पूरहरहासामलोदकैः।
नित्यनैमित्तिकस्नाननियमार्थैस्तपस्विनाम्।।२२।।

चौपाई - जहाँ ब्याध दम्पति सुख साने। कदली दल परिअंक समाने।।
झूम बिबिध तरु कुसुम झँकोरा। उड़इ पराग राग चहुँ ओरा।।
जूही चंपा अउर चमेली। हलरि बसंती किय बगमेली।।
मलयाचल सोभा अधिकाई। घूमि घूमि देखेउ गनराई।।
नयन लोभ कछु पूर न होई। अस छबि कतहुँ न देखी कोई।।
उहाँ एक थल बना सुहावा। सबु रितु कुसुम तरुन्ह पँह छावा।।
देखेउ आश्रम दिब्य सुहावन। रिषि अगस्ति कै अति मनभावन।।

दोहा - तेहि आश्रम चन्दन सघन पारिजात तरुराज।
कोंपल बिच निकलीं कली जनु तारागन साज॥83॥

चौपाई - घट भरि भरि जल आनि पिआए। मुनि कन्या निज हाथ बढ़ाए।।
थाले बने मनोहर नाना। मुदित मृगी नित कर जलपाना।।
सोन कमल कँह झरत परागा। मँहँ मँहँ मँहकत सकल बिभागा।।
राजहंस कल कूजन करहीं। बिहरहिं ललित सुजनमन हरहीं।।
बीचि माल जल भावति नीकी। जनु कलधौत लहरि अवली की।।
इन्दीबर बर सघन सुहाये। तेहि कृत तिमिर चहूँ दिसि छाये।।

दोहा - रिषि अगस्ति घरनी सती लोपामुद्रा नाम।
अटति सरोवर तट तहाँ परि पगचिन्ह ललाम॥84॥

चौपाई - सलिल बिमलसर धवल अमाना। हार तुहिन घनसार समाना।।
अट्टहास करि हर जबु हँसई। सोइ जनु द्रव बनि एहि सर भरई।।
नित्त निमित्त नियम अस्नाना। करि तापस जन ध्यावहिं ध्याना।।
तेहि सर चारिउ ओर सुहाना। उत्तम मनि निरमित सोपाना।।
आस्रमु बिबिध जन्तु बिचराहीं। तिन्ह मँह बैर परस्पर नाहीं।।
रिषि अगस्ति आस्रमु बस जहवाँ। दूसर ब्रम्हलोक जनु तहवाँ।।
हवन सदा घृत आहुति परई। तेहि सुगन्धि सो आस्रमु भरई।।

प्रकृष्टमणिसोपानैः परिवीतं सरोवरैः।
विमुक्तसत्त्ववैरस्यं ब्रह्मलोकमिवापरम्।।२३।।

हूयमानाज्यसन्तानधूमगन्धिमहास्थलम्।
शुकसंसत्समारब्धश्रुतिशास्त्रोपबृंहणम्।।२४।।

तस्य मध्ये समासीनं मूले चन्दनभूरुहः।
सुकुमारदलच्छायादूरितादित्यतेजसः ।।२५।।

तडित्पिङ्गजटाभारैस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकैः।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गैः स्फुरद्रुद्राक्षभूषणैः।।२६।।

नववल्कलवासोभिर्नानानियमधारिभिः।
परिवीतं मुनिगणैः प्रमथैरिव शङ्करम्।।२७।।

समुज्ज्वलजटाजालैस्तपःपादपपल्लवैः।
स्फुरत्सौदामिनीकल्पैर्ज्वालाजालैरिवानलम्।।२८।।

विशुद्धभस्मकृतया त्रिपुण्ड्राङ्कितरेखया।
त्रिस्रोतसेव सम्बद्धशिलाभागं हिमाचलम्।।२९।।

भस्मालङ्कृतसर्वाङ्गं शशाङ्कमिव भूगतम्।
वसानं वल्कलं नव्यं बालातपसमप्रभम्।।३०।।

वडवाग्निशिखाजालसमालीढमिवार्णवम्।
सर्वासामपि विद्यानां समुदायनिकेतनम्।।३१।।

दोहा - जहाँ निरन्तर उच्चरहिं बेदमंत्र सुकबृन्द।
ब्यापि रही तँह बेद धुनि पावन सहज अमन्द॥85॥

चौपाई - कोमल पल्लव दल घन छाहीं। रबि आतप कछु लागत नाहीं।।
ऐसेइ चन्दन बिटप सुहावन। आस्रम मध्य रह्यो मनभावन।।
तेहि तरु तर कुंभज आसीना। ध्यान जोगबिधि परम प्रबीना।।
बिद्युत पीत जटा सिर धारे। रचित भाल तिरपुंड करारे।।
करि धूसर सबु अंग भभूता। साजे तनु रुद्राच्छ बहूता।।
पहिरे बल्कल बस्त्र नवीना। नेम ब्रतादिक तप तनु खीना।।

दोहा - धारि रूप एहि बिधि तहाँ मुनि गन नाना भेष।
घेरि रहेउ कुंभज रिषी जस सिव प्रमथ असेष॥86॥

चौपाई - तपपादप नव किसलयरूपा। कौंधत बिजुरी बरन अनूपा।।
अस सिर जटा समुज्ज्वल भासा। जनु ज्वाला सों अगिनि बिकासा।।
पावन भसम सहाय बनाई। रचि तिरपुण्ड रेख सुघराई।।
सोह भाल जस सिला बिभागा। सुरसरि धार तीनहूँ लागा।।
कुंभज लगेउ हिमाद्रि सरीखा। अस अनुभाव कतहुँ नहिं दीखा।।
सकल सरीर भभूत लगावा। जनु ससांक भूतल पर आवा।।

दोहा - अरुन बरन नव बलकल दिब्य कान्ति जुत गात।
रबि ज्यों बालातप धरे सोहत होत प्रभात॥87॥

चौपाई - मुनि लागहिं पयोधि अनुहारी। घिरेउ लपट बड़वानल भारी।।
जेते विद्या भेद कहाहीं। सबुके आस्रय मुनिबर आहीं।।
अस प्राकृत जन कोऊ नाहीं। जेहि मन अहंकार कछु नाहीं।।
कुंभज मन सोऊ नहिं लेसा। निर्भर सिवभावना बिसेषा।।
तृन सम तेहि जग कर जंजाला। उदगत सिद्धि रहहिं सबु काला।।
दिनकर मोहतिमिर कर दूरी। मूलबोधतरु हरिअर भूरी।।

न्यक्कृतप्राकृताहन्तं निरूढशिवभावनम्।
तृणीकृतजगज्जालं सिद्धीनामुदयस्थलम्।।३२।।

मोहान्धकारतपनं मूलबोधमहीरुहम्।
ददर्श स महायोगी मुनिं कलशसंभवम्।।३३।।

समागतं महासिद्धं समीक्ष्य कलशोद्भवः।
गणेन्द्रं रेणुकाभिख्यं विवेद ज्ञानचक्षुषा।।३४।।

तस्यानुभावं विज्ञाय सहसैव समुत्थितः।
लोपामुद्राकरानीतैरुदकैरतिपावनैः।।
पादौ प्रक्षालयामास स तस्य शिवयोगिनः।।३५।।

संपूज्य तं यथाशास्त्रं तन्नियोगपुरस्सरम्।
मुनिर्विनयसम्पन्नो निषसादासनान्तरे।।३६।।

समासीनं मुनिवरं सर्वतेजस्विनां विभुम्।
उवाच शान्तया वाचा रेवणः सिद्धशेखरः।।३७।।

निर्विघ्नं वर्तसे किं नु नित्या ते नियमक्रिया।
अथ वाऽगस्त्य तेजस्विन् कुतः स्युस्तेऽन्तरायकाः।।३८।।

विन्ध्यो निरुद्धो भवता विश्वोल्लङ्घनविभ्रमः।
नहुषो रोषलेशात् ते सद्यः सर्पत्वमागतः।।३९।।

दोहा - सिद्ध परम गननायक रेनुक जोगनिधान।
देखेउ घटसम्भव मुनी तुरत गयउ पहिचान॥८८॥
भल निरखेउ कुंभज मुनी आयउ सिद्ध महान।
गननायक रेनुक प्रमथ दिब्य दृष्टि ते जान॥८९॥

चौपाई - तेहि अनुभाव जानि सबु गयउ। आसन छाँड़ि ठाढ़ होइ गयऊ।।
करि स्वागत मुनि बचन उचारे। धन्न भाग भे आजु हमारे।।
तुम्ह परमेस्वर रूप समाना। संभु देहिं तोहि अतिसय माना।।
पावन कीन्ह आइ थल एहा। हमरे लगि तव मन अति नेहा।।
एहि बिच लोपामुद्रा आई। निज कर उदक पूत अति लाई।।
सिवजोगी पदपदुम पखारे। मुनि अगस्ति अति भये सुखारे।।

दोहा - जथासास्त्र पूजा कियो आदर विनय समेत।
आसन दूसर बैठि पुनि मुनिबर आसिस लेत॥९०॥

चौपाई - रेनुक चरन नवायउ माथा। थिर बैठेउ कुंभज मुनिनाथा।।
तेजपुंज अति दिव्य प्रभाऊ। अखिल लोकहित प्रगट सुमाऊ।।
मधुर सान्त स्वर रेनुक बोलेउ। मनहु स्त्रवन अमरित रस घोलेउ।।
जहँ लगि जीव जगत ब्यवहारा। किमि निरबिघन चलत तव सारा।।
नित्त निमित्त नियम सबु करमा। निबहइ संतत सहज कि धरमा।।
अथवा तेज पुंज रिषिराऊ। अन्तराय ब्यापिहि कस काऊ।।

दोहा - छेंकेउ नभ बढ़ि बिन्ध्य जो घटज नेवारेउ आपु।
सर्पजोनि गे नृप नहुष दियो रोस बस सापु॥९१॥

चौपाई - पिएउ जलधि तुम्ह सहज असेषा। सूखि रहा तँह कर्दम सेषा।।
जठरानल जारेउ बातापी। दानव जाति रही भय काँपी।।
एहि बिधि अउर करन को पारा। मेटि भीति मुनि साधु सम्हारा।।
लोकोत्तर सबु काज तुम्हारा। अति बिचित्र को बरनइ पारा।।

आचान्ते भवता पूर्वं पङ्कशेषाः पयोधयः।
जीर्णस्ते जाठरे वह्नौ दृप्तो वातापिदानवः।।४०।।

एवंविधानां चित्राणां सर्वलोकातिशायिनाम्।
कृत्यानां तु भवान् कर्ता कस्तेऽगस्त्य समप्रभः।।४१।।

शिवाद्वैतपरानन्दप्रकाशनपरायणम्।
भवन्तमेकं शंसन्ति प्रकृत्या सङ्गवर्जितम् ।।४२।।

पुरा हैमवतीसूनुरवदत् ते षडाननः।
शिवधर्मोत्तरं नाम शास्त्रमीश्वरभाषितम्।।४३।।

भक्तिः शैवी महाघोरसंसारभयहारिणी।
त्वया राजन्वती लोके जाताऽगस्त्य महामुने।।४४।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा सिद्धस्य मुनिपुङ्गवः।
गम्भीरगुणया वाचा बभाषे भक्तिपूर्वकम्।।४५।।

अहमेव मुनीन्द्राणां लालनीयोऽस्मि सर्वदा।
भवदागमसम्पत्तिर्मां विना कस्य संभवेत्।।४६।।

स्थिरमद्य शिवज्ञानं स्थिरा मे तापसक्रिया।
भवद्दर्शनपुण्येन स्थिरा मे मुनिराजता।।४७।।

संसारसर्पदष्टानां मूर्च्छितानां शरीरिणाम्।
कटाक्षस्तव कल्याणं समुज्जीवनभेषजम्।।४८।।

हौं जानउँ मुनि तोर प्रभाऊ। अति पुनीत तव सील सुभाऊ।।
नहि कोउ तुम्ह समान तेजस्वी। सबु अचरजु तुम्ह करहु मनस्वी।।

दोहा - **शिवाद्वैत मँह लीन नित परमानन्दप्रकास।**
तुम्हहिं प्रसंसहिं लोग सबु अनासक्त फल आस॥92॥

चौपाई - एकु बात हौं कहउँ बखानी। जदपि रही सो बहुत पुरानी।।
पारबती सुत षन्मुख नामा। देवसेन नायक अभिरामा।।
सिव धर्मोत्तर तोहि उपदेसा। सास्त्र महेस्वर पाइ निदेसा।।
सैवी भगति महाभय हारिनि। लोकसोक बिषबेलि निवारिनि।।
हे अगस्ति मुनिबर बिग्यानी। तोहि कारन तमनिसा सिरानी।।
तुम्ह ते सैवी भगति उदारा। राजन्वती कहइ जग सारा।।
एहि प्रकार सुनि रेनुक बचना। मुनि कीन्हे प्रति उत्तर रचना।।

दोहा - **बोलेउ कुंभज बचन तबु सबु गुन जुत गंभीर।**
कहत मनहुँ नय विनय जुत जनु धरि भगति सरीर॥93॥

चौपाई - बन्दनीय हे सिद्धि निकेता। जग मँह बिदित मुनीस्वर जेता।।
तिन्ह मँह प्रथम रेख मम आही। कारन छोह तोर मोहिं पाँही।।
एहि ते सबु मुनि आदर करहीं। मम अग्या निज सिर पर धरहीं।।
हेतु तहाँ दूसर कछु नाहीं। छाँड़ि मोंहि तुम्ह केहि छोहाहीं।।
धन्न भाग मोरे गृह आवा। देइ सम्पति यहु मोहिं अपनावा।।
आजु मोर सिवग्यान थिरावा। थिर होइ मोर तपहु बल पावा।।
राउर दरसन पुन्य बहोरी। अचल भई मुनिबरता मोरी।।

दोहा - **जगत उरग बिस दंस ते प्रानिन्ह संकट प्रान।**
संजीवनि औषध बिभो तव कटाच्छ कल्यान॥94॥

चौपाई - सगरो लोक जलावनहारी। तीनहु ताप अगिनि जे भारी।।
तव चरनामृत कन मुँह जाई। महा अनल सो देइ बुझाई।।

समस्तलोकसन्दाहतापत्रयमहानलः।
त्वत्पदाम्बुजकणास्वादादुपशाम्यति देहिनाम्।।४९।।

रेणुकं त्वां विजानामि गणनाथं शिवप्रियम्।
अवतीर्णमिमां भूमिं मदनुग्रहकाङ्क्षया।।५०।।

भवादृशानां सिद्धानां प्रबोधध्वस्तजन्मनाम्।
प्रवृत्तिरीदृशी लोके परानुग्रहकारिणी।।५१।।

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि सिद्धान्तं श्रुतिसंमतम्।
सर्वज्ञ वद मे साक्षाच्छैवं सर्वार्थसाधकम्।।५२।।

सद्यः सिद्धिकरं पुंसां सर्वयोगीन्द्रसेवितम्।
दुराचारैरनाघ्रातं स्वीकृतं वेदवेदिभिः।।
शिवात्मैक्यमहाबोधसम्प्रदायप्रवर्तकम्।।५३।।

उक्त्वा भवान् सकललोकमहोपकारं।
सिद्धान्तसंग्रहमनादृतबाह्यतन्त्रम्।
सद्यः कृतार्थयितुमर्हति दिव्ययोगिन्।
नानागमश्रवणवर्तितसंशयं माम्।।५४।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
श्रीरेणुकागस्त्यसम्भाषणप्रसङ्गोनाम
चतुर्थः परिच्छेदः।

रेनुक तोंहि जानउँ गननाथा। तुम्ह प्रिय संभु रहहु नित साथा।।
मो पर करन अनुग्रह साईं। तुम्ह अवतरेउ धरनि पँह धाई।।
आप सरिस जे सिद्ध कहाहीं। ज्ञानसक्ति भवबन्ध नसाहीं।।
तिन्हकर परम उदार सुभावा। करहिं लोक उपकार सुहावा।।

दोहा - **सिवाद्वैत सिद्धान्त यहु सम्मत बेद प्रमान।**
सुनत चहत साच्छात हौं तव मुख ते श्रीमान॥95॥
हे सरबग्य कृपा करहु कहहु मोंहि करि छोह।
सबुइ अरथ साधक बिमल सिवाद्वैत सन्दोह॥96॥

छन्द - जेहि सिव अनुरागी परम बिरागी सेवहिं सदा सयाना।
मानुस तनु धारी कहहिं बिचारी सिद्धि अचिर एहि आना।।
जे दुष्ट अचारा भ्रमि संसारा तनिकहु गंध न पावा।
जे जानहिं बेदा अति निरबेदा निज हिय सदा बसावा।।
जे सिव करि जाना जीवन आना अस अद्वैत बनाई।
अग्यान निरासइ बोध प्रकासइ सो पथ सुगम चलाई।।

दोहा - **सकल लोक उपकार हित कहि पुनीत सिद्धान्त।**
अनाचार जेहिं छुवहिं नहिं जुरे बेद-बेदान्त॥97॥
अबुहिं कृतारथ करहु तुम्ह हे कृपालु मतिधीर।
दिब्य जोगि सिद्धान्तबिद सिद्ध सैव मत बीर॥98॥
कामिक बातुल आदि सबु आगम संसय मूल।
जानेउँ बिबिध प्रसंग मँह बनि बेधहिं हिय सूल॥99॥
बीरसैव सिद्धान्त मोहिं दृढ़ उपदेसहु आजु।
मेटि सकल संसय बिभो सिव कौ पुरवहु काजु॥100॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह चउथा परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
पञ्चमः परिच्छेदः

अथागस्त्यवचः श्रुत्वा रेणुको गणनायकः।
ध्यात्वा क्षणं महादेवं साम्बमाह समाहितः।।१।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल समस्तागमपारग।
शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं शृणु सादरम्।।२।।

अगस्त्य खलु सिद्धान्ता विख्याता रुचिभेदतः।
भिन्नाचारसमायुक्ता भिन्नार्थप्रतिपादकाः।।३।।

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभिः।।४।।

वेदः प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने।
वेदानुसरणादेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम्।।५।।

पाञ्चरात्रस्य सांख्यस्य योगस्य च तथा मुने।
वेदैकदेशवर्तित्वं शैवं वेदमयं मतम्।।६।।

वेदैकदेशवर्तिभ्यः सांख्यादिभ्यो महामुने।
सर्ववेदानुसारित्वाच्छैवतन्त्रं विशिष्यते।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
पाँचवाँ परिच्छेद

चौपाई - सुनि अगस्ति कै बचन सुहावा। रेनुक गननायक मन भावा।।
छिन करि महादेव कै ध्याना। सहित जगत जननी सुख माना।।
होइ सुचित्त धरि ध्यान बहोरी। कीन्ह बिनय सादर कर जोरी।।
बोलेउ रेनुक मधु मिदु बानी। रिषि अगस्ति अधिकारी जानी।।
हे अगस्ति हे मुनिसार्दूला। तुम्ह कँह अगम न आगम मूला।।
सादर सुनहु सहजु मनु लाई। कहउँ सैव सिद्धान्त सुहाई।।

दोहा - घटज भिन्नरुचि भेद ते जग अनेक सिद्धान्त।
भिन्न-भिन्न आचारजुत भिन्न अरथ सोपान्त॥101॥
सांख्य जोग मत पासुपत पांचरात्र अरु वेद।
दरसन सकल प्रमानजुत उचित न खंडन खेद॥102॥

चौपाई - सांख्य आदि जे दरसन अहहीं। आपुहि आपु बड़ाई करहीं।।
सबु कै मूल बेद मुनिराऊ। सोइ प्रधान सुनु अमित प्रभाऊ।।
ए प्रमान तेही बल अहहीं। सबु दरसन बेदहिं अनुसरहीं।।
पांचरात्र हे मुनिबर ज्ञानी। सांख्य जोग दरसन बिग्यानी।।
ए अनुसरहिं बेद इक भागा। सकल बेदमय सैव बिभागा।।
तेहि ते कहउँ सहित परमाना। एक बेदमय सैव न आना।।

दोहा - हे मुनिबर सांख्यादि जे दरसन परम प्रसिद्ध।
ते सबु वेदहि अंस गत यहु मत बुधजन सिद्ध॥103॥
बीरसैवसिद्धान्त यहु सकलबेदमय जान।
ताते परम बिसिष्ट पुनि सबु ते ऊपर मान॥104॥

चौपाई - निज मुख उपदेसेउ सिव ग्याना। सोइ सुचि सैवतंत्र जग जाना।।
बीरसैव सिद्धान्त कहावा। तहँ सबु बेदतत्व सरसावा।।

शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं शिवोदितम्।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा।।८।।

आगमा बहुधा प्रोक्ताः शिवेन परमात्मना।
शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलं चेति भेदतः।।९।।

तेषु शैवं चतुर्भेदं तन्त्रं सर्वविनिश्चितम्।
वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकम्।।१०।।

शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिणं भैरवात्मकम्।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसम्मतम्।।११।।

वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमः।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसम्मत उच्यते।।१२।।

वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात्।
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं पण्डितैरेतयोः सदा।।१३।।

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।१४।।

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद् रमणं यतः।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः।।१५।।

वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका।
तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः।।१६।।

सो सबु बेदारथ तेहिं सोहा। सो प्रामान्य बेदवत जोहा।।
सिव परमातम कीन्ह बनावा। बहुबिधि आगम कहि समुझावा।।
ताके भेद अनेकन भैवा। लाकुल सोम पासुपत सैवा।।
बिबिध प्रयोजन गहि उपजाये। सिव कल्यान करन मन भाये।।

दोहा - **आगम कँह बहु भेद पुनि, सैव तंत्र तँह चारि।**
यहु निश्चय बुध जन कहहिं, सबुबिधि सोचि बिचारि॥105॥
बाम दखिन अरु मिस्र पुनि, चउथ सिद्धान्त बिराज।
चार भेद परसिद्ध जगु, सैव तंत्र मुनिराज॥106॥

चौपाई - बाम नाम ते भेदहिं जोगू। सक्ति प्रधान कहहिं सबु लोगू।।
भैरव रूप भेद जो भावा। सैवतंत्र सो दखिन कहावा।।
मिस्र सैव कछु अलग प्रकारा। सात मातपर भेद प्रचारा।।
चउथ तंत्र सिद्धान्त कहावा। कहत बेद सम्मत सबु आवा।।
जे सिद्धान्तनाम सैवागम। बेद धरम कै करइ समागम।।
रंच न बेदबाह्य अपनावा। एहि ते बेदप्रमान कहावा।।

दोहा - **बेद सैवसिद्धान्त दोउ, एकहि अरथ बखान।**
दोऊ कौ प्रामान्य सम, पंडित जान सुजान॥107॥
सबुहि बेद में जे परत बिषय दिखाई तात।
उहै कहत सिद्धान्त पुनि सैव न दूसरि बात॥108॥

चौपाई - महातंत्र सिद्धान्त सुदेसे। उमारमन निज मुख उपदेसे।।
तँह जे कामिक आदि कहाहीं। देव दनुज सबु देखि सिहाहीं।।
सो सबु उत्तरभाग सुहावा। बीर सैवमत परम बतावा।।
तँह सोहइ बिद्या सिवरूपा। रमन होइ सबिसेष अनूपा।।
तेहि ते महाभाग जे अहहीं। बुधजन बीरसैव अस कहहीं।।
जेहि बेदान्तवाक्य उपजाई। सोइ बिद्या कह बुध समुदाई।।

दोहा - **'बी' सबदहि बिद्या कही ब्रम्हसरूप सराहि।**
सिवजीवहि कौ एकता बोध करावत आहि॥109॥

विद्यायां रमते यस्मान्मायां हेयां श्ववद्रहेत्।
अनेनैव निरुक्तेन वीरमाहेश्वरः स्मृतः।।१७।।

वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं विद्येति परिकीर्त्यते।
विद्यायां रमते तस्यां वीर इत्यभिधीयते।।१८।।

शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमन्तर्बहिःक्रमात्।
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते।।१९।।

यथा तथा न भिद्यन्ते शैवा माहेश्वरा अपि।
शिवाश्रितेषु ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः।।२०।।

माहेश्वराः समाख्याताः कर्मयज्ञरता भुवि।
तस्मादाभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः।।२१।।

वीरशैवास्तु षड्भेदाः स्थलधर्मविभेदतः।
भक्तादिव्यवहारेण प्रोच्यन्ते शास्त्रपारगैः।।२२।।

शास्त्रं तु वीरशैवानां षड्विधं स्थलभेदतः।
धर्मभेदसमायोगाद् अधिकारिविभेदतः।।२३।।

आदौ भक्तस्थलं प्रोक्तं ततो माहेश्वरस्थलम्।
प्रसादिस्थलमन्यत्तु प्राणलिङ्गिस्थलं ततः।।
शरणस्थलमाख्यातं षष्ठमैक्यस्थलं मतम्।।२४।।

तेहि बिद्या में रमि रहे सैव जे मोह नेवारि।
बीरसैव तेहि जानिए लागे जनम सुधारि॥110॥

चौपाई - रमन करहिं बिद्या अनुरागी। माया हेय स्वान जस त्यागी।।
'बी' बिद्या 'र' रमन जानिएइ। 'मा' माया 'हे' त्याग मानिअइ।।
'स्व' से स्वान रहइ 'र' त्यागू। इहै निरुक्ति इहाँ अहि लागू।।
एहि निरुक्ति बस अरथ लगाहीं। 'बीरमाहेस्वर' इहाँ कहाहीं।।
ग्यान बेदान्त जाहि उपजावा। सोइ बिद्या अस इहाँ कहावा।।
तेहि बिद्या मँह रमइ जे ग्यानी। सोइ कहावइ 'बीर' बखानी।।

दोहा - करहिं सैव लिंगार्चन आपुनि हिरदै पैठि।
माहेस्वर पुनि करइँ सोइ हिरदै बाहर बैठि॥111॥
सैव माहेस्वर एकहीं बहुत फरक है नाहिं।
दोउ सरूप ते एकहीं अन्तर करनी माँहिं॥112॥

चौपाई - माहेस्वर लिंगार्चन करहीं। तेहि ते भिन्न सैव अनुसरहीं।।
भेद तनिक दोऊ मँह होई। किरिआ धारि न तत्व बिगोई।।
सैव सिवाश्रित नर जे कहाहीं। ग्यानजग्यरत पाप नसाहीं।।
करमजग्य रत जे नर गावा। माहेस्वर ते लोक बनावा।।
नाम भेद जन दोउ सिव भगता। एकु ग्यान एकु करमहिं रमता।।
ग्यानजग्य मँह सैव सो लीना। करमजग्य कँह अपर अधीना।।

दोहा - पच्छी उड़हिं अकास मँह दूनहु पंख लगाइ।
एक पंख ते कथमपि नहिं सक सोइ उड़ाइ॥113॥
एहि बिधि किरिआ ग्यान दोउ पंख समान कहाँइँ।
एहि दूनउ कै मेल ते भवाकास तिर जाँइँ॥114॥

चौपाई - छह थल अरु तिन्हकै आचारा। बीरसैव छह भेद बिचारा।।
भगत आदि व्यवहार अधीना। पंडित कहहिं जे सास्त्र प्रबीना।।
थल कै भेद धरम कै भेदा। पुनि तँह रह अधिकारी भेदा।।
एहि ते बीरसैव जो जाना। छह बिध सास्त्र अदोष प्रमाना।।
थल पहिला जे भगत कहावा। माहेस्वर थल दूसर आवा।।
तीसर थल प्रसादि हौ माना। चउथा प्रानलिंगि सबु जाना।।
पाँचव थल सो सरन कहावा। छठाँ ऐक्य थल निर्नय आवा।।

भक्तस्थलं प्रवक्ष्यामि प्रथमं कलशोद्भव।
तदवान्तरभेदांश्च समाहितमनाः शृणु।।२५।।

शैवी भक्तिः समुत्पन्ना यस्यासौ भक्त उच्यते।
तस्यानुष्ठेयधर्माणामुक्तिर्भक्तस्थलं मतम्।।२६।।

अवान्तरस्थलान्यत्र प्राहुः पञ्चदशोत्तमाः।
पिण्डता पिण्डविज्ञानं संसारगुणहेयता।
दीक्षा लिङ्गधृतिश्चैव विभूतेरपि धारणम्।
रुद्राक्षधारणं पश्चात् पञ्चाक्षरजपस्तथा।।२८।।

भक्तमार्गक्रिया चैव गुरोर्लिङ्गस्य चार्चनम्।
जङ्गमस्य तथा ह्येषां प्रसादस्वीकृतिस्तथा।।२९।।

अत्र दानत्रयं प्रोक्तं सोपाधि निरुपाधिकम्।
सहजं चेति निर्दिष्टं समस्तागमपारगैः।
एतानि शिवभक्तस्य कर्तव्यानि प्रयत्नतः।।३०।।

बहुजन्मकृतैः पुण्यैः प्रक्षीणे पापपञ्जरे।
शुद्धान्तःकरणो देही पिण्डशब्देन गीयते ।।३१।।

शिवशक्तिसमुत्पन्ने प्रपञ्चेऽस्मिन् विशिष्यते।
पुण्याधिकः क्षीणपापः शुद्धात्मा पिण्डनामकः।।३२।।

एक एव शिवः साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः।।३३।।

दोहा - **कहउँ पहिल थल भगत जे सुनहु घटज मुनिराजु।**
होहु समाहित चित्त अबु तजहु अनत पुनि काजु॥115॥
तेहि के भेद बहोरि सबु जेहि जानहि ते बीर।
करि परितोष सुनाइहउँ सुनु मुनिबर धरि धीर॥116॥

चौपाई - जे नर करहिं परम बिस्वासा। जाके हिय श्रद्धा कर बासा।।
हिरदै सिव की भगति अमानी। परम भगत जानहु सो प्रानी।।
अनुष्ठेय तेहि धरम बतावइ। थल सो भगत पुनीत कहावइ।।
भगत थलहु कै भेद अनेका। पंडित सो कह पन्द्रह टेका।।
तेहि कै नाउँ अनेक प्रकारा। बिबिध सरूप विचार प्रचारा।।
घटज थलन्ह कै नाउँ गिनावउँ। एक एक तोहि के समझावउँ।।
सो पिंडता पिंड बिग्याना। गुनहेयता जगत कै जाना।।
दीच्छा गुरुकारुन्य कहावा। लिंग-बिभूति-रुद्राच्छ धरावा।।
पंचाच्छरजप थल मनभावा। मारग किरिआ भगत जे पावा।।
गुरु सिवलिंग उभय थल पूजा। संपति त्रिविध कहहिं थल गूँजा।।

दोहा - **थल साराय चतुर्बिध स्वीकृति इन्ह परसाद।**
दान त्रिबिध जे थल अहहिं बिनहिं रंच अपवाद॥117॥
सोपाधिक निरुपाधि पुनि सहज दान थल तीन।
भगतहु थल पन्द्रह भए एहिबिधि कहहिं प्रबीन॥118॥

चौपाई - ए पन्द्रह कर्तब्य घनेरे। सिव भगतन्ह करि जतन बड़े रे।।
इन कँह बिबरन सुनु मुनिराया। साधहिं भगत जे बिबिध उपाया।।
जनम जनम जदि पुन्य कराहीं। संचित होंइ धरमारथ माहीं।।
तेहि ते बिनसहि हे मुनिराया। कलुस समूल पाप समुदाया।।
अन्तःकरन बिमल पुनि पावा। तबुइ जीव सो पिंड कहावा।।
सिव अरु सक्ति जगत उपजावा। तहँ बहु जीव-अजीव बनावा।।

दोहा - **पापरहित जग जीव कौ अतिसय पुन्य जो होइ।**
बिमल आतमा निष्कलुष पिंड कहावै सोइ॥119॥

चौपाई - सिव एकहि नहिं कोऊ आना। चिदानन्दमय ब्याप अमाना।।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः।
अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।।३४।।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थितः।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः।।३५।।

चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथानलः।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः।।३६।।

आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम्।
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम्।।३७।।

गुणत्रयविभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि।
भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितम्।।३८।।

गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।
तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना तस्मिन् वस्तुत्रयाभिधा।।३९।।

किञ्चित्सत्त्वरजोरूपं भोक्तृसंज्ञकमुच्यते।
अत्यन्ततामसोपाधिर्भोज्यमित्यभिधीयते।।
परतत्त्वमयोपाधिर्ब्रह्मचैतन्यमीश्वरः ।।४०।।

भोक्ता भोज्यं प्रेरयिता वस्तुत्रयमिदं स्मृतम्।
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये कल्पितं गुणभेदतः।।४१।।

अत्र प्रेरयिता शम्भुः शुद्धोपाधिर्महेश्वरः।
संमिश्रोपाधयः सर्वे भोक्तारः पशवः स्मृताः।।४२।।

निराकार निर्गुन प्रभु आही। सो साच्छात् प्रपंच बिगाही।।
निर्बिकल्प अज एकु प्रकासा। सो अबिनस्वर सहज बिलासा।।
ईस्वर अंस जीव जेहि नामा। सो अनादि अबिद्या परिनामा।।
देव मनुज तिर्यक सबु प्रानी। जातिभेद सोइ जीवहि जानी।।
सबु कै प्रेरक सबुहि सुपासा। मायि महेस्वर अन्तरबासा।।

दोहा - **सूर्जकान्त मनि मँह अनल चन्द्रकान्तमनि तोय।**
जइसे अँखुवा बीज मँह तस आतम सिव होय॥120॥
भाव बिम्ब प्रतिबिम्ब कै रहइ सुरुज मँह एक।
आतम ईस्वर भाव पुनि ब्रम्ह एकु सबिबेक॥121॥

चौपाई - ईस्वर जे माया परछाईं। जीव अबिद्या मँह झलकाईं।।
आस्त्रय भेद ब्रम्ह पुनि एकू। ईस्वर जीवहि बिम्ब बिबेकू।।
सत्व रजस अरु तमस निरूपा। ए गुन तीनि प्रपंच सरूपा।।
चितसरूप परमातम जबहीं। संजुग होंहि तीनि पुनि तबहीं।।
भोक्ता भोज्य सो प्रेरक जैसा। भासइ ब्रम्ह न सचमुच ऐसा।।
त्रिगुनात्मिका सक्ति पुनि अहई। ब्रम्ह सनातन मँह नित रहई।।
बिसम होइँ जबु ते गुन तीना। तीनि पदारथ प्रगट नवीना।।

दोहा - **कछुक सत्व कछु रजोगुन मिलइँ त भोक्ता होइ।**
गहि उपाधि अति तमो गुन भोज्य ब्रम्ह कह सोइ॥122॥
चिन्मय ईस्वर ते जबुहिं लागइ निरमल सत्व।
ब्रम्ह सो प्रेरक जानिए बिलसइ सहित महत्व॥123॥
त्रिबिध पदारथ जे बने कारन तँह गुनभेद।
सो अखंड परमातमा चेतन जानहिं बेद॥124॥

चौपाई - तीन बस्तु ए सदा कहाहीं। भोक्ता भोज्य जे प्रेरक आहीं।।
एहि तीनिउँ गुनभेद बनावा। कल्पित ब्रम्ह अखंड सुहावा।।
तेहि मँह प्रेरक सम्भु सुजाना। सुद्ध उपाधि महेस्वर माना।।
जे भोक्ता ते पसु कहि जाहीं। रज उपाधि दोउ गुन मिसिराहीं।।
जे अब्यक्त गुन तामस सुद्धा। भोज्य कहहिं तेहि बिसय प्रबुद्धा।।
प्रेरक सम्भु होइ सर्बग्या। जीव सदैव होइ अल्पग्या।।

भोज्यमव्यक्तमित्युक्तं शुद्धतामसरूपकम्।
सर्वज्ञः प्रेरकः शम्भुः किञ्चिज्ज्ञो जीव उच्यते।।
अत्यन्तगूढचैतन्यं जडमव्यक्तमुच्यते।।४३।।

उपाधिः पुनराख्यातः शुद्धाशुद्धविभेदतः।
शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रया मोहकारिणी।।४४।।

अशुद्धोपाधिरप्येवमविद्याश्रयमोहिनी ।
अविद्याशक्तिभेदेन जीवा बहुविधाः स्मृताः।।४५।।

मायाशक्तिवशादीशो नानामूर्तिधरः प्रभुः।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च नित्यमुक्तो महेश्वरः।।४६।।

किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञो बद्धोऽनादिशरीरवान्।
अविद्यामोहिता जीवा ब्रह्मैक्यज्ञानवर्जिताः।।४७।।
परिभ्रमन्ति संसारे निजकर्मानुसारतः।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिविभेदतः ।।४८।।

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरिणः।
जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं कर्म केवलम्।।४९।।

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे।।५०।।

देहिनां प्रेरकः शम्भुर्हितमार्गोपदेशकः।
पुनरावृत्तिरहितमोक्षमार्गोपदेशकः ।।५१।।

दोहा - जेहि मँह अतिसय गूढ़ रह चेतनता मुनिराज।
ते कहहिं अव्यक्त जड़ एहि बिधि जग कौ काज॥125॥

चौपाई - सुद्ध असुद्ध भेद जँह लावा। तँह उपाधि दुइ रूप बनावा।।
सुद्ध उपाधि रही सो माया। अपुने आस्रित सुनु मुनिराया।।
सो न बिमोहइ ईस्वर कबहूँ। ईस्वर कै बस माया सबहूँ।।
दूसर भेद अबिद्या साधी। जेहि सबु जानि असुद्ध उपाधी।।
तेहि कर आस्रय जीव कहावा। मोह फंद कसि जीव नचावा।।
सक्ति अबिद्या भेदहि नाना। जीव भेद अनगिनत बखाना।।

दोहा - मायासक्ति प्रभाव ते प्रभु के नाना रूप।
निरुपाधिक सर्बग्य सिव कर्ता मुक्त अनूप॥126॥

चौपाई - जानइ कछुक कछुक पुनि करई। बद्ध ईस बिग्रह मँह परई।।
देह अनादि अनन्त प्रकारा। जोनि जोति मँह करइ प्रचारा।।
मोह अबिद्याजनित धरावा। जीव संसरइ पार न पावा।।
रहित ग्यान ब्रम्हैक्य दुरावा। कबहुँ सांति बिस्राम न पावा।।
करम सुभासुभ फल सो लहई। तेहि बस भ्रमइ कूप भव परई।।
नाना जोनि बिभेद सरीरा। देव दनुज नर तिर्यक् कीरा।।
ए सबु जीव करम गति मारे। सहहिं कलेस बिबस अबिचारे।।
भ्रमहिं सरीरी एहि संसारा। जस भ्रम सतत चक्क कै धारा।।

दोहा - कारन केवल करमगति धरे जीव संबंध।
जनम मरन जीवन सकल भोग बिसमता संध॥127॥

चौपाई - साच्छी परमेस्वर मुनिराया। प्रेरइ सोइ सबु जीव निकाया।।
ए सबु जीव भ्रमइँ दिनराती। करमजंत्र नियमन जेहि भाँती।।
जीव प्रेरना कै अधिकारी। संभु सनातन सोइ अबिकारी।।
जाते जीव परम हित होई। संभु सतत उपदेसइँ सोई।।
जेहि ते पुनर्जनम मिटि जाई। जेहि ते सबु बिधि मुकुति मिलाई।।
सोइ उपदेसइ प्रेरइ ईसा। पथ कल्यान देखाव गिरीसा।।

स्वकर्मपरिपाकेन प्रक्षीणमलवासनः।
शिवप्रसादाज्जीवोऽयं जायते शुद्धमानसः।।५२।।

शुद्धान्तःकरणे जीवे शुद्धकर्मविपाकतः।
जायते शिवकारुण्यात् प्रस्फुटा भक्तिरैश्वरी।।५३।।

जन्तुरन्त्यशरीरोऽसौ पिण्डशब्दाभिधेयकः।।५४।।

शरीरात्मविवेकेन पिण्डज्ञानी स कथ्यते।
शरीरमेव चार्वाकैरात्मेति परिकीर्त्यते।।५५।।

इन्द्रियाणां तथात्मत्वमपरैः परिभाष्यते।
बुद्धितत्त्वगतैर्बौद्धैर्बुद्धिरात्मेति गीयते।।५६।।
नेन्द्रियाणां न देहस्य न बुद्धेरात्मता भवेत्।
अहंप्रत्ययवेद्यत्वाद् अनुभूतस्मृतेरपि।।५७।।

शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातनः।
आत्मस्थितिविवेकी यः पिण्डज्ञानी स कथ्यते।।५८।।

नश्वराणि शरीराणि नानारूपाणि कर्मणा।
आश्रितो नित्य एवासाविति जन्तोर्विवेकिता।।५९।।

शरीरात् पृथगात्मानमात्मभ्यः पृथगीश्वरम्।
प्रेरकं यो विजानाति पिण्डज्ञानीति कथ्यते।।६०।।

निरस्तहृत्कलङ्कस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
संसारहेयताबुद्धिर्जायते वासनाबलात्।।६१।।

दोहा - होइ जीव कै करम कहँ जबु पूरन परिपाक।
छीन होइ मल बासना संसयरहित बिबाक॥128॥
जीव बिमल चित होइ तबु करहिं अनुग्रह ईस।
सकल कलुस बिनसहिं अवसि सुनहु असंग मुनीस॥129॥

चौपाई - सुद्ध बिपाक करम कँह पावा। निरमल अंतःकरन सुहावा।।
तबु सिव करुना करहिं सनेही। प्रेरहिं मंगल हित हर तेही।।
सिव कै भगति उपज हिय माहीं। सबु लच्छन तहँ प्रगट देखाहीं।।
अन्त्य सरीर जीव यहु होई। पिंड सबद ते कह सबु कोई।।
आतमदेह भेद जो जानइ। पिंडग्यानजुत तेहि सबु मानइ।।
जे चर्वाक अनीस्वरबादी। आतम कहहिं सरीर बिबादी।।

दोहा - कोउ कह इंद्रिय आतमा जानहिं मर्म न भेद।
ते अग्यानी मूढ़ जन मन उपजावहिं खेद॥130॥
अपर जे मानहिं बौद्धमत कहहिं बुद्धि हइ मूल।
ते कह बुद्धिहि आतमा रखि बिग्यानहि चूल॥131॥

चौपाई - नहिं इंद्रिय न देह बिग्याना। इन्ह ते भिन्न आतमा आना।।
अहं अहं जो कह सबु कोई। अनुभव ग्यान आतमा होई।।
जे परतच्छ बिसय जग अहहीं। निज निज बिसय सो इंद्रिय गहहीं।।
जो सुमिरन गत अनुभव होई। गहि न सकइ सो इंद्रिय कोई।।
आतम तत्व कहावइ देही। इंद्रिय बुद्धि सरीर न होही।।
सहित बिबेक जो आतम जानइ। पिण्ड ग्यान जुत तेहि सबु मानइ।।

दोहा - यहु सरीर छनभंगुर करम ते नाना रूप।
देही देहास्त्रित नियत जीव बिबेक अनूप॥132॥

चौपाई - अलगु सरीर आतमा दोऊ। दूनउँ एक कबहुँ नहिं होऊ।।
ईस्वर जे प्रेरक कहलावा। सोउ आतमा ते अलगु बतावा।।
ई बिबेक जानइ जो कोई। पिंड ग्यान जुत सो नर होई।।
जेहि कै मलिन बासना दूरी। मिटेउ कलंक हिये कौ भूरी।।
नित्य अनित्य भेद जो जाना। पंडित ग्यानी सोइ सयाना।।
सो संस्कार पुन्य बल पाई। जगत हेय अस मति बनि जाई।।

ऐहिके क्षणिके सौख्ये पुत्रदारादिसंभवे।
क्षयित्वादियुते स्वर्गे कस्य वाञ्छा विवेकिनः।।६२।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
जन्तुर्मरणजन्माभ्यां परिभ्रमति चक्रवत्।।६३।।

मत्स्यकूर्मवराहाङ्गैर्नृसिंहमनुजादिभिः ।
जातेन निधनं प्राप्तं विष्णुनापि महात्मना।।६४।।

भूत्वा कर्मवशाज्जन्तुर्ब्राह्मणादिषु जातिषु।
तापत्रयमहावह्निसन्तापाद् दह्यते भृशम्।।६५।।

कर्ममूलेन दुःखेन पीड्यमानस्य देहिनः।
आध्यात्मिकादिना नित्यं कुत्र विश्रान्तिरिष्यते।।६६।।

आध्यात्मिकं तु प्रथमं द्वितीयं चाधिभौतिकम्।
आधिदैविकमन्यच्च दुःखत्रयमिदं स्मृतम् ।।६७।।

आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
वातपित्तादिजं दुःखं बाह्यमाध्यात्मिकं मतम्।।६८।।

रागद्वेषादिसम्पन्नमान्तरं परिकीर्त्यते।
आधिभौतिकमेतद्धि दुःखं राजादिभूतजम्।।६९।।

आधिदैविकमाख्यातं ग्रहयक्षादिसम्भवम्।
दुःखैरेतैरुपेतस्य कर्मबद्धस्य देहिनः।।
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ सुखलेशो न विद्यते।।७०।।

दोहा - सुत दारागत छनिक सुख छीन सरग सुख होइ।
तेहि सुख इच्छा रंचु नहिं करइ बिबेकी कोइ॥133॥

चौपाई - जो जनमइ सो आपु नसावा। मरेउ अवस्य जनम सोउ पावा।।
मरन जनम बस जीव बेचारा। चकरी नाइँ घुमत संसारा।।
बिस्नु महातम को नहिं जानइ। नारायन करि सबु जग मानइ।।
सोउ लीलाबपु धरहिं अपारा। करम हेतु अवतर संसारा।।
मछरी कच्छप सूकर देहा। नर नरसिंह कऽ रूप निबेहा।।
धरि जनमेउ जबु जबु भुँइँ आई। टरेउ मरन नहिं कोटि उपाई।।
जो जनमइ अवस्य सो मरई। अटल नियम कबहूँ नहिं टरई।।

दोहा - देह धरहिं कारन करम बिप्र आदि कै जाति।
तीन ताप कै महानल जरहिं जो नित धधकाति॥134॥
दुक्ख तीन नित जीव पर निरभय करहिं प्रहार।
सान्ति भला तेहि कँह कहाँ पीरा ते छुटकार॥135॥

चौपाई - असुभ करम फल दुक्ख कहावा। तीन भेद सबु सास्त्रन गावा।।
भेद पहिल अध्यात्मिक माना। दूसर अधिभौतिक करि जाना।।
अधिदैविक होइ तीसर भेदा। इहै तीनि दुख सबुहिं लगेदा।।
अध्यात्मिक पुनि दूइ प्रकारा। बाहर भीतर अति बिस्तारा।।
बात पित्त कफ घटि बढ़ि जाई। सोइ दुख बाहेर प्रगट जनाई।।
राग द्वेष ईर्ष्या मद मत्सर। एहि उपजै अन्तर दुख दूसर।।

दोहा - राजा सहित जे भूत गन जीव अजीव तमाम।
तिन्ह ते आवइ दुख प्रबल अधिभौतिक धरि नाम॥136॥
दिसा देव आकास ग्रह आतप बरखा सीत।
अधिदैविक दुखमूल ए इन्ह ते जीव सभीत॥137॥

चौपाई - करम फेर मँह परेउ सरीरी। नाचइँ तीनउँ दुक्ख फिरिहिरी।।
ब्याकुल फिरइ जीव संसारा। भूतल सरग न कोउ रखवारा।।
जहाँ जाइ तहँ दुक्ख पछाई। नहिं सुख लेस कतहुँ भरि पाई।।
बिजुरी बादर रेख खँचाई। सलिल तरंग रही लहराई।।

तटित्सु वीचिमालासु प्रदीपस्य प्रभासु च।
सम्पत्सु कर्ममूलासु कस्य वा स्थिरतामतिः।।७१।।

मलकोशे शरीरेऽस्मिन् महादुःखविवर्धने।
तडिदङ्कुरसङ्काशे को वा रुच्येत पण्डितः।।७२।।

नित्यानन्दचिदाकारमात्मतत्त्वं विहाय कः।
विवेकी रमते देहे नश्वरे दुःखभाजने।।७३।।

विवेकी शुद्धहृदयो निश्चितात्मसुखोदयः।
दुःखहेतौ शरीरेऽस्मिन् कलत्रे च सुतेषु च।।७४।।

सुहृत्सु बन्धुवर्गेषु धनेषु कुलपद्धतौ।
अनित्यबुद्ध्या सर्वत्र वैराग्यं परमश्नुते।।७५।।

विवेकिनो विरक्तस्य विषयेष्वात्मरागिणः।
संसारदुःखविच्छेदहेतौ बुद्धिः प्रवर्तते।।७६।।

नित्यानित्यविवेकिनः सुकृतिनः शुद्धाशयस्यात्मनो
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यविभवेष्वस्थायितां पश्यतः।
नित्यानन्दपदे निराकृतजगत्संसारदुःखोदये
साम्बे चन्द्रशिरोमणौ समुदयेद्भक्तिर्भवध्वंसिनी।।७७।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
भक्तस्थले पिण्डादिस्थलत्रयप्रसङ्गो
नाम पञ्चमः परिच्छेदः।। ५ ।।

दीप बाति लौ करइ उजासा। सम्पति करमहि पाव नवासा।।
इहि चारिउ जो रह थिर सोची। सो अस कवन जासु मति पोची।।

दोहा - **नस्वर देह मलायतन बिबिध दुक्ख आगार।**
बिजुरी अँखुवा छनिक दुति को बुध करिहि पिआर॥138॥
सत चिन्मय आनन्द नित निज आतम कौ छाँड़।
कवन बिबेकी रमइ तँह जो सरीर दुखभाँड़॥139॥

छन्द - जे सुद्ध सुभावा हिरदै पावा धीर बिबेकहु धारा।
सो सुख करि माना आतम जाना बिगत फंद संसारा।।
लखि दुख कै कारन करइ निवारन देह पुत्र अरु नारी।
निज सखा सहाई बित्त कमाई बन्धु कुटुम्ब निहारी।।
होइ परम बिरागी एहि सबु त्यागी जानहि सकल अनित्या।
ए सबु दुख मूला अति प्रतिकूला आतम केवल सत्या।।
जो अहइ बिबेकी रह पद टेकी बिसय बिरक्त सयाना।
आतम रति लाई बुद्धि बनाई भवभय भेद न ठाना।।

दोहा - **नित्यानित्य बिबेकजुत पुन्य हृदय सुचि सन्त।**
गिन न तृनहु इन्द्रादि कै बैभव कोटि अनन्त॥140॥
भवभय बाधा हरइ जो कारन नित्यानन्द।
तेई साम्ब परमसिव तिन्ह करु भगति अमन्द॥141॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
षष्ठः परिच्छेदः

ततो विवेकसम्पन्नो विरागी शुद्धमानसः।
जिज्ञासुः सर्वसंसारदोषध्वंसकरं शिवम्।।१।।

उपैति लोकविख्यातं लोभमोहविवर्जितम्।
आत्मतत्त्वविचारज्ञं विमुक्तविषयभ्रमम्।।२।।

शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञं छिन्नसन्देहविभ्रमम्।
सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञं धार्मिकं सत्यवादिनम्।।३।।

कुलक्रमागताचारं कुमार्गाचारवर्जितम्।
शिवध्यानपरं शान्तं शिवतत्त्वविवेकिनम्।।४।।

भस्मोद्धूलननिष्णातं भस्मतत्त्वविवेकिनम्।
त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठं धृतरुद्राक्षमालिकम्।।५।।

लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम्।
लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञं निरुढाद्वैतवासनम्।।६।।

लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञं श्रीगुरुं शिववादिनम्।
सेवेत परमाचार्यं शिष्यो भक्तिभयान्वितः।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
छठवाँ परिच्छेद

चौपाई - तबु बिबेक जुत परम बिरागी। निरमल मन जिग्यासा लागी।।
चरन सरन श्रीगुरु कँह जाई। करइ प्रबोध बैठि मनु लाई।।
सो गुरु जस मुनिबर बिज्ञानी। तस हौं कहौं बुझाइ बखानी।।
सकल दोस संसृति कै हरई। गए सरन मंगलु सबु करई।।
जो परसिद्ध सकल जग माहीं। नहिं तँह लोभ मोह परिछाहीं।।
आतमतत्व बिचारक होई। संसय बिसय न ब्यापइ कोई।।
करगत सिवसिद्धान्त सदाई। संसय जाल छिन्न छितराई।।

दोहा - जानइ तंत्र प्रयोग सबु रत रह धरमाचार।
सत्य छाँड़ि नहिं कहइ कछु गुरु सो परम उदार।।142।।

चौपाई - कुलक्रम गुरुक्रम जे आचारा। तिन्हहि निबाहइ बिना बिचारा।।
कबहुँ कुमारग पर नहिं चलई। सिव कै ध्यान सदा जे धरई।।
सान्त चित्त जे परम अगाधा। सैवतत्व जानइ बिनु बाधा।।
भसम रचइ जे निपुन सरीरा। भसम तत्व जानइ सबु धीरा।।
माथे तिलक त्रिपुण्ड्र बनावन। रहइ सदा उत्सुक जन पावन।।
सदा कंठ रुद्राच्छ बिराजै। अरु रुद्राच्छ माल भलि साजै।।
करइ लिंग पूजा ब्रत नेमा। धारइ लिंग सश्रद्ध सप्रेमा।।

दोहा - तत्व जोग लिंगांग कै जो जानइ मति धीर।
दिढ़ अद्वैत बासना जेहि सो गुरु गंभीर।।143।।

चौपाई - लिंगांगहि थल भेद जो जाना। मानहु सो गुरु परम सयाना।।
सिव तजि जानइ देव न दूजा। मन बच करम नित्य कर पूजा।।

षण्मासान् वत्सरं वापि यावदेष प्रसीदति।
प्रसन्नं परमाचार्यं भक्त्या मुक्तिप्रदर्शकम्।।८।।

प्रार्थयेदग्रतः शिष्यः प्राञ्जलिर्विनयान्वितः।
भो कल्याण महाभाग शिवज्ञानमहोदधे।।९।।

आचार्यवर्य सम्प्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम्।
इति शुद्धेन शिष्येण प्रार्थितः परमो गुरुः।
शक्तिपातं समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम्।।१०।।

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः।।११।।

सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदैः।
वेधारूपा क्रियारूपा मन्त्ररूपा च तापस।।१२।।

गुरोरालोकमात्रेण हस्तमस्तकयोगतः।
यः शिवत्वसमावेशो वेधादीक्षेति सा मता।।१३।।

मान्त्री दीक्षेति सा प्रोक्ता मन्त्रमात्रोपदेशिनी।
कुण्डमण्डलिकोपेता क्रियादीक्षा क्रियोत्तरा।।१४।।

शुभमासे शुभतिथौ शुभकाले शुभेऽहनि।
विभूतिं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ताम्बूलपूर्वकम्।।१५।।

सो गुरु परमाचार्ज कहावा। ताहि पाइ सिस भाग्य मनावा।।
भवभय सहित भगतिजुत ताही। सेवउ सो निज भाग्य सराही।।
बरस आध अथवा भरि बरसा। सेवइ सहित सनेह सहरसा।।
जबु तक गुरु प्रसन्न नहिं होई। सिस्य भगत जुत सेवै सोई।।
मुकुति पंथ सोइ गुरु दरसावा। लोक बेद गुरु परम कहावा।।

दोहा - **सिष्य जाइ गुरु सम्मुख बिनय करइ कर जोरि।**
महाभाग कल्यान हे! करहु त्रान अबु मोरि॥144॥
हे शिवज्ञानमहोदधि सरन लेहु मोहिं नाथ।
हे गुरुबर आचार्जबर सिर पर रक्खहु हाथ॥145॥

चौपाई - यहु संसार सकल रुज मूला। गुरु तव कृपा मिटहिं भवसूला।।
सिष्य सुद्ध मन बिनवइ तेही। होइ प्रसन्न गुरु परम सनेही।।
सक्तिपात लच्छन लखि ताही। गुरु दीच्छा दै धरम निबाही।।
दीनि जाइ सिवग्यान सुहावा। पास बंध पुनि एहि नसावा।।
एहि कारन 'दीच्छा' सबु ग्यानी। दीन्ह नाम ब्युतपति पहिचानी।।
जे सिव आगम ग्यान पढ़ावइँ। दीच्छहि तीनि भेद बतलावइँ।।

दोहा - **भेद तीनि बेधा क्रिया मंत्र रूप तपखान।**
सिव आगमु बिख्यात यहु बुध सबु करइं बखान॥146॥

चौपाई - गुरु निज दीठि सिष्य पर आनी। तेहि कर भाल परस सुभ पानी।।
एहि बिधि जाइ सिवत्व समाई। सिष्य बोध पावइ अधिकाई।।
सो दीच्छा बेधा मुनिराजा। सम्यक जानइ सैव समाजा।।
गुरु सिवमंत्र करइ उपदेसा। दीच्छा मांत्री इहइ असेसा।।
तीसर दीच्छा क्रिया कहावा। मंडल कुंड सहित जो पावा।।
बिधि बिधान सबु कहउँ बखानी। तुम्ह जानउ मुनिबर बिग्यानी।।

दोहा - **सुभ तिथि सुभ मासइ दिवस सुभ सुभ काल बिचारि।**
देइ बिभूति नेवतइ भगत अरपइ पान सवाँरि॥147॥

यथाविधि यथायोगं शिष्यमानीय देशिकः।
स्नातं शुक्लाम्बरधरं दन्तधावनपूर्वकम्।।१६।।

मण्डले स्थापयेच्छिष्यं प्राङ्मुखं तमुदङ् मुखः।
शिवस्य नाम कीर्तिं च चिन्तामपि च कारयेत्।।१७।।

विभूतिपट्टं दत्त्वाग्रे यथास्थानं यथाविधि।
पञ्चब्रह्ममयैस्तत्र स्थापितैः कलशोदकैः।।१८।।

आचार्यः सममृत्विग्भिस्त्रिः शिष्यमभिषिञ्चयेत्।।१९।।

अभिषिच्य गुरुः शिष्यमासीनं परितः शुचिम्।
ततः पञ्चाक्षरीं शैवीं संसारभयतारिणीम्।।२०।।

तस्य दक्षिणकर्णे तु निगूढमपि कीर्तयेत्।
छन्दो रूपमृषिं चास्य दैवतान्यासपद्धतिम्।।२१।।

स्फाटिकं शैलजं वापि चन्द्रकान्तमयं तु वा।
बाणं वा सूर्यकान्तं वा लिङ्गमेकं समाहरेत्।।२२।।

सर्वलक्षणसंपन्ने तस्मिंल्लिङ्गे विशोधिते।
पीठस्थितेऽभिषिक्ते च गन्धपुष्पादिपूजिते।।२३।।

मन्त्रपूते कलां शैवीं योजयेद्विधिना गुरुः।
शिष्यस्य प्राणमादाय लिङ्गे तत्र निधापयेत्।।२४।।

जथा जोग गुरु जाँचि कै करि सबु साजु सँभार।
जथा काल सुभ लगन मँह दीच्छा केर बिचार॥148॥

चौपाई - सबु बिधि सिष्य सुद्ध करि लावा। दतुअन करि मुँह स्वच्छ करावा।।
करि अस्नान स्वेत पट धारा। मंडप रुचिर सिष्य बैठारा।।
सिष्य पुरुब मुँह करि आसीना। उत्तर मुँह गुरु स्वयं प्रबीना।।
सिष्य बोलि सिव नामु कहावा। कीर्तन भलीभाँति करवावा।।
बच्छ ध्यान अबु सिव कर करहू। मन ही मन परमेस्वर जपहू।।
अस कराइ गुरु सिष्य प्रबोधी। जेहि ते मिटि सबु भाव बिरोधी।।
बिधि बिधान सबु जोग बनावा। भालहि सिष्य भभूत रचावा।।

दोहा - पंच ब्रम्ह मय कलस जल, जो मंडप सुभ थान।
रित्विज सहित सुजान गुरु, कृत अभिसेक बिधान॥149॥

चौपाई - तेहि जल सिष्य करन अति पावन। तीन बार अभिसेक सुहावन।।
बैठि सिष्य अभिषेक कराई। आसन सहित पवित्र बनाई।।
पंचाच्छरी सकल सुभ खानी। भवभय तारिनि बिरति बखानी।।
सिष्य कान ढिग गुरु मुँह लाई। सैवी बिद्या दीन्ह सिखाई।।
स्वर अति मन्द गुपुत यहु रीती। सिष्य सुनइ धारइ अति प्रीती।।
एहि कर छन्द रिषी समुझाई। रीति देवता न्यास बताई।।

दोहा - लिंग फटिक मनि निर्मित, गिरि-उद्भव वा होय।
चन्द्रकान्तमनिमय मिलेउ नीर नर्मदा टोय॥150॥
अथवा सूरजकान्त मनि निर्मित लिंग महान।
लावै कोऊ एक गुरु करि बिचार बिद्वान॥151॥

चौपाई - लिंग सकल लच्छन जुत लावा। पीठ थापि तेहि सुद्ध करावा।।
करि अभिसेक जथाबिधि ओहा। गंध पुहुप पूजित सो सोहा।।
करि बिधिवत मंडप आचारा। जथा जोग तबु मंत्र उचारा।।
मंत्रपूत करि लिंग बिसोधा। सैवकला जुत करइ पुरोधा।।

तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे स्थापयेदेकभावतः।
एवं कृत्वा गुरुर्लिङ्गं शिष्यहस्ते निधापयेत्।।२५।।

प्राणवद्धारणीयं तत्प्राणलिङ्गमिदं तव।
कदाचित्कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः।।२६।।

यदि प्रमादात्पतिते लिङ्गे देहान्महीतले।
प्राणान् विमुञ्च सहसा प्राप्तये मोक्षसम्पदः।।२७।।

इति सम्बोधितः शिष्यो गुरुणा शास्त्रवेदिना।
धारयेच्छाङ्करं लिङ्गं शरीरे प्राणयोगतः।।२८।।

लिङ्गस्य धारणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आदृतं मुनिभिः सर्वैरागमार्थविशारदैः।।२९।।

लिङ्गधारणमाख्यातं द्विधा सर्वार्थसाधकैः।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति मुनिभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः।।३०।।

चिद्रूपं परमं लिङ्गं शाङ्करं सर्वकारणम्।
यत्तस्य धारणं चित्ते तदान्तरमुदाहृतम्।।३१।।

चिद्रूपं हि परं तत्त्वं शिवाख्यं विश्वकारणम्।
निरस्तविश्वकालुष्यं निष्कलं निर्विकल्पकम्।।३२।।

सत्तानन्दपरिस्फूर्तिसमुल्लासकलामयम्।
अप्रमेयमनिर्देश्यं मुमुक्षुभिरुपासितम्।।३३।।

करि दीच्छा जेहि सिष्य बनावा। तेहि कर प्रान खींचि गुरु लावा।।
अंकुस मुद्रा बिधि अपनाई। लिंग प्रानजुत दीन्हि सधाई।।

दोहा - **सिष्य प्रान मँह लिंग सो एकीभाव बनाइ।**
थापइ गुरु करि जतन बिधि दुहूँ एक ह्वै जाइ॥152॥
अस करि पूरन बिधि सकल सिष्य दाहिने हाथ।
गुरु रक्खइ सोई लिंग सुभ धरम मूल मुनिनाथ॥153॥

चौपाई - तबु गुरु देइ सिष्य अनुसासन। सकल पुन्यप्रद बैठि बरासन।।
अबु ते प्रानलिंग एहि जानहु। निज प्रानहु ते अधिकइ मानहु।।
करेउ प्रमादु तनिकु नहिं कतहूँ। नहि बिलगाउ देह ते कबहूँ।।
जदि प्रमादबस यहु सुनु धीरा। गिरइ भूइँ होइ बिलग सरीरा।।
तउ त्यागहु सहसा निज प्राना। मोच्छ लाभु नहिं साधन आना।।
सिष्य सिखावन गुरु ते पावा। सकल सास्त्र जेहि करतल आवा।।
काय-लिंग आबिजोग सँजोई। जबु लगि प्रान कंठ गत होई।।

दोहा - **प्रानलिंग धारन परम पुन्य हेतु कल्यानु।**
सकल पाप बिनसहिं झटिति इहाँ न संसय आनु॥154॥
यहु मत सबु आदर करहिं आगम तत्व प्रबीन।
आगमविद पंडित मुनी जे प्राचीन नवीन॥155॥

चौपाई - सरब अरथ साधक सबु कहहीं। धारन लिंग दुइ बिध अहहीं।।
बाहर भीतर भेदु बनावा। मुनि मुमुच्छु कहि सबुहिं जनावा।।
सकल जगत कारन जो होई। श्रेष्ठ लिंग सिव चिन्मय सोई।।
तेहि निज चित्त धरइ जे भगता। जानहु अन्तर लिंग समस्ता।।
परमतत्व चिद्रूप बखाना। अखिल लोक कारन सिव माना।।
निष्कल निरबिकल्प सो होई। सबु कालुष्य बिषमता खोई।।

परं ब्रह्म महालिङ्गं प्रपञ्चातीतमव्ययम्।
तदेव सर्वभूतानामन्तस्त्रिस्थानगोचरम्।।३४।।

मूलाधारे च हृदये भ्रूमध्ये सर्वदेहिनाम्।
ज्योतिर्लिङ्गं सदा भाति यद्ब्रह्मेत्याहुरागमाः।।३५।।

अपरिच्छिन्नमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
उपसनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया।।३६।।

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।३७।।

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्।।३८।।

आधारे हृदये वापि भ्रूमध्ये वा निरन्तरम्।
ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरं लिङ्गधारणम्।।३९।।

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम्।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गं योगी विभावयेत्।।४०।।

निरुपाधिकमाख्यातं लिङ्गस्यान्तरधारणम्।
विशिष्टं कोटिगुणितं बाह्यलिङ्गस्य धारणात्।।४१।।

दोहा - जेहि जोगी नित सिव कहहिं श्रद्धा भगति समेत।
अमल सहज सुख रूप सोइ बसइ जीव कै चेत।।156।।

चौपाई - फुरइ जहाँ सत चित आनन्दा। समुल्लास जुत कला अमन्दा।।
अनिर्देस्य अप्रमेय बिलासा। नित्य मुमुच्छु जन जेहि उपासा।।
रहित प्रपंच परे संसारा। निज प्रकास सबु लोकु पसारा।।
परब्रम्ह सो लिंग निरूपा। महालिंग सुभ अमल अनूपा।।
सो आभ्यन्तर लिंग कहावा। सबुहि जीव भीतर बइठावा।।
तीन होंइ थल मूलाधारा। भौंह मध्य हिरदै अबिकारा।।
एहि तीनहुँ मँह सो नित सोहा। जेहि ध्यावहिं जोगी गत मोहा।।

दोहा - ज्योतिलिंग सो सोहई भीतर देह प्रकास।
परम ब्रम्ह जेहि कहहिं सबु आगमु अति बिस्वास।।157।।

चौपाई - परिच्छिन्न जो कबहुँ न होई। अज अव्यक्त सनातन सोई।।
ब्रम्हरूप पुनि लिंग अभेदा। नेति नेति कहि गावहिं बेदा।।
सोइ निज माया प्रगट जनावा। स्वयं रूप परिच्छिन्न बनावा।।
देह गुहा मँह पइठेउ जाई। जीव उपासइ ध्यान लगाई।।
लिंग नामु जेहि कारन होई। सुनत बूझि संसय सबु खोई।।
सकल चराचर जँह लग आँहीं। प्रबिसइ लीन होइँ जेहि माँहीं।।

दोहा - पुनि पुनि उपजहिं तहँइ ते तहँइ होहिं पुनि लीन।
एहि ते सास्वत ब्रम्ह कँह लिंग नामु सबु कीन।।158।।

चौपाई - लिंग प्रसिद्ध सकल जग माँही। परम तत्त्व नहिं कबहुँ नसाही।।
चेतन अमल सहज सुखरासी। नित्य निरीह जोति अबिनासी।।
बिपुल बृहद बृंहन करि करमा। ब्रम्ह नामु एहि कारन धरमा।।
मूलाधार हृदय पुनि जानी। भौंह मध्य अथवा थित मानी।।
होइ निरन्तर अनुसंधाना। ज्योतिर्लिंग ध्यान बहु माना।।
एहि बिधि क्रिया निरन्तर होई। आंतर लिंग धारना सोई।।

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारमण्डले।।४२।।

अन्तर्लिङ्गानुसन्धनमात्मविद्यापरिश्रमः ।
गुरूपासनशक्तिश्च कारणं मोक्षसम्पदाम्।।४३।।

वैराग्यज्ञानयुक्तानां योगिनां स्थिरचेतसाम्।
अन्तर्लिङ्गानुसन्धाने रुचिर्बाह्ये न जायते।।४४।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्याश्च लोकपाः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा दानवा मानवास्तथा।।४५।।

सर्वे च ज्ञानयोगेन सर्वकारणकारणम्।
पश्यन्ति हृदये लिङ्गं परमानन्दलक्षणम्।।४६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शाङ्करं लिङ्गमुत्तमम्।
आन्तर्विभावयेद्विद्वान् अशेषक्लेशमुक्तये।।४७।।

अन्तर्धारयितुं लिङ्गमशक्तः शक्त एव वा।
बाह्यं च धारयेल्लिङ्गं तद्रूपमिति निश्चयात्।।४८।।

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
इष्टलिङ्गमिदं स्थूलं यद्बाह्ये धार्यते तनौ।।४९।।

दोहा - **सुबरन मूलाधार मँह जोगी धारइ ध्यान।**
मूँगा दुति हिरदै प्रगट भौं बिच फटिक समान॥159॥
तीनिउँ थल आभा बिलग आगम कहइ विचार।
लिंग एकु थल भेद ते जोति प्रभाउ प्रकार॥160॥

चौपाई - आन्तर लिंग धारना जोई। सो निरुपाधिक कह सबु कोई।।
बाहेर लिंग धारना पेखी। आन्तर गुना करोर बिसेषी।।
धारइँ जे हिरदै चिद रूपा। ब्रम्ह जोतिमय लिंग अनूपा।।
ते न आव पुनि एहि संसारा। दुसह दुखद सो घोर अपारा।।
अन्तर्लिंग ध्यान नित करई। साधु आचरन जे निरबहई।।
निरत निरंतर आतम ग्याना। जीव परम सुचि सास्त्र बखाना।।

दोहा - **नित चित लावहिं गुरु चरन छाँड़ि कपट छल मान।**
बिबिध भाँति सेवहिं गुरुहि धन्य सिष्य जगु जान॥161॥
ध्यान जे अंतर्लिंग कै श्रम जे आतम ग्यान।
गुरुपद भगति ए तीनिउँ मोच्छ दुआर प्रमान॥162॥

चौपाई - जेहि के ग्यान बिराग सुहावा। थिर मति जोगी ध्यान लगावा।।
अन्तर्लिंग प्रीति जे करहीं। बाह्यलिंग रुचि रंचि न धरहीं।।
ब्रम्हा बिस्नु रुद्र तिरदेवा। सुरपति लोकपाल सबु जे बा।।
सिद्ध सकल गंधर्ब मुनीसा। दानव मानव सहित महीसा।।
ए सबु ग्यान जोग सुचि धारी। सबुहि कारनहि कारन भारी।।
निज हिरदै सोइ लिंग बसावहिं। परमानन्द लछन लखि भावहिं।।
बिग्य जोगरत जे नर अहई। सकल कलेस मुकुति जो चहई।।
तौ सबु बिधि करि जतन सयाना। सुभ सिवलिंग अंतरहि ध्याना।।

दोहा - **धारन अन्तर्लिंग कौ समरथ होउ न होउ।**
ध्याइ रूप सो बाह्य कौ निश्चय धारय सोउ॥163॥

प्राणलिङ्गमिदं सूक्ष्मं यदन्तर्भावनामयम्।
परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते।।५०।।

भावनातीतमव्यक्तं परब्रह्म शिवाभिधम्।
इष्टलिङ्गमिदं साक्षादनिष्टपरिहारतः।।
धारयेदवधानेन शरीरे सर्वदा बुधः।।५१।।

मूर्ध्नि वा कण्ठदेशे वा कक्षे वक्षःस्थलेऽपि वा।
कुक्षौ हस्तस्थले वापि धारयेल्लिङ्गमैश्वरम्।।५२।।

नाभेरधस्ताल्लिङ्गस्य धारणं पापकारणम्।
जटाग्रे त्रिकभागे च मलस्थाने न धारयेत्।।५३।।

लिङ्गधारी सदा शुद्धो निजलिङ्गं मनोरमम्।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः करपीठे समाहितः।।५४।।

बाह्यपीठार्चनादेतत् करपीठार्चनं वरम्।
सर्वेषां वीरशैवानां मुमुक्षूणां निरन्तरम्।।५५।।

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा मुनयो गौतमादयः।
धारयन्ति सदा लिङ्गमुत्तमाङ्गे विशेषतः।।५६।।

लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वाः शिवभक्तिविभाविताः।
धारयन्त्यलिकाग्रेषु शिवलिङ्गमहर्निशम्।।५७।।

चौपाई - लिंग त्रिविध कहि बुध समुझावहिं। थूल एक एक सूछ्म बतावहिं।।
परात्परहु यहु तीसर भेदा। लिंग भेद बरनहिं सबु बेदा।।
बाहेर जे तन सतत धराई। इष्टलिंग सो थूल कहाई।।
अन्तर्भाव रूप जे होई। प्रानलिंग सूच्छम कह सोई।।
अहइ परात्पर जाके नामा। तृप्तिलिंग कहि जाइ निकामा।।
जो अव्यक्त भावनातीता। परब्रम्ह सिव नाम पुनीता।।

दोहा - इष्टलिंग साक्षात यहु करइ अमंगल दूर।
सावधान धारन करेइ सैव सदा मति पूर॥164॥

चौपाई - उत्तमांग मूर्धा कहलावा। ता पर यहु सिवलिंग सुहावा।।
धारन करइ भगत करि नेमा। इष्टलिंग यहु सतत सप्रेमा।।
जदि वा धारन कर निज कंठा। सिव मँह जेहि कर भगति अकुंठा।।
अथवा देह बगल लटकावै। वा पुनि निज उर सतत लगावै।।
उदर भाग एहि धारन करई। अथवा करतल गत सो रहई।।
देह भाग ए कहे अनेका। लिंग धारि जँह सहित बिबेका।।

दोहा - कबहुँक नीचे नाभि के चाहे जान अजान।
सपनेउ लिंग न धारिअ एहि सम पाप न आन॥165॥
जटा भागु आगे नहीं कबहुँ न पाछे पीठि।
मलस्थान एहि लिंग कौ धारन देउ न दीठि॥166॥

चौपाई - इष्टलिंग जे धारन करहीं। सदा सुद्ध अस आगम कहहीं।।
सो निज लिंग मनोरम चाहिअ। पूजन धरि कर पीठ सराहिअ।।
होइ एकाग्रचित मुनिराया। पूजिअ सबु उपचार सहाया।।
बीर सैव जे मोच्छ मनावहिं। निज आश्रित करपीठ बनावहिं।।
बाह्य पीठ अरचन सबु भाँती। सो करपीठ ते हेठ कहाती।।
देव कोटि ब्रम्हादिक जेई। गौतमादि मुनि कोटि गिनेई।।
निज निज सिरन्ह बिसेष सम्हारहिं। इष्टलिंग तँह सादर धारहिं।।

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य निश्चयात्।।५८।।

ऋगित्याह पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते।
तस्मात्पवित्रं तल्लिङ्गं धार्यं शैवमनामयम्।।५९।।

ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः।
पवित्रं तद्धि विख्यातं तत्सम्पर्कात्तनुः शुचिः।।६०।।

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम्।।६१।।

अघोराऽपापकाशीति या ते रुद्र शिवा तनूः।
यजुषा गीयते यस्मात् तस्माच्छैवोऽघवर्जितः।।६२।।

यो लिङ्गधारी नियतान्तरात्मा
नित्यं शिवाराधनबद्धचित्तः।
स धारयेत् सर्वमलापहत्यै
भस्मामलं चारु यथाप्रयोगम्।।६३।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले गुरुकारुण्य-लिङ्गधारणस्थल-प्रसङ्गो नाम षष्ठः परिच्छेदः।। ६ ।।

दोहा - **लच्छ्म्यादिक सुभ सक्ति जे सैव भगतिमय गात।**
तेउ धारहिं सिवलिंग यहु निज माथे दिन रात॥167॥
कामिकादि आगम कहहिं बेदहु सास्त्र पुरान।
धरम लिंग धारन परम बीरसैव धरु ध्यान॥168॥

चौपाई - कह रिग्बेद सुनहु हे ब्रम्हा। सुनि जनि रंचिउ करहु अचम्भा।।
यहु सिवलिंग वितत अति होई। सिव ते धरनि ब्यापि सबु कोई।।
परम पवित्र न संसय काहू। धारहु लेहु धरम कै लाहू।।
सिव स्वामी ब्रम्हा कै होईं। लिंग ब्रम्ह यहु कह सबु कोई।।
तेहि ते परम पवित्र कहावा। एहि संपर्क देह सुचि भावा।।
जो न तपस्या तप अग्यानी। अन्तः काचा मति न सयानी।।

दोहा - **करि सक धारन लिंग नहिं सो दीच्छा ते हीन।**
संसकार बरजित सकल नर अपात्र बल खीन॥169॥

छन्द - हे रुद्र अधारा सबु संसारा तव तनु मंगलकारी।
सो सहज प्रकासी पापबिनासी देह अघोर तिहारी।।
पुनि बेद सुनावहिं यजु यहु गावहिं तुम्ह सबु मेटहु तापा।
एहि कारन तारे सैव सुधारे छुवइ न तेहि कछु पापा।।

दोहा - **जो थिर आतम ग्यान ते लिंग बिमल धर देह।**
सिव अर्चन में रमि रह्यो सन्तत सहित सनेह॥170॥
बिमल रमावै भसम सो मेटन कौ निज पाप।
बिधि बिधान ते नित्य ही समन होई संताप॥171॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह छठवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
सप्तमः परिच्छेदः

भस्मधारणसंयुक्तः पवित्रो नियताशयः।
शिवाभिधानं यत्प्रोक्तं भासनाद्भसितं तथा।।१।।

महाभस्मेति सञ्चिन्त्य महादेवं प्रभामयम्।
वर्तन्ते ये महाभागा मुख्यास्ते भस्मधारिणः।।२।।

शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं मन्त्रन्यासादियोगतः।
तदुपाधिकमित्याहुर्भस्मतन्त्रविशारदाः ।।३।।

विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनः।
एतानि पञ्चनामानि हेतुभिः पञ्चभिर्भृशम्।।४।।

विभूतिर्भूतिहेतुत्वाद् भसितं तत्त्वभासनात्।
पापानां भर्त्सनाद्भस्म क्षरणात् क्षारमापदाम्।।
रक्षणात् सर्वभूतेभ्यो रक्षेति परिगीयते।।५।।

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः।।६।।

कपिला कृष्णा च धवला धूम्रा रक्ता तथैव च।
नन्दादीनां गवां वर्णाः क्रमेण परिकीर्तिताः।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
सातवाँ परिच्छेद

चौपाई - इष्टलिंग धारन जो करई। भसम धारना संजुत रहई।।
तेहि के आसय कबहुँ न टरई। भगति समेत सदा सुचि रहई।।
जे पंचाच्छर सिव कै नामा। भासन हेतु भसित परिनामा।।
रुचिर प्रभामय जासु सरूपा। महादेव सो दिब्य अनूपा।।
महाभसम सो प्रगट बनावा। गुन अनुरूप नामु जसु पावा।।
ताहि सुमिरि बरतइ बड़भागी। मुख्य भसमधारी सो बिरागी।।

दोहा - मंत्र न्यास संजोग ते जो सिवाग्नि संभूत।
भस्मतंत्र वेत्ता कहइँ सो सोपाधि भभूत।।172।।

चौपाई - भसित बिभूति भसम अरु छारा। रच्छा नाम ए पंच प्रकारा।।
पाँच हेतु ते नामहु पाँचा। अति विसिष्ट कारन तँह साँचा।।
करइ भूति ऐस्वर्ज बनावा। तेहि कारन बिभूति कहलावा।।
भासन तत्व प्रकासन सोई। तेहि ते भसित नाम अस होई।।
भर्त्सन करइ पाप कै नासा। सो कारन एहि भस्म प्रकासा।।
आफत विपत छरन जो करई। छार नामु ताते यहु धरई।।
सकल जीव ते रच्छन कारन। रच्छा नामु करइ सो धारन।।

दोहा - नंदा भद्रा अरु सुरभि गाय तीन अरु दोय।
सुसीला सुमना बहुरि परमेस्वर कै होय।।173।।

चौपाई - पंचानन सिव सदा कहाहीं। सद्योजात आदि मुख आहीं।।
पाँचों धेनु पाँच मुँह द्वारा। प्रगट भईं क्रम ते संसारा।।

सद्योजाताद्विभूतिश्च वामाद्भसितमेव च।।८।।

अघोराद्भस्म संजातं तत्पुरुषात्क्षारमेव च।
रक्षा चेशानवक्त्राच्च नन्दादिद्वारतोऽभवत्।।९।।

धारयेन्नित्यकार्येषु विभूतिं च प्रयत्नतः।
नैमित्तिकेषु भसितं क्षारं काम्येषु सर्वदा।।१०।।

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु भस्म नाम यथाविधि।
रक्षा च मोक्षकार्येषु प्रयोक्तव्या सदा बुधैः।।११।।

नन्दादीनां तु ये वर्णाः कपिलाद्याः प्रकीर्तिताः।
त एव वर्णा विख्याता भूत्यादीनां यथाक्रमम्।।१२।।

भस्मोत्पादनमुद्दिष्टं चतुर्धा तन्त्रवेदिभिः।
कल्पं चैवानुकल्पं तु उपकल्पमकल्पकम्।।१३।।

एषामादिममुत्कृष्टमन्यत् सर्वमभावतः।
यथाशास्त्रोक्तविधिना गृहीत्वा गोमयं नवम्।।१४।।

सद्येन वामदेवेन कुर्यात् पिण्डमनुत्तमम्।
शोषयेत्पुरुषेणैव दहेद् घोराच्छिवाग्निना।।१५।।

कल्पं तद्भस्म विज्ञेयमनुकल्पमथोच्यते।
वनेषु गोमयं यच्च शुष्कं चूर्णीकृतं तथा।।१६।।

कपिल स्याम अरु धवल धुँवासी। क्रम ते पँचई लाल प्रकासी।।
सुंदर सबु बिधि धेनु सराही। दिब्य प्रभाउ प्रगट जग आही।।
सद्योजात मुँह प्रगटी नंदा। तेहि ते भई बिभूति अमन्दा।।
बामदेव मुँह भद्रा आई। तेहि ते प्रगटी भसित सुहाई।।
सुरभि अघोर बदन लगि जाता। तेहि ते भसम प्रगट हे ताता।।
तत्पुरुषानन जाति सुसीला। ताते प्रगट छार यहु लीला।।
पाँचवँ मुँह ईसान कहावा। तँह ते रच्छा प्रगट सुहावा।।

दोहा - **महादेव कै पाँच मुँह पाँच प्रगट भईं गाय।**
भसम पाँच तेहि पाँच ते परमेस्वर उपजाय॥174॥

चौपाई - नित्यकरम मँह धरइ बिभूती। नैमित्तिक मँह भसित सप्रीती।।
काम्य करम मँह छार नवीना। प्रायश्चित्त मँह भसम प्रवीना।।
मोच्छकरम मँह रच्छा लावइ। ग्यानी पंडित देह लगावइ।।
कपिलादिक जे बरन बखाने। नंदादिक गइयन पहिचाने।।
तेई बरन जथाक्रम रहहीं। भसम बिभूति आदि जे अहहीं।।
भसमोत्पादन चारि प्रकारा। तंत्रसास्त्र एहि कथन अधारा।।

दोहा - **कल्प अउर अनुकल्प पुनि कह उपकल्प अकल्प।**
एहि चारिउ मँह बुध कहहिं पहिला श्रेष्ठ अनल्प॥175॥
जदि पहिला खोजेउ बहुत मिलइ न रहइ अभाउ।
सेष ग्राह्य तीनिउँ तबइ कैसेउ काम चलाउ॥176॥

चौपाई - जस कछु सास्त्र कहेउ सो कीना। ताजा गोबर गाय कऽ लीना।।
सद्योजात मंत्र करि जापा। बामदेव ते कीन्हेउ थापा।।
मंत्र जापि तत्पुरुष सुखावा। करि अघोर जपु ताहि जरावा।।
एहि बिधि भसम पवित्र बनावा। कल्प नामु ते सोइ कहावा।।

दग्धं चैवानुकल्पाख्यमापणादिगतं तु यत्।
वस्त्रेणोत्तारितं भस्म गोमूत्राबद्धपिण्डितम्।।१७।।

दग्धं प्रागुक्तविधिना भवेद्भस्मोपकल्पकम्।
अन्यैरापादितं भस्माप्यकल्पमिति निश्चितम्।।१८।।

एष्वेकतममादाय पात्रेषु कलशादिषु।
त्रिसन्ध्यमाचरेत्स्नानं यथासंभवमेव वा।।१९।।

स्नानकाले करौ पादौ प्रक्षाल्य विमलाम्भसा।
वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।।२०।।

अष्टकृत्वाथ मूलेन मौनी भस्माभिमन्त्र्य च।
शिर ईशानमन्त्रेण पुरुषेण मुखं तथा।।२१।।

हृत्प्रदेशमघोरेण वामदेवेन गुह्यकम्।
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं प्रणवेनैव सेचयेत्।।२२।।

भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्।
स्नानेषु वारुणाद्येषु मुख्यमेतन्मलापहम्।।२३।।

भस्मस्नानवतां पुंसां यथायोगं दिनेदिने।
वारुणाद्यैरलं स्नानैर्बाह्यदोषापहारिभिः।।२४।।

आग्नेयं भस्मना स्नानं यतिभिस्तु विधीयते।
आर्द्रस्नानात्परं भस्म आर्द्रे जन्तुवधो ध्रुवम्।।२५।।

अब अनुकल्प कवन बिधि होई। सुनहु बुझाइ कहौं सबु सोई।।
बन मँह भूइँ परा जे गोबर। सूखा खंड खंड भा जेहि कर।।
तेहि जराइ जो भसम बनावा। एहि प्रकार अनुकल्प कहावा।।

दोहा - **भसम लाइ दूकान ते कपड़छान बहु कीन्ह।**
गाय मूत लगि पिण्ड करि ताहि सुखावन दीन्ह॥177॥

चौपाई - पूरब बिधि सों ताहि जरावा। सो उपकल्पक भसम कहावा।।
जानइ नहिं बिधान बिधि करमा। भसम बनावइ करइ अधरमा।।
तेहि कर भसम अकल्प कहावा। अस सबु सैव सास्त्र समुझावा।।
कलस आदि सुचि पात्र संजोई। एहि मँह लेइ भसम एकु कोई।।
तीनउँ संझा काल सयाना। प्रतिदिन भगत करउ अस्नाना।।
जदि तीनउँ संभव नहि होई। अवसि बार एकु कीजिअ सोई।।

दोहा - **बरनउँ भसम नहान बिधि बिमल बारि लै साथ।**
प्रथम पखारै पदजुगल धोवै पुनि दोउ हाथ॥178॥

चौपाई - बायें हाथ भसम जो रोपै। दायें हाथ भसम सो तोपै।।
मूल मंत्र निःसबद उचारा। भसम परोरइ आठहिं बारा।।
तब ईसान मंत्र सों सीसा। तत्पुरुषहि मुँह करइ मुनीसा।।
मंत्र अघोर हृदय लगि बोला। बामदेव ते गुह्य टटोला।।
सद्यो जात मंत्र ते चरना। सबुइ अंग ओंकार सिधरना।।
एहि बिधि कहेउ भसम अस्नाना। आगनेय अति उत्तम माना।।

दोहा - **बारुन आदि नहान जे मुख्य भसम यहु तासु।**
सबु प्रकार मल दूरि करि आतम करइ उजासु॥179॥
बाह्य दोस केवल मिटै करि बारुन अस्नान।
भसम न्हान सास्त्रोक्त नित पुनि का अन्य नहान॥180॥

आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात् प्रकृतिं बन्धनं विदुः।
प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं भस्मना स्नानमिष्यते।।२६।।

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे मुनयो नारदादयः।
योगिनः सनकाद्याश्च बाणाद्या दानवा अपि।।२७।।

भस्मस्नानयुताः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः।
निर्मुक्तदोषकलिला नित्यशुद्धा भवन्ति हि।।२८।।

नमश्शिवायेति भस्म कृत्वा सप्ताभिमन्त्रितम्।
उद्धूलयेत्तेन देहं त्रिपुण्ड्रं चापि धारयेत्।।२९।।

सर्वाङ्गोद्धूलनं चापि न समानं त्रिपुण्ड्रकैः।
तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना।।३०।।

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं भस्मना सलिलेन च।
स्थानेषु पञ्चदशसु शरीरे साधकोत्तमः।।३१।।

उत्तमाङ्गे ललाटे च श्रवणद्वितये तथा।
गले भुजद्वये चैव हृदि नाभौ च पृष्ठके।।३२।।

बाहुयुग्मे ककुद्देशे मणिबन्धद्वये तथा।
त्रिपुण्ड्रं भस्मना धार्यं मूलमन्त्रेण साधकैः।।३३।।

वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।
अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन् वाराभिमन्त्र्य च।।३४।।

चौपाई - जे तापस जे जती बिरागी। भसम नहान करइँ ते आगी।।
जल ते बड़ तँह भसम कहावा। जल नहान हिंसा बहु आवा।।
जल कँह प्रकृति कहहिं सबु धीरा। प्रकृति होइ बंधन गंभीरा।।
प्रकृति बन्ध नहिं चाह सयाना। एहि ते करइ भसम अस्नाना।।
ब्रम्हा आदि सकल सुर नाना। मुनि जेते देवर्षि समाना।।
जोगी जे सनकादि बखाना। बान आदि दानव परधाना।।
सो सिव भगति लीन सबु रहहीं। भसम नहान सदा ते करहीं।।

दोहा - दोस पंक निरमुकुत ते नित्यसुद्ध जग जान।
सबु सिवभगति परायन संजुत भसम नहान॥181॥

चौपाई - महामन्त्र जपि नमः शिवाय। सात बार तेहि भसम फिराय।।
तबु सो भसम सरीर रमावै। पुनि अंगनि तिरपुंड लगावै।।
सकल सरीर भसम जदि आना। सोउ न होइ तिरपुंड समाना।।
जौ दोऊ बनि सकइ बनावा। एहि ते अधिक पुन्य नहिं पावा।।
जदि भसमोद्धूलन रति नाहीं। करि सरीर तिरपुंड अघाहीं।।
साधक चह तिरपुंड बनावा। बिमल सलिल अरु भसम मिलावा।।
पनरह थल सरीर मँह सोधा। रच तिरपुंड सो साधक जोधा।।
मूलमंत्र करि करि उच्चारा। तँह साधक तिरपुंड सँवारा।।

दोहा - सिर ललाट अरु करन दोउ कंठ बाहु जुग पीठ।
हृदय नाभि कर जुगल पुनि ककुद कलाई दीठ॥182॥
बाँयें हाथहि रखि भसम दाँये हाथहि ढाँकि।
अग्नि आदि सुभ मंत्र ते जल परोरि बिधि बाँकि॥183॥

चौपाई - पनरह थल जे पहिले कहे। तहँ तिरपुंड भसम निरबहे।।
जे तिरपुंड बनावइ प्रानी। सो सिव कर सिव पावइ दानी।।

त्रिपुण्ड्रमुक्तस्थानेषु दध्यात् सजलभस्मना।
शिवं शिवङ्करं शान्तं स प्राप्नोति न संशयः।।३५।।

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु।
षडङ्गुलायतं मानमपि वाऽलिकमानकम्।।३६।।

नेत्रयुग्मप्रमाणेन फाले दध्यात् त्रिपुण्ड्रकम्।
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः ।
धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स रुद्रो नात्र संशयः।।३७।।

ऋजु श्वेतमनुव्याप्तं स्निग्धं श्रोत्रप्रमाणकम्।
एवं सल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रं सर्वसिद्धिदम्।।३८।।

प्रातःकाले च मध्याह्ने सायाह्ने च त्रिपुण्ड्रकम्।
कदाचिद्भस्मना कुर्यात् स रुद्रो नात्र संशयः।।३९।।

एवंविधं विभूत्या च कुरुते यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
स रौद्रधर्मसंयुक्तस्त्रयीमय इति श्रुतिः।।४०।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवाः शक्रपुरोगमाः।
त्रिपुण्ड्रं धारयन्त्येव भस्मना परिकल्पितम्।।४१।।

वसिष्ठाद्या महाभागा मुनयः श्रुतिकोविदाः।
धारयन्ति सदाकालं त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्।।४२।।

शैवागमेषु वेदेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
स्मृतीतिहासकल्पेषु विहितं भस्मपुण्ड्रकम्।।
धारणीयं समस्तानां शैवानां च विशेषतः।।४३।।

परम सान्त पद पावइ सोई। एहि मँह संसय कबहुँ न होई।।
तीनउँ अंगुरी मध्य मिलाई। तर्जनि मध्य अनामि कहाई।।
दहिन हाथ एहि आंगुरि तीना। सजल भसम एहि पहिं करि लीना।।
छै अंगुल आयत तिरपुंडा। अथवा भरि ललाट कै मुंडा।।
दूनउ नयन बीच जित होई। भसम रेख खींचइ बड़ सोई।।

दोहा - **मध्यम अउर अनामिका अंगुरी रेख बनाइ।**
ऊपर नीचे फरक दै बिधि अनुलोम सहाइ॥184॥
तेहि दूनउ बिच रेख पुनि बिधि बिलोम अपनाइ।
अउँठा देइ बनावई भगत सो रुद्र कहाइ॥185॥

चौपाई - अबिरल सरल स्वेत तिहुँ रेखा। दूनहुँ कान लगायत देखा।।
चिक्कन गहबर जो झलकाई। सो त्रिपुंड्र उत्तम कहलाई।।
अस त्रिपुंड्र जो रचइ सयाना। सो सबु सिधि पावइ कल्याना।।
भोर दुपहरे संझा काले। अस त्रिपुंड्र बनवइ जो भाले।।
कबहुँ कबहुँ पुनि सो जदि रचई। निसिचय रुद्र न मनई अहई।।
एहि बिधि जे बिभूति अपनाई। निज ललाट तिरपुंड रचाई।।

दोहा - **सैव धरम सो रमि रहा सकल बेदमय धीर।**
एहि मँह कछु संसय नहीं बेद बचन गंभीर॥186॥

चौपाई - इन्द्र उपेन्द्र बिबुधगन नाना। ब्रम्हा रुद्र रहित अभिमाना।।
सबु धारहिं तिरपुंड सुहावा। बिमल सलिल जुत भसम बनावा।।
महाभाग स्रुतिकोबिद ग्यानी। मुनि बसिष्ठ आदिक बिग्यानी।।
ते तिरपुंड धरहिं सबु काला। भसम रचित करि हृदय बिसाला।।
सैव सकल जगु जहँ लागि आहीं। अति पवित्र तिन्ह कर परिछाहीं।।
कारन इहाँ एक भरि भाखा। रचि तिरपुंड देह तिन्ह राखा।।

दोहा - **सैवागम इतिहास स्मृति स्रुति सुभ कलप पुरान।**
भसम रचित तिरपुंड कइ सबु मँह बिहित बिधान॥187॥

नास्तिको भिन्नमर्यादो दुराचारपरायणः।
भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।।४४।।

भस्मना विहितस्नानस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः।
शिवार्चनपरो नित्यं रुद्राक्षमपि धारयेत्।।४५।।

रुद्राक्षधारणादेव मुच्यन्ते सर्वपातकैः।
दुष्टचित्ता दुराचारा दुष्प्रज्ञा अपि मानवाः।।४६।।

पुरा त्रिपुरसंहारे त्रिनेत्रो जगतां पतिः।
उदपश्यत् पुरां योगमुन्मीलितविलोचनः।।४७।।

निपेतुस्तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः।
तेभ्यो जाता हि रुद्राक्षा रुद्राक्षा इति कीर्तिताः।।४८।।

रुद्रनेत्रसमुत्पन्ना रुद्राक्षा लोकपावनाः।
अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन भवन्त्युत्पत्तिभेदतः।।४९।।

नेत्रात्सूर्यात्मनः शम्भोः कपिला द्वादशोदिताः।
श्वेताः षोडशसञ्जाताः सोमरूपाद्विलोचनात्।।५०।।

कृष्णा दशविधा जाता वह्निरूपाद्विलोचनात्।
एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा स्मृता।।५१।।

अच्छिद्रं कनकप्रख्यमनन्यधृतमुत्तमम्।
रुद्राक्षं धारयेत् प्राज्ञः शिवपूजापरायणः।।५२।।

चौपाई - जे नास्तिक जे सास्त्र बिहीना। लम्पट दुराचार मँह लीना।।
तेऊ जदि तिरपुंड रचावैं। जनम जनम निज पाप नसावैं।।
भसम नहान नित्य जे करहीं। निज ललाट तिरपुंडहु धरहीं।।
सादर करहिं नित्य सिव अर्चन। चाहिअ तेहि रुद्राच्छुहु धारन।।
मानुस दुराचार रत नितहीं। दुर्बुद्धी कुबिचारत चितहीं।।
सबु पातक ते छूटहिं तेऊ। निज रुद्राच्छ धरहिं तन जेऊ।।

दोहा - अति पवित्र रुद्राच्छ यहु आयहु जग जेहि हेत।
अचरज सुनहु मुनीस तुम्ह थिर मन प्रेम समेत।।188।।

चौपाई - सबु प्रसंग जानहु मुनिराई। देव दनुज संग भई लराई।।
दनुज जुद्ध करि देव सतावहिं। आपु त्रिपुर मँह जाइ दुरावहिं।।
देव गये जगदीसहि सरना। त्रिपुरनास बिनु दनुज न मरना।।
सिव तबु रौद्र रूप निज धारा। कोपेउ कियउ त्रिपुर संहारा।।
तीनउँ नयन खुलेउ तेहि काला। दीठि त्रिपुर पँह गई कराला।।
ऊपर त्रिपुर देख त्रिपुरारी। अपलक तीनउँ नयन उधारी।।

दोहा - तिन्ह नयनन्ह बरसत भए निकरि भूरि जलबिन्दु।
भूमि परत रुद्राच्छ भे चकित देखि भालेन्दु।।189।।
रुद्र अच्छ ते प्रगट भे नाउँ परा रुद्राच्छ।
जगत विदित महिमा अमित धारन मोच्छ-गवाच्छ।।190।।

चौपाई - सदा लोकपावन विख्याता। रुद्रनयन रुद्राच्छ सुजाता।।
रुद्र नयन उत्पत्ति बिचारा। आठ तीस रुद्राच्छ प्रकारा।।
ते सबु भेद सुनहु धरि ध्याना। नहि पवित्र कोउ एहि समाना।।
रुद्रनयन जे भानु सरूपा। तेहि ते बारह कपिल अनूपा।।
प्रगटे सोरह धवल सुहावन। सोमनयन ते अति सुभ पावन।।
अगिन रूप जे नयन कहावा। स्याम बरन तेहि ते दस आवा।।

यथास्थानं यथावक्त्रं यथायोगं यथाविधि।
रुद्राक्षधारणं वक्ष्ये रुद्रसायुज्यसिद्धये।।५३।।

शिखायामेकमेकास्यं रुद्राक्षं धारयेद् बुधः।
द्वित्रिद्वादशवक्त्राणि शिरसि त्रीणि धारयेत् ।।५४।।

षट्त्रिंशद्धारयेन्मूर्ध्नि नित्यमेकादशानान्।
दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट् षट् कर्णद्वये वहेत्।।५५।।

षडष्टवदनान् कण्ठे द्वात्रिंशद्धारयेत् सदा।
पञ्चाशद्धारयेद् विद्वान् चतुर्वक्त्राणि वक्षसि।।५६।।

त्रयोदशमुखान् बाह्वोर्धरेत् षोडश षोडश।
प्रत्येकं द्वादश वहेन्नवास्यान् मणिबन्धयोः।।५७।।

चतुर्दशमुखं यज्ञसूत्रमष्टोत्तरं शतम्।
धारयेत् सर्वकालं तु रुद्राक्षं शिवपूजकः।।५८।।

एवं रुद्राक्षधारी यः सर्वकाले तु वर्तते।
तस्य पापकथा नास्ति मूढस्यापि न संशयः।।५९।।

ब्रह्महा मद्यपायी च स्वर्णहृद् गुरुतल्पगः।
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा कृतघातकः।।

दोहा - **एहि बिधि उद्भव भेद ते बिबिध बरन रुद्राच्छ।**
जे धारहिं ते पावहीं सिव कइ कृपा कटाच्छ॥191॥
जेहि नहिं बेधेउ कीट कहुँ सकल भाँति निरदोष।
अच्छ कनकदुति उत्तम निखिल गुनन को कोष॥192॥

चौपाई - सिव अरचन बन्दन नित करहीं। बुध रुद्राच्छ जथाबिधि धरहीं।।
सो सबु कहब सास्त्र परमाना। रुद्र अच्छ धारन बिधि नाना।।
जेहि ते भगत सिद्ध होइ आवइ। सिव साजुज्य परमगति पावइ।।
केते मुँह कँह कँह निज देहा। केहि बिधि धारइ सहित सनेहा।।
सास्त्र सकल सुभ लछन बिचारी। होंइ जेहि ते प्रसन्न तिपुरारी।।
जो रुद्राच्छ धरन बिधि जाना। निहचय सो सिवभगत सयाना।।

दोहा - **सिखा एकमुँह एक ही सिर पर धारइ तीन।**
दुइ तिन बारह मुँह रहइँ अस सबु करइँ प्रबीन॥193॥
ग्यारह मुँह मस्तक धरै संख्या छत्तीस होउ।
पाँच सात दस मुँह बहुरि छह छह कानन दोउ॥194॥
गरे आठ छह मुँह सुभग धरै सदा बत्तीस।
चौमुँह बुध छाती धरै संख्या दून पचीस॥195॥
सोरह सोरह बाहु मँह तेरह मुँह जो होय।
बारह प्रति मनिबंध मँह नौ आनन संजोय॥196॥
चौदह मुँह रुद्राच्छ लै एक सौ आठ पिरोय।
अति पुनीत पहिरै सदा भगत जनेऊ सोय॥197॥

चौपाई - एहि प्रकार रुद्राच्छ जे धरहीं। सिव पूजक सँजम ते रहहीं।।
सास्त्ररहित निहचय अग्यानी। तेहि कर पाप कथा नहिं जानी।।
मदिरा पीवइँ कनक चुरावैं। गुरु पत्नी संग काम लजावैं।।
बाँभन मातु पिता कइ हन्ता। गरभ जीव कौ सरग नयन्ता।।

रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः।।६०।।

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्मरणादपि पूजनात्।
रुद्राक्षधारणाल्लोके मुच्यन्ते पातकैर्जनाः।।६१।।

ब्राह्मणो वान्त्यजो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः।।६२।।

गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं भुवि लभ्यते।
तत्फलं लभते मर्त्यो नित्यं रुद्राक्षधारणात्।।६३।।

मृत्युकाले च रुद्राक्षं निष्पीड्य सह वारिणा।
यः पिबेच्चिन्तयन् रुद्रं रुद्रलोकं स गच्छति।।६४।।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा धृतरुद्राक्षमालिकाः।
ये भवन्ति महात्मानस्ते रुद्रा नात्र संशयः।।६५।।

नित्यानि काम्यानि निमित्तजानि कर्माणि सर्वाणि सदापि कुर्वन्।
योऽभस्मरुद्राक्षधरो यदि स्याद् द्विजो न तस्यास्ति फलोपपत्तिः।।६६।।

सर्वेषु वर्णाश्रमसंगतेषु नित्यं सदाचारपरायणेषु।
श्रुतिस्मृतिभ्यामिह चोद्यमानो विभूतिरुद्राक्षधरः समानः।।६७।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगिशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले विभूतिरुद्राक्षधारणस्थलप्रसङ्गो नाम सप्तमः परिच्छेदः।।७।।

ए सबु अरु कृतघ्न बिभिचारी। जदि रुद्राच्छ देह परिधारी।।
तेहि प्रभाउ सबु बिहरहिं चंगा। पातक सकल होहिं छन भंगा।।

दोहा - **दरस परस सुमिरन किए पूजन धारन जोग।**
रुद्राच्छहि यहु लोक मँह छूटहिं पातकु लोग।।198।।

चौपाई - जन बाभन अन्तज वा होई। मूरख पण्डित पुनि सो कोई।।
सबु पातक सों मुकुती पावै। जदि सरीर रुद्राच्छ धरावै।।
कोटि धेनु कोउ दान जो करई। जित फल इहाँ धन्य सो लहई।।
उत फल मनुज नित्य सो पावै। जदि सरीर रुद्राच्छ धरावै।।
जो जनमइ मानुस तन पाई। टरइ मरन नहिं कोटि उपाई।।
मरन निकट आवा जेहि प्रानी। घिसि रुद्राच्छ पियै संग पानी।।

दोहा - **घिसत पियत रुद्राच्छ जौं सुमिरन करत महेस।**
रुद्र लोक सो पावई नहि तँह संसय लेस।।199।।
पहिरि माल रुद्राच्छ निज भसम रमाये देह।
महापुरुष ते रुद्र पुनि नाहिं इहाँ सन्देह।।200।।

छन्द - जे करम निमित्ता धरि सिव चित्ता करइ सहित अनुरागा।
अथवा नितकरमा मानि सुधरमा करइ जीव हित लागा।।
उर धरि अभिलासा पाइ सुपासा करम बिबिध बिध करई।
एहि सबु कइ साथा नइ सिव माथा भगति हिए मँह धरई।।
रुद्राच्छ बिराजे तन पँहि साजे भसम सरीर लगावा।
सो नर बड़ भागी परम बिरागी करम भुगुति नहिं पावा।।

दोहा - **जे बिभूति रुद्राच्छ धर तिन्ह स्रुति स्मृतिहु बखान।**
सदाचार बरनास्त्रमहि सो नर भयउ समान।।201।।

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह सातवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
अष्टमः परिच्छेदः

धृतश्रीभूतिरुद्राक्षः प्रयतो लिङ्गधारकः।
जपेत्पञ्चाक्षरीविद्यां शिवतत्त्वप्रबोधिनीम्।।१।।

शिवतत्त्वात् परं नास्ति यथा तत्त्वान्तरं महत्।
तथा पञ्चाक्षरीमन्त्रान्नास्ति मन्त्रान्तरं महत्।।२।।

ज्ञाते पञ्चाक्षरीमन्त्रे किं वा मन्त्रान्तरैः फलम्।
ज्ञाते शिवे जगन्मूले किं फलं देवतान्तरैः।।३।।

सप्तकोटिषु मन्त्रेषु मन्त्रः पञ्चाक्षरो महान्।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवेषु यथा शम्भुर्महत्तरः।।४।।

अशेषजगतां हेतुः परमात्मा महेश्वरः।
तस्य वाचकमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रैककारणम्।।५।।

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रात् सिद्धः परः शिवः।।६।।

नमःशब्दं वदेत्पूर्वं शिवायेति ततः परम्।
मन्त्रः पञ्चाक्षरो ह्येष सर्वश्रुतिशिरोगतः।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
आठवाँ परिच्छेद

चौपाई - जो मन करम बचन सुचि होई। पहिरि रुद्राच्छ भभूत संजोई।।
इष्टलिंग धारन कर भगता। जपउ मंत्र पंचाच्छर सतता।।
विद्या 'नमः शिवाय' कहावै। आदि प्रनव जप हेतु लगावै।।
यहु सिवतत्व प्रबोध करावन। सकल कलुस छन माहिं नसावन।।
नाहिन तत्व दूसरो कोऊ। सिवतत्वहि ते बढ़ि कहुँ होऊ।।
अइसन मन्त्रहु दूसर नाहीं। पंचाच्छर बढ़ि कतहुँ कहाहीं।।

दोहा - जौं जानइ पंचाच्छरी पुनि का दूसर मंत्र।
जगतमूल सिव जानि पुनि बिरिथ अन्य सुर तन्त्र।।202।।

चौपाई - सात करोड़ मंत्र जग माहीं। पंचाच्छर सम दूसर नाहीं।।
सबु ते बड़ मंत्रन मँह एहा। जपहिं सुरासुर सहित सनेहा।।
यहु तौ बस ऐसेइ होइ आवा। जइसे सिव महदेव कहावा।।
ब्रम्हा बिस्नु आदि सबु देवा। संभु महत्तम होइ महदेवा।।
सकल जगत कै कारन एका। परमातमा न होइ अनेका।।
तेहि बाचकु यहु मंत्र सुहावा। सकल मंत्र कइ हेतु कहावा।।

दोहा - तेहि कर बाचक मंत्र यहु बाच्य रुद्र परसिद्ध।
बाचक बाच्यहु बंध ते सिवहु मंत्र ते सिद्ध।।203।।
'नमः' सबद पहिले कहे पाछे कहे 'शिवाय'।
मंत्र इहै पंचाच्छर बेदन माथ बिठाय।।204।।
पहिलेहि ते परिसुद्ध प्रभु तीनहु मलहि बिजोग।
एहि कारन यहु नामु सिव चिदानंद कह लोग।।205।।
ते मल तीनिउँ आणव मायिअ कारम नाम।
इन्ह ते रहित बिसुद्ध सिव सकल लोक बिसराम।।206।।

आदितः परिशुद्धत्वान्मलत्रयवियोगतः।
शिव इत्युच्यते शम्भुश्चिदानन्दघनः प्रभुः।।८।।

आस्पदत्वादशेषाणां मङ्गलानां विशेषतः।
शिवशब्दाभिधेयो हि देवदेवस्त्रियम्बकः।।९।।

शिव इत्यक्षरद्वन्द्वं परब्रह्मप्रकाशकम्।
मुख्यवृत्त्या तदन्येषां शब्दानां गुणवृत्तयः।।१०।।

तस्मान्मुख्यतरं नाम शिव इत्यक्षरद्वयम्।
सच्चिदानन्दरूपस्य शम्भोरमिततेजसः।।११।।

एतन्नामावलम्बेन मन्त्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः।
यस्मादतः सदा जप्यो मोक्षकाङ्क्षिभिरादरात्।।१२।।

यथाऽनादिर्महादेवः सिद्धः संसारमोचकः।
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः संसारक्षयकारकः।।१३।।

पञ्चभूतानि सर्वाणि पञ्चतन्मात्रकाणि च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।।१४।।

पञ्चब्रह्माणि पञ्चापि कृत्यानि सह कारणैः।
बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः पञ्चाक्षरमहामनोः।।१५।।

पञ्चधा पञ्चधा यानि प्रसिद्धानि विशेषतः।
तानि सर्वाणि वस्तूनि पञ्चाक्षरमयानि हि।।१६।।

चौपाई - जे जग मंगल होहिं असेषा। तिन्ह कर आस्पद बिदित बिसेषा।।
देवहु देव तिअच्छ तेहि कारन। आपु नाउँ सिव कीन्हें धारन।।
सिव दुइ अच्छर जोरे बनई। अभिधा वृत्ति अरथ एहि करई।।
पर ब्रम्ह परकासक अरथा। अभिधा ते सिव सबद समरथा।।
सिव परिआय सबद जग जेते। लच्छन मूल अरथ तेहि ते ते।।
एहि कारन परमुख 'सिव' नाऊँ। दुइ अच्छर मिलि मंगल ठाऊँ।।

दोहा - अमित तेजमय सम्भु कइ 'सिव' परमुख अभिरूप।
सच्चित् घन आनन्दमय सिव अभिधेय अनूप॥207॥

चौपाई - इहै नाउँ सुंदर अवलम्बा। मंत्र कीन्ह पँचबरन कदम्बा।।
पंचाच्छर सो मंत्र कहाई। सादर जप मुमुच्छु समुदाई।।
जपहिं निरन्तर साधक जोगी। कल्यानहु लगि सबु भवरोगी।।
महादेव जस सिद्ध अनादी। करहिं बिसम भवभय बरबादी।।
तैसइ यहु पंचाच्छर मंत्रा। संसृति तरु छेदन खर जंत्रा।।
सुभ पंचाच्छर मंत्र अपारा। महिमा अमित जगत बिस्तारा।।

दोहा - महामंत्र पंचाच्छर बरन पाँच निरुआरि।
जो रहस्य आवइ समुझि देखहु भगत बिचारि॥208॥

चौपाई - महाभूत जे पाँच कहावा। पाँचहि तन्मात्रा सबु गावा।।
देह पाँच ग्यानेन्द्रिय बरनी। करहिं पाँच करमेन्द्रिय करनी।।
पाँच करम कारन के साथा। ब्रम्ह पाँच जग करहिं सनाथा।।
ए सबु पाँच बरन ते जाये। महामंत्र पंचाच्छर लाये।।
पाँच पाँच जे ऊपर कहे। जग मँह अति प्रसिद्ध सबु रहे।।
ते नहिं बस्तु अनत सों आईं। उपजीं पंचाच्छर समुदाई।।

दोहा - पंचाच्छरमय मंत्र यहु प्रनवपूर्व जो होय।
मन्त्र षडच्छर जानिए सैव बेद कह सोय॥209॥

ओंकारपूर्वो मन्त्रोऽयं पञ्चाक्षरमयः परः।
शैवागमेषु वेदेषु षडक्षर इति स्मृतः।।१७।।

मन्त्रस्यास्यादिभूतेन प्रणवेन महामनोः।
प्रबोध्यते महादेवः केवलश्चित्सुखात्मकः।।१८।।

प्रणवेनैकवर्णेन परब्रह्म प्रकाश्यते।
अद्वितीयं परानन्दं शिवाख्यं निष्प्रपञ्चकम्।।१९।।

परमात्ममनुर्ज्ञेयः सोऽहंरूपः सनातनः।
जायते हंसयोर्लोपादोमित्येकाक्षरो मनुः।।२०।।

प्रणवेनैव मन्त्रेण बोध्यते निष्कलः शिवः।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुस्तथा।।२२।।

निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरमये स्थितः।।२२।।

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः।।२३।।

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम्।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः।।२४।।

प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखेदङ्मुखोऽपि वा।
चिन्तयन् हृदयाम्भोजे देवदेवं त्रियम्बकम्।।२५।।

चौपाई - महामंत्र अरु एहि के न्यासू। प्रनव लगाइअ पूरब तासू।।
केवल महादेव सो बोधइ। चिदानन्दमय रूप प्रबोधइ।।
एकहि बरन प्रनव जग जाना। परानन्द नहिं कोउ समाना।।
रहित प्रपंच सदा सिव सोऊ। परब्रम्ह आलोकित होऊ।।
सोहं कह परमातम रूपा। मंत्र सनातन परम अनूपा।।
सोहं रहित सकार हकारा। बचइ मंत्र केवल ओंकारा।।

दोहा - बीज सूर्ज अरु चंद्र के 'ह'-'स' बेदक-बेद्य।
ओंकार दोऊ हटे ब्रम्ह परम निरभेद्य॥210॥

चौपाई - प्रनव मंत्र उच्चारन कीन्हे। निष्कल सिव बुधजन सबु चीन्हे।।
मंत्र पंच अच्छर जे एहा। बोधइ पंच ब्रम्ह सिव देहा।।
बीज प्रनव जो लता उगाई। बिद्या पंचाच्छरी सुहाई।।
मंत्र षडच्छर चहुँ दिसि छाजा। उभय रूप सिव तहाँ बिराजा।।
निष्कल सिव संवित् आकारा। बिस्वमूर्ति सिव सकल प्रकारा।।
महामंत्र कँह नाम अनेका। पावन बिमल एक ते एका।।

दोहा - सैवसूत्र पंचाच्छर सिव विद्या अरु मूल।
साधक बाधक सुभ असुभ करत सूल कौ फूल॥211॥

चौपाई - बिद्या पंचाच्छरी सुहाई। प्रनव सहित षट बरन बनाई।।
साधक भगत धरइ जो ध्याना। सिवपूजा जेहि प्रान समाना।।
बिधि बिधान सिवपूजा करई। सैव तंत्र जो नित अनुसरई।।
मंत्र षडच्छर जपइ सुजाना। जौ चाहइ आपनु कल्याना।।
भगत सो मंत्र कवन बिधि जपई। थिर आसन पूरब मुँह करई।।
अथवा उत्तर दिसि मुँह लाई। सकल प्रपंच जगत बिसराई।।

दोहा - सुद्ध आचमन करि बहुरि कृत त्रय प्रानायाम।
ध्यावै हिरदै कमल मँह तिरलोचन अभिराम॥212॥

सर्वालङ्कारसंयुक्तं साम्बं चन्द्रार्धशेखरम्।
जपेदेतां महाविद्यां शिवरूपामनन्यधीः।।२६।।

जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः।
श्रूयते यस्तु पार्श्वस्थैर्यथावर्णसमन्वयम्।।२७।।

वाचिकः च तु विज्ञेयः सर्वापाशप्रभञ्जनः।
ईषत्स्पृष्ट्वाधरपुटं यो मन्दमभिधीयते।।२८।।

पार्श्वस्थैरश्रुतः सोऽयमुपांशुः परिकीर्तितः।
अस्पृष्ट्वाधरमस्पन्दि जिह्वाग्रं योऽन्तरात्मना।।
भाव्यते वर्णरूपेण स मानस इति स्मृतः।।२९।।

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या व्रतदानतपांसि च।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।३०।।

माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्तितम्।
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः।।३१।।

वाचिकात् तदुपांशोश्च जपादस्य महामनोः।
मानसो हि जपः श्रेष्ठो घोरसंसारनाशकः।।३२।।

एतेष्वेतेन विधिना यथाभावं यथाक्रमम्।
जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये।।३३।।

चौपाई - चन्द्रचूड़ सिव सहित भवानी। अँग अँग भूषन सोभा खानी।।
करि एकाग्रचित्त आराधक। जपइ महाबिद्या यहु साधक।।
बिद्या महा षडच्छरि जानहु। सिव सरूप परमारथ मानहु।।
जपु कइ तीनि प्रकार कहावा। बच उपांसु मानस होइ आवा।।
जो समीप बइठा कोउ होऊ। जथा बरन क्रम सुनिअत सोऊ।।
बाचिक जपु कै बिधि यहु होई। पापु सकल सबु भाँति बिगोई।।
हिलइ होठ नहिं बचन प्रकासा। सुनइ न कोउ बैठेउ जदि पासा।।
मंत्र जाप अस मंदइ मंदा। जप उपांसु सो जान अमंदा।।

दोहा - जीभ न डोलै अधरपुट तनिकहु नाहिं छुवाइ।
बरन भावना भीतरहि मानस जाप कहाइ॥213॥

चौपाई - करम जग्य जेते जग माहीं। ब्रत तप दान असंख्य कहाहीं।।
सबु मिलि नहिं जपु जग्य समाना। सोरहउ अंस न तेहिकर आना।।
सर्बोत्तम जपुजग्य कहावा। सो परमेस्वर प्रगटि जनावा।।
जो कछु कहेउँ महातम अबुहीं। सो सबु बाचिक जपु कइ अहहीं।।
तेहि ते अधिक सौ गुना माना। जपु उपांसु सबु बुध जन माना।।
तेहू ते हजार गुन होई। मानस जपु अस कह सबु कोई।।

दोहा - महामंत्र कँह बाचिक अरु उपांसु ते बाढ़।
मानस जपु सबु जानिए नासइ भवभय गाढ़॥214॥
भगति भावजुत होइकै एहि तीनउँ मँह कोय।
गहि पंचाच्छर मंत्र जपु मुकुति फंद भव होय॥215॥
भव भेषज पंचाच्छरी बिद्योपासन सोइ।
बिधि बिधान सेवन करै कबहुँ न भवरुज होइ॥216॥

चौपाई - मानस परम बिसुद्ध बनाई। सिव संकल्प हृदय मँह लाई।।
संजम नियम सुदृढ़ अपनाई। निहचल भगति चित्त मँह लाई।।
इहै मूल मंत्रहि अपनावा। पूजइ नित सिवलिंग सुहावा।।

अनेन मूलमन्त्रेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
नित्यं नियमसम्पन्नः प्रयतात्मा शिवात्मकः।।३४।।

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्।
सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात् ।।३५।।

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः।।३६।।

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः।।३७।।

अशुद्धो वा विशुद्धो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेत् पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः।।३८।।

सकृदुच्चारमात्रेण पञ्चाक्षरमहामनोः।
सर्वेषामपि जन्तूनां सर्वपापक्षयो भवेत्।।३९।।

अन्येऽपि बहवो मन्त्रा विद्यन्ते सकलागमे।
भूयो भूयः समभ्यासात् पुरुषार्थप्रदायिनः।।४०।।

एष मन्त्रो महाशक्तिरीश्वरप्रतिपादकः।
सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायकः।।४१।।

पञ्चाक्षरीं समुच्चार्य पुष्पं लिङ्गे विनिक्षिपेत्।
यस्तस्य वाजपेयानां सहस्रफलमिष्यते।।४२।।

पंचाच्छर विद्या भव तरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी।।
एकहु बार करइ सिव पूजा। जपि पंचाच्छर मंत्र न दूजा।।
सिव साजुज्य अवसि सो पावा। आन उपाय न बनइ बनावा।।

दोहा - **जल समीर सेवहिं करहिं ब्रत कठोर कृसगात।**
नहिं पावहिं सिवलोक ते मरि मरि ब्रत कै घात॥217॥

चौपाई - एहि ते कहउँ जे बुधजन माना। सास्त्र निगम आगम परमाना।।
जग मँह तप अरु जग्य अनेका। ब्रत अरु नियम एक ते एका।।
ते नहिं भाग करोड़ समाना। जित पंचाच्छर पूज विधाना।।
परम असुद्ध सुद्ध वा होऊ। पतित नरकगामी वा कोऊ।।
पंचाच्छर सों पूजा करई। एकहु बार भगति हिय धरई।।
निहिचय मुकुति न संसय एही। पुनि नहिं गरभ आव सो देही।।

दोहा - **महामंत्र पंचाच्छर चढइ जीह इक बार।**
पाप ताप सबु नासई होइ न पुनि संसार॥218॥

चौपाई - मंत्र असंख्य अनेक प्रकारा। आगम निगम सकल संसारा।।
बार बार सेवा अभ्यासा। फर पुरुसारथ देइँ असारा।।
एहि पंचाच्छर कै गति न्यारी। सकल मंत्र सुधि देइ बिसारी।।
महा सक्ति मय यहु पंचाच्छर। एहि मँह बसइ सतत अबिनस्वर।।
बाचक मंत्र बाच्य अबिनासी। परमेस्वर सिव परम प्रकासी।।
एकहि बार मंत्र चढ़ि जीहा। बनइ सकल सिद्धिन्ह कै ठीहा।।

दोहा - **पंचाच्छरी उचारि कै धरै लिंग पै फूल।**
जो फल मिलइ हजार नहिं बाजपेय सक तूल॥219॥

चौपाई - अगिनहोत्र अरु तीनिहुँ बेदा। भूरि दच्छिना जग्य अखेदा।।
ए सबु कर पंचाच्छर बिनती। कोटि अंस ठाढ़इँ नहिं गिनती।।
अति प्राचीन काल कै बाता। सैव ग्यान जेहि कर मनु राता।।
सो जोगीन्द्र नाउँ सानन्दा। करइ सदा सिव भगति अमन्दा।।

अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
पञ्चाक्षरजपस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः।।४३।।

पुरा सानन्दयोगीन्द्रः शिवज्ञानपरायणः।
पञ्चाक्षरं समुच्चार्य नारकानुदतारयत्।।४४।।

सिद्ध्या पञ्चाक्षरस्यास्य शतानन्दः पुरा मुनिः।
नरकं स्वर्गमकरोत् सङ्गिरस्यापि पापिनः।।४५।।

उपमन्युः पुरा योगी मन्त्रेणानेन सिद्धिमान्।
लब्धवान् परमेशनाच्छैवशास्त्रप्रवक्तृताम्।।४६।।

वसिष्ठवामदेवाद्या मुनयो मुक्तकिल्बिषाः।
मन्त्रेणानेन संसिद्धा महातेजस्विनोऽभवन्।।४७।।

ब्रह्मादीनां च देवानां जगत्सृष्ट्यादिकर्मणि।
मन्त्रस्यास्यैव माहत्म्यात् सामर्थ्यमुपाजायते।।४८।।

किमिह बहुभिरुक्तैर्मन्त्रमेवं महात्मा
प्रणवसहितमादौ यस्तु पञ्चाक्षराख्यम्।
जपति परमभक्त्या पूजयन् देवदेवं
स गतदुरितबन्धो मोक्षलक्ष्मीं प्रयाति।।४९।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगिशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पञ्चाक्षरीजपस्थलप्रसङ्गो नाम अष्टमः परिच्छेदः ।।८।।

पंचाच्छर बिद्या बल भारी। कोटि अठाइस नरक उधारी।।
सतानन्द मुनि परम प्रसिद्धा। पंचाच्छर कीन्हेउ सो सिद्धा।।

दोहा - **संगिर अति पापी रहेउ करत नरक मँह बास।**
पंचाच्छरसिधि बल कियो मुनि तेहि सरग सुपास॥220॥

सोरठा - **पाइ मंत्र एहि सिद्धि जोगी उपमन्यू लहेउ।**
परमेस्वर ते रिद्धि सैव सास्त्र बकता भयेउ॥221॥

दोहा - **बसिष्ठ बामदेवादि मुनि भये सकल निष्पाप।**
तेजपुंजमय रूप पुनि एही मंत्र प्रताप॥222॥

छन्द - एहि जगत बिकासइ पालइ नासइ ब्रम्हा बिस्नु महेसा।
सो मंत्र अधारा सक्ति अपारा समरथ उपज रमेसा।।
का बहुत बखानउँ एतना जानउँ जो नर कर बिस्वासा।
जापै पंचाच्छर प्रनव पुरुब कर तेहि कै पाप बिनासा।।

दोहा - **एहि बिधि पूजै सम्भु जो भगति समेत सुजान।**
पाप कटै संसृति छुटै पावइ पद निरबान॥223॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह आठवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
नवमः परिच्छेदः

भूतिरुद्राक्षसंयुक्तो लिङ्गधारी सदाशिवः।
पञ्चाक्षरजपोद्योगी शिवभक्त इति स्मृतः।।१।।

श्रवणं कीर्तनं शम्भोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।२।।

एवं नवविधा भक्तिः प्रोक्ता देवेन शम्भुना।
दुर्लभा पापिनां लोके सुलभा पुण्यकर्मणाम्।।३।।

अधमे चोत्तमे वापि यत्र कुत्रचिदूर्जिता।
वर्तते शाङ्करी भक्तिः स भक्त इति गीयते।।४।।

भक्तिः स्थिरीकृता यस्मिन् म्लेच्छे वा द्विजसत्तमे।
शम्भोः प्रियः स विप्रश्च न प्रियो भक्तिवर्जितः।।५।।

सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
बाह्या स्थूलान्तरा सूक्ष्मा वीरमाहेश्वरादृता।।६।।

सिंहासने शुद्धदेशे सुरम्ये रत्नचित्रिते।
शिवलिङ्गस्य पूजा या सा बाह्या भक्तिरुच्यते।।७।।

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
नौवाँ परिच्छेद

चौपाई - जेहि के तन पै रहइ भभूती। पहिरइ जो रुद्राच्छ सप्रीती।।
इष्टलिंग जे धारन करहीं। सिव जोगी पंचाच्छर जपहीं।।
जो एहि बिधि उद्दम नित लावा। साधु पुरुस सिवभगत कहावा।।
सिव कइ चरित सुनइ चित लाई। कीर्तन आपहु करइ भुलाई।।
सुमिरन सतत संभु कै करई। चरन कमल सेवा नित रहई।।
अरचन बंदन मँह रह लीना। दास भाव गहि रहइ अखीना।।
सखा भाव ते सिवहि रिझावा। आपु समरपन करि सुख पावा।।

दोहा - महादेव नवधा भगति कहेउ सरल बिधि हेरि।
पुन्य करम जन सुलभ सोइ पापिन्ह रही तरेरि॥224॥

चौपाई - अधम होउ अथवा नर उत्तम। सावधान होइ सुनु मुनिसत्तम।।
संकर भगति जहाँ कहुँ भारी। मानहिं भगत ताहि तिपुरारी।।
भगति जहाँ कहुँ थिर होइ रहई। जदपि म्लेच्छ पावन द्विज अहई।।
ते द्विज म्लेच्छ सिवहि अति भाये। भगति रहित नहि तनिक सुहाये।।
भगति भेद दुइ इहाँ कहाहीं। बाहेर भीतर दुइ बिध आहीं।।
थूला भगति बाहिरी होई। अन्तर सूछम जान न कोई।।

दोहा - बीरसैव माहेस्वर अन्तर भगति सुजान।
तेहि कारन ते सूछमहि देइ बहुत सम्मान॥225॥

चौपाई - थल पावन रमनीय बनावा। रतन जड़ित सिंहासन लावा।।
तहाँ थापि सिवलिंग मनोहर। बिधि बिधान ते पूजा सुन्दर।।

लिङ्गे प्राणं समाधाय प्राणे लिङ्गं तु शाम्भवम्।
स्वस्थं मनस्तथा कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेद् यदि।।८।।

साऽऽभ्यन्तरा भक्तिरिति प्रोच्यते शिवयोगिभिः।
सा यस्मिन् वर्तते तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवत्।।९।।

बहुनात्र किमुक्तेन गुह्यात् गुह्यतरा परा।
शिवभक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते।।१०।।

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः।।११।।

प्रसादपूर्विका येयं भक्तिर्मुक्तिविधायिनी।
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना।।१२।।

अनेकजन्मशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।।१३।।

प्रसन्ने सति मुक्तोऽभून्मुक्तः शिवसमो भवेत्।
अल्पभक्त्यापि यो मर्त्यस्तस्य जन्मत्रयात्परम्।।१४।।

न योनियन्त्रपीडा वै भवेन्नैवात्र संशयः।
साङ्गाऽन्यूना च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते।।१५।।

सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः।
शिवरूपादिचिन्ता या सा सेवा मानसी स्मृता।।१६।।

भगत करइ संजत मन बानी। भगति बाहिरी ताहि बखानी।।
लिंगहि प्रान प्रान मँह लिंगा। जोरि ध्यान जो करइ अभंगा।।
थिर करि मन अबिकारि बनावा। सिवहि छाँड़ि चित कछु नहिं लावा।।
थूल प्रथमु यहु सूछम जाना। भगति भीतरी बुध जन माना।।

दोहा - **बीज न अँखुवा आवई जदि सो भूना होय।**
पुनरजनम नहिं पावई सूछम भगति बिलोय॥226॥

चौपाई - बहुत कहउँ का बिसय बनाई। गुह्य गुह्यतर भगति पराई।।
जे सिव भगति एहि अपनावा। नहि संदेह मोच्छ सो पावा।।
बिनु सिव कृपा भगति नहिं होई। बिना भगति पुनि कृपा न सोई।।
यहु अनादि संबंधु सुहावा। कारज करन परसपर भावा।।
बीज ते अंखुवा फुटै सुहावा। पुनि अँखुवा बीजै उपजावा।।
यहु सिद्धान्त समुझु मन माँहीं। भगति प्रसाद परसपर आहीं।।

दोहा - **पहिले किरिपा भगति पुनि मोच्छ प्रदाता दोउ।**
एक जनम मँह नहिं मिलै भगति प्रसादी सोउ॥227॥

चौपाई - जनम जनम जन जतन कराहीं। नीक नीक सुभ करम सराहीं।।
पाइ पुन्य नर निरमल होवा। असुभ करम अघ दूरि बिगोवा।।
तबु बिबेक जागइ मन माहीं। आगम निगम बनइ परिछाहीं।।
मानस जबुहिं ग्यान परकासा। बिगलित महामोह तम नासा।।
बहुरि बिराग चलइ निअराई। भव प्रपंच छूटइ निपुनाई।।
तबु सिव कृपा बरस वा ऊपर। देहिं भगति आपन जगदीस्वर।।

दोहा - **सिव प्रसाद जो नर लहै मोच्छ पाव सो बीर।**
सिव साजुज्य लहै परम सिव समान होइ धीर॥228॥

चौपाई - थोरिउ भगति करइ नर कोई। तेहु पै कृपा संभु कै होई।।
अवसि मुकुति सोऊ नर पावै। बीते जनम तीनि नहिं आवै।।

जपादि वाचिकी सेवा कर्मपूजा च कायिकी।
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव बाह्याभ्यन्तरमेव च।।१७।।

मनोवाक्कायभेदैश्च त्रिधा तद्भजनं विदुः।
मनो महेशध्यानाढ्यं नान्यध्यानरतं मनः।।१८।।

शिवनामरता वाणी वाङ्मता चैव नेतरा ।
लिङ्गैः शिवस्य चोद्दिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः।।१९।।

शिवोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः।
अन्यात्मविदितं बाह्यं शम्भोरभ्यर्चनादिकम्।।२०।।

तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यन्तरमुदाहृतम्।
मनो महेशप्रवणं बाह्याभ्यन्तरमुच्यते।।२१।।

पञ्चधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः।
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वकम्।।२२।।

शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्।
शिवार्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते।।२३।।

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम्।।२४।।

ध्यानं शिवस्य रूपादिचिन्ता नात्मादिचिन्तनम्।
शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम्।।२५।।

सो सिव भगत कबहुँ नहिं पाई। गरभ बास पीड़ा अधिकाई।।
पूरन नवधा भगति कहाई। अलप ऊन सेवा भगताई।।
मन बानी सरीर कँह लागी। भगति तीनि बिधि कहहिं बिरागी।।
सिवसरूप चिंतन सबु काला। मानस भगति कहाइ बिसाला।।

दोहा - **बाचिक भगति जपादि सिव मूल मंत्र निहकाम।**
सिवलिंग पूजा अरचना कायिक भगति सुधाम॥229॥
बाहेर भीतर उभयबिधि तीनि भजन कँह भेद।
मन सरीर बानी गहे नहिं भगतन कहुँ खेद॥230॥

चौपाई - सिव कै ध्यान मगन मन रहई। इतर देव मन रंचि न धरई।।
सिव कै नाउँ जपै नित बानी। अन्य नाउँ नहिं लेइ सयानी।।
जे लच्छन सिव भगत कहाये। सैव सास्त्र जेहि बिधि जित गाये।।
रचि भभूति रुद्राच्छ सरीरा। बिरचि त्रिपुंड देह मतिधीरा।।
सो सबु भूसित करि निज देहा। सिव पूजन रत सहित सनेहा।।
सिव सेवा तजि करम न दूजा। एहि सरीर केवल सिव पूजा।।

दोहा - **जो सिव कै अभ्यर्चना देखहिं दूसर लोग।**
सो पूजा कह बाहरी मेटत भवभय रोग॥231॥
जो पूजा है मानसी स्वयं जान सिवभक्त।
सो पूजा है भीतरी काटै पाप समस्त॥232॥
पूजा सो बहि भीतरी जो मन सिव आसक्त।
सिव तजि काहु न देखिअत भगत रहत अनुरक्त॥233॥

चौपाई - मुनि कह भेद भगति पुनि पाँचा। करइ जो भगत कहावै साँचा।।
तप अरु करम तथा जप ध्याना। पाँचव भगति भेद पुनि ग्याना।।
सिवपूजा सो करम सुजाना। बाह्य जग्य कहुँ करम न माना।।

इति पञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञः प्रकीर्तितः।
अनेन पञ्चयज्ञेन यः पूजयति शङ्करम्।
भक्त्या परमया युक्तः स वै भक्त इतीरितः।।२६।।

पूजनाच्छिवभक्तस्य पुण्या गतिरवाप्यते।
अवमानान्महाघोरो नरको नात्र संशयः।।२७।।

शिवभक्तो महातेजाः शिवभक्तिपराङ्मुखान्।
न स्पृशेन्नैव वीक्षेत न तैः सह वसेत् क्वचित्।।२८।।

यदा दीक्षाप्रवेशः स्याल्लिङ्गधारणपूर्वकः।
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ पूजयेत् स्वागमस्थितान्।।२९।।

स्वमार्गाचारनिरताः सजातीया द्विजास्तु ये।
तेषां गृहेषु भुञ्जीत नेतरेषां कदाचन।।३०।।

स्वमार्गाचारविमुखैर्भविभिः प्राकृतात्मभिः।
प्रेषितं सकलं द्रव्यमात्मलीनमपि त्यजेत्।।३१।।

नार्चयेदन्यदेवांस्तु न स्मरेन्न च कीर्तयेत्।
न तन्निवेद्यमश्नीयाच्छिवभक्तो दृढव्रतः।।३२।।

यद्गृहेष्वन्यदेवोऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत्।
नान्यदेवार्चकान् मर्त्यान् पूजाकाले निरीक्षयेत्।।३३।।

पंचाच्छर जप बिनहिं प्रयासा। अथवा प्रनव केर अभ्यासा।।
रुद्राध्याय पाठ पुनि माना। नहिं जप बेदाभ्यास सुजाना।।

दोहा - **नहिं चिन्तन आत्मादि कौ सिव सरूप तजि आन।**
एकमात्र चिन्तन सिवहि सैव तंत्र मँह ध्यान॥234॥
अन्य सास्त्र कौ ग्यान पुनि ग्यान न इहाँ कहाइ।
ग्यान सिवागम अरथ कँह सच्चा ग्यान बताइ॥235॥
भेद भगति कँह पाँच यहु आगम करइ बखान।
इन्ह पाँचन्ह कौ नाउँ इक सुभ सिवजग्य महान॥236॥

चौपाई - एहि पँच जग्य करइ जे पूजा। एकमात्र सिव देव न दूजा।।
परम भगति जुत सेवा लावइ। सो नर साँचेहु भगत कहावइ।।
जो सिवभगतहि पूजा करई। सो अति पुन्य परम गति लहई।।
तेहि अपमान किये अति घोरा। मिलइ नरक नहिं संसय थोरा।।
तेजपुंज अति दिब्य अनूपा। सिव के भगत महेस सरूपा।।
स्वारथ रत मदांध अभिमानी। सिव मुँह फेरि रहहिं जे प्रानी।।

दोहा - **भगत न परसइ ताहि नर दीठि न डारइ भूलि।**
तेहि संग बासहु नहिं उचित आपु बैठि जे फूलि॥237॥

चौपाई - जौ सिव भगत करइ अस जानी। छीजहि तेज भगति कै हानी।।
इष्टलिंग जबु देह धराई। दीच्छा मँह प्रबेस होइ जाई।।
आदर बिनय तबहिं से करई। तेहि कर जे आगमरत अहई।।
जे आचरहिं निजागम भारी। जे द्विज जातिमान अधिकारी।।
तेही कै घर भोजन करई। कबहुँ न तृन मुँह पर घर धरई।।
जे गँवार जे खल संसारी। चलहिं न सिवमारग बिभिचारी।।
तिन्ह कर अन्न पान धन धाना। सरबस आपनु तजहु सयाना।।
अन्य देव नाहिं पूजिअ गाइअ। सुमिरन करिअ न कछुक मनाइअ।।

सदा शिवैकनिष्ठानां वीरशैवाध्ववर्तिनाम्।
नहि स्थावरलिङ्गानां निर्माल्याद्युपयुज्यते।।३४।।

यत्र स्थावरलिङ्गानामपायः परिवर्तते।
अथवा शिवभक्तानां शिवलाञ्छनधारिणाम् ।।३५।।

तत्र प्राणान् विहायापि परिहारं समाचरेत्।।
शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।।३६।।

शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयेदथवा शपेत्।
स्थानं वा तत्परित्यज्य गच्छेद्यद्यक्षमो भवेत्।।३७।।

यत्र चाचारनिन्दास्ति कदाचित्तत्र न व्रजेत्।
यद्गृहे शिवनिन्दास्ति तद्गृहं तु परित्यजेत्।।३८।।

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।३९।।

शिवपूजापरो भूत्वा पूर्वकर्म विसर्जयेत्।
अथवा पूर्वकर्म स्यात् सा पूजा निष्फलं भवेत्।।४०।।

उत्तमां गतिमाश्रित्य नीचां वृत्तिं समाश्रितः।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः।।४१।।

पञ्चाक्षरोपदेशी च नरस्तुतिकरो यदि।
सोऽलिङ्गी स दुराचारी कुकविः स तु विश्रुतः।।४२।।

दोहा - **नहिं प्रसाद पाइअ कबहुँ इतर चढ़ावा होय।**
जो सिवभगत ब्रती दृढ़ शासन सैव सँजोय॥238॥
अन्य देव जेहि घर बसँइँ तजिअ सैव सो गेह।
पूजाकाल न देखिअत सैवेतर कँह देह॥239॥

चौपाई - एकनिष्ठ सिव के जे भगता। बीरसैव मारग मँह रमता।।
थावरलिंग ते माल्य उतारी। उचित न तिन्ह पहिरावन झारी।।
जहँ कहुँ थावरलिंग समेता। दीखै संकट संभु निकेता।।
अथवा सिव भगतन्ह करि होई। सैव चिन्ह धारन करि कोई।।
प्रानहु तजे जो संकट टरई। अस उपाय तँह चाहिअ करई।।
जो सिव लागि तजै निज प्राना। नर उत्तम नहिं ताहि समाना।।

दोहा - **सिव सेवा मँह जो करइ निज जीवनु कौ त्याग।**
सिवसाजुज्य सो पावई अस नर कौ धन भाग॥240॥

चौपाई - सिव निंदा जो करइ अभागा। ताकर हनन करइ बिनु नागा।।
अथवा तेहि तरजइ फटकारइ। मुँह पर तासु चपेटा मारइ।।
जौं आपनु कछु चलि न बसाई। कान मूँदि बरु चलिअ पराई।।
सैवाचारनिन्द जेहि ओरी। कबहुँ न जाइअ तँह मतिभोरी।।
जेहि घर सिवनिंदा परचारे। तजिअ सो मरघट बिनहिं बिचारे।।
सकल प्रानि पोसक जग त्राता। नवहिं जाहि नरदेव विधाता।।
अस सिव कै जे निंदा करई। रौरव घोर नरक मँह परई।।
निंदक जौ प्रायश्चित चाहा। बरिस सताधिक लगइ न थाहा।।

दोहा - **सिव पूजहि मन देइ करि पुरुब करम करि सुन्य।**
पूजा संग जदि करम ते सबु निष्फल नहिं पुन्य॥241॥
नीच वृत्ति जो नहिं तजहि गति उत्तम अति पाइ।
सो छूटइ सतकरम ते ऊपर चढ़ि गिरि जाइ॥242॥

चर्मपात्रे जलं तैलं न ग्राह्यं भक्तितत्परैः।
गृह्यते यदि भक्तेन रौरवं नरकं व्रजेत् ।।४३।।

न तस्य सूतकं किञ्चित्प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः।
जन्मनोत्थं मृतोत्थं च विद्यते परमार्थतः।।४४।।

लिङ्गार्चनरतायाश्च ऋतौ नार्या न सूतकम्।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकं नैव विद्यते।।४५।।

गृहे यस्मिन् प्रसूता स्त्री सूतकं नात्र विद्यते।
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात् सर्वपापं प्रणश्यति।।४६।।

शिवस्थानानि तीर्थानि विशिष्टानि शिवार्चकः।
शिवयात्रोत्सवं नित्यं सेवेत परया मुदा।।४७।।

शिवक्षेत्रोत्सवमहायात्रादर्शनकाङ्क्षिणाम्।
मार्गेऽन्नपानदानं च कुर्यान्माहेश्वरो जनः।।४८।।

नान्नतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः।
तस्मान्माहेश्वरो नित्यमन्नतोयप्रदो भवेत्।।४९।।

स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः स्वजातिभ्यः सदाव्रती।
दद्यात्तेभ्यः समादद्यात् कन्यां कुलसमुद्भवाम्।।५०।।

एवमाचारसंयुक्तो वीरशैवो महाव्रती।
पूजयेत्परया भक्त्या गुरुं लिङ्गं च सन्ततम्।।५१।।

चौपाई - साधक लहि पंचाच्छर दिच्छा। नरहि प्रसंसइ आपुनि इच्छा।।
दुराचाररत सो नर कामी। सदा अलिंगी कुकवि सुनामी।।
सिव कौ भगत भजन रत जेई। खाल भाँड़ जल तेल न लेई।।
जदि अस करइ भगत मति भोरा। नरक परइ रौरव मँह घोरा।।
धरम बिघन जे सूतक आहीं। जनन मरन दुइ भांति कहाहीं।।
प्रानलिंग जे देह धराहीं। तेहि कँह कछु सूतक भय नहीं।।

दोहा - नित्य करै लिंगार्चना जो नारी मति धीर।
सूतक नहिं रितु प्रसव मँह यहु सिद्धांत गँभीर॥243॥

चौपाई - सिवलिंगार्चक जेहि घर नारी। करइ प्रसव सुमिरइ तिपुरारी।।
तहउँ न सूतक लागइ कबहूँ। नहिं असौच ब्यापइ तँह सबहूँ।।
सिव पादांबु परस भरि होई। तहँ सबु पापु महेस बिगोई।।
सिवपूजक जो भगत सयाना। करइ सिवालय आना-जाना।।
जो विसिष्ट सिवतीरथ कोई। सेवै जाइ परम हित होई।।
सिव जात्रा उत्सव अति पावन। सबु तजि सो सेवै मनभावन।।
तीरथ जात्रा उत्सव भारी। सिव दरसन चाहत नर नारी।।
अन्नपान सबु जेहि मग जाहीं। दान सैव जन चहिअ कराहीं।।

दोहा - जीवदया सम तपु नहीं अन्न बारि सम दान।
करिअ दान नित अन्नजल सैव सहित सम्मान॥244॥

चौपाई - सदा संभुब्रत जो निरबाहा। करउ स्वजाति स्वमत अवगाहा।।
संप्रदाय निज अरु निज जाती। उत्तम बर खोजिअ सबु भाँती।।
तेहि मँह लखि दुलहा अभिरूपा। देइ दान कन्या अनुरूपा।।
भाँति एहि सुभ लच्छन कन्या। दुलहिन घर लावइ नहिं अन्या।।

गुरोरभ्यर्चनेनापि साक्षादभ्यर्चितः शिवः।
तयोर्नास्ति भिदा किञ्चिदेकत्वात्तत्त्वरूपतः।।५२।।

यथा देवे जगन्नाथे सर्वानुग्रहकारके।
तथा गुरुवरे कुर्यादुपचारान् दिने दिने।।५३।।

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये।।५४।।

शिवज्ञानं महाघोरसंसारार्णवतारकम्।
गुरुः स दीयते येन कस्य वन्द्यो न जायते।।५५।।

यत्कटाक्षकलामात्रात् परमानन्दलक्षणम्।
लभ्यते शिवरूपत्वं स गुरुः केन नार्चितः।।५६।।

हितमेव चरेन्नित्यं शरीरेण धनेन च।
आचार्यस्योपशान्तस्य शिवज्ञानमहानिधेः।।५७।।

गुरोराज्ञां न लङ्घेत सिद्धिकामी महामतिः।
तदाज्ञालङ्घनेनापि शिवाज्ञाच्छेदको भवेत्।।५८।।

यथा गुरौ यथा लिङ्गे भक्तिमान् परिवर्तते।
जङ्गमे च तथा नित्यं भक्तिं कुर्याद्विचक्षणः।।५९।।

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः।।६०।।

दुहुँ कुटुंब मरजादा एही। सम समधी बर बहू सनेही।।
कन्या दुहुँ कुल सेतु सुहाई। कुलब्रत बीथी रची सुहाई।।

दोहा - बीरसैव अति दृढ़ब्रती संजुत एहि आचार।
पूजिअ गुरु सिवलिंग कौ गहि मन भगति उदार॥245॥

चौपाई - गुरु अर्चन बन्दन कर कोई। सिव साच्छात् सुपूजित होई।।
गुरु पूजा सिव पूजा जानहु। सिव-गुरु भेद न तनिकहु मानहु।।
तत्वरूप ते एकहि दोऊ। सैव भगत नहि संसय होऊ।।
महादेव पुनि अंतरजामी। सबु पर करहिं अनुग्रह स्वामी।।
जेहि बिधि महादेव सो पूजिअ। तैसइँ नित गुरुबर कँह कीजिअ।।
महादेव औ गुरु नहिं भेदा। एकहि तत्व कहहिं सबु बेदा।।

दोहा - महादेव प्रत्यच्छ नहिं निज माया छिपि जाँइ।
भक्तिसिद्धि लगि सोइ गुरु सबु कँह प्रगट लखाँइ॥246॥

चौपाई - जो सिवग्यान देइ अपनावा। महाघोर भवनिधि कौ नावा।।
सो गुरु अति दयालु जग माहीं। बन्दनीय केहि के भल नाहीं।।
कृपा कटाच्छ जाहि लवलेसा। लच्छन परमानन्द हमेसा।।
सिव रूपत्व लहइ सुचि प्रानी। पूजित गुरु सबु लोग बखानी।।
जे सिवग्यान महानिधि आहीं। रागद्वेष जामें कहुँ नाहीं।।
निज तन धन गुरु के हित लागी। सरबस देइ भगत अनुरागी।।

दोहा - कबहुँ न मेंटइ गुरुबचन सिद्धि चाह मतिधीर।
गुरु अग्या लंघन किये लगइ पाप गंभीर॥247॥

चौपाई - जे गुरु अग्या लंघन करहीं। सिव अग्या छेदक ते बनहीं।।
भगत जथा सेवाबिधि करई। गुरु सिवलिंग भगति आचरई।।
बुद्धिमान वैसइ नित लागी। जंगम भगति करउ अनुरागी।।

लिङ्गं च द्विविधं प्रोक्तं जङ्गमाजङ्गमात्मना।
अजङ्गमे यथा भक्तिर्जङ्गमे च तथा स्मृता।।६१।।

अजङ्गमं तु यल्लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्।
तद्वरं जङ्गमं लिङ्गं शिवयोगीति विश्रुतम्।।६२।।

अचरे मन्त्रसंस्काराल्लिङ्गे वसति शङ्करः।
सदाकालं वसत्येव चरलिङ्गे महेश्वरः।।६३।।

शिवयोगिनि यद्दत्तं तदक्षयफलं भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयलेन तस्मै देयं महात्मने।।६४।।

यत्फलं लभते जन्तुः पूजया शिवयोगिनः।
तदक्षयमिति प्रोक्तं सकलागमपारगैः।।६५।।

नावमन्येत कुत्रापि शिवयोगिनमागतम्।
अवमानाद्भवेत्तस्य दुर्गतिश्च न संशयः।।६६।।

शिवयोगी शिवः साक्षादिति कैङ्कर्यभक्तितः।
पूजयेदादरेणैव यथा लिङ्गं यथा गुरुः।।६७।।

पादोदकं यथा भक्त्या स्वीकरोति महेशितुः।
तथा शिवात्मनोर्नित्यं गुरुजङ्गमयोरपि।।६८।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपावनपावनम्।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां शम्भोः पादाम्बुधारणम्।।६९।।

एकहि तत्व स्वयं जगदीसा। सबु परि किरिपा करहिं गिरीसा।।
गुरु जंगम सिवलिंग कहावा। सोइ सिव प्रगट भगत पहिं आवा।।
एक रूप सो त्रिबिध सरीरा। भुगुति मुकुति दै नासै पीरा।।

दोहा - जंगम थावर भेद दुइ लिंग कहहिं मतिधीर।
दूनहु भाव समान ते भगति न दुइबिध बीर॥248॥

चौपाई - अचल लिंग जस सास्त्र बतावा। माटी पाथर आदि बनावा।।
जंगम तेहि ते सेठ सुहावा। सिव जोगी प्रत्यच्छ कहावा।।
अचर लिंग सिव करहिं दुआरा। कारन तहाँ मंत्र संस्कारा।।
सिवजोगी चर लिंग कहावा। तेहि महेस निज सदन बनावा।।
जो कछु दीनि जाय सिवजोगी। दाता होइ अछय फल भोगी।।
एहि कारन करि जतन बिधाना। सिवजोगी कहँ दीजिअ दाना।।

दोहा - सिव जोगी कौ पूजि जन जेहि फल रहेउ अघाइ।
कहहिं सकल आगम बिबुध कबहुँ न सो बिनसाइ॥249॥

चौपाई - सिवजोगी जदि जाइ भेंटाई। तेहि सन करिअ न कबहु ढिठाई।।
सिवजोगी गुरु संभु समाना। सपनेहुँ तेहि न करिअ अपमाना।।
जो अपमान करइ चित लाई। सो नर कबहुँ न लहइ भलाई।।
जौ दुर्भाव होइ मन माहीं। सो दुरगति लह संसय नाहीं।।
सिव जोगी सिव छाँड़ि न दूजा। सेवक भाव करिअ नित पूजा।।
जस सिवलिंग जथा गुरु पूजिअ। तस सिव जोगी आदर कीजिअ।।

दोहा - भगति सहित जस साधक सिव चरनामृत लेइ।
तैसइँ गुरु जंगम चरन धोइ सुधासम सेइ॥250॥

चौपाई - मंगल हू कौ मंगलकारी। पावन हू कौ पावनधारी।।
जग मँह सकल सिद्धि कै कारन। सादर सिव पादोदकधारन।।

शिरसा धारयेद्यस्तु पत्रं पुष्पं शिवार्पितम्।
प्रतिक्षणं भवेत्तस्य पौण्डरीकक्रियाफलम्।।७०।।

भुञ्जीयाद् रुद्रभुक्तान्नं रुद्रपीतं जलं पिबेत्।
रुद्राघ्रातं सदा जिघ्रेदिति जाबालिकी श्रुतिः।।७१।।

अर्पयित्वा निजे लिङ्गे पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
अन्नाद्यं सर्वभोज्यं च स्वीकुर्याद् भक्तिमान्नरः।।७२।।

गुरुत्वात् सर्वभूतानां शम्भोरमिततेजसः।
तस्मै निवेदितं सर्वं स्वीकार्यं तत्परायणैः।।७३।।

ये लिङ्गधारिणो लोके ये शिवैकपरायणाः।
तेषां तु शिवनिर्माल्यमुचितं नान्यजन्तुषु।।७४।।

अन्नजाते तु भक्तेन भुज्यमाने शिवार्पिते।
सिक्थे सिक्थेऽश्वमेधस्य यत्फलं तदवाप्यते।।७५।।

निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं शिवेन स्वीकृतं यतः।
निर्मलैस्तत्परैर्धार्यं नान्यैः प्राकृतजन्तुभिः।।७६।।

शिवभक्तिविहीनानां जन्तूनां पापकर्मणाम्।
विशुद्धे शिवनिर्माल्ये नाऽधिकारोऽस्ति कुत्रचित्।।७७।।

शिवलिङ्गप्रसादस्य स्वीकाराद् यत्फलं भवेत्।
तथा प्रसादस्वीकाराद् गुरुजङ्गमयोरपि।।७८।।

तस्माद् गुरुं महादेवं शिवयोगिनमेव च।
पूजयेत् प्रसादान्नं भुञ्जीयात् प्रतिवासरम्।।७९।।

पात पुष्प सिव अरपित आना। निज सिर धरइ जो भगत सयाना।।
पौंडरीक किरिआ फल ताही। प्रति छन मिलइ बिदित जग माहीं।।
खाइअ अन्न जो सिवहि चढ़ावा। पीजिअ जल जेहि भोग लगावा।।
सिवहि समरपित फूलहि सुंघई। अस जाबाल उपनिषद कहई।।
अष्टलिंग निज करइ समरपन। पात पुहुप फल जल अस भोजन।।
सोइ प्रसाद तबु सिर धरि लेवा। करइ भगत नित दिव्य कलेवा।।

दोहा - **सबु जीवन्ह बड़ ऊँच सिव तेज लजाहिं दिनेस।**
सम्भु भगत परसाद पुनि लहहिं निवेदि असेष॥251॥

चौपाई - इष्टलिंग जे धारन करहीं। सदा संभु सेवा मँह रहहीं।।
एकनिष्ठ सिवभगति परायन। आन देव सपनेहु नहिं ध्यायन।।
सिव निरमाल्य उचित तेहि केरी। अन्य जीव नहिं उचित घनेरी।।
भगत अन्न सिव भोग लगावै। पुनि सादर प्रसाद सो पावै।।
एकु एकु कन परम पुनीता। अमरित स्वाद मनहु तिन जीता।।
भगत ताहि कर फल सोइ पावा। जो फल अस्वमेध जग लावा।।

दोहा - **सिव स्वीकृत निर्माल्य अति निर्मल सुद्ध सुजान।**
अति बिसुद्ध सिव भगत तेहि लहइँ न कोऊ आन॥252॥

चौपाई - जे नर नित सिव भगति बिहीना। पाप करम संतत रह लीना।।
सिव निर्माल्य ग्रहन कँह कोऊ। तिन्ह अधिकार कतहुँ नहिं होऊ।।
सिव बिग्रह जो चढ़इ चढ़ावा। ताहि ग्रहन कर जो फल गावा।।
सोइ फल गुरु सिव जोगि प्रसादा। करइ समित जग सकल बिषादा।।
तेहि कारन श्रीगुरु महदेवा। सिव जोगी पूजिअ नित सेवा।।
तीनहुँ पूजिअ भेद बिहाई। जो सिव जंगम सो गुरुराई।।
प्रतिदिन तिन्ह कँह भोग लगाइअ। सो प्रसाद सादर सबु पाइअ।।

शिवलिङ्गे शिवाचार्ये शिवयोगिनि भक्तिमान्।
दानं कुर्याद्यथाशक्ति तत्प्रसादयुतः सदा।।८०।।

दानं च त्रिविधं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम्।
सहजं चेति सर्वेषां सर्वतन्त्रविशारदैः।।८१।।

फलाभिसन्धिसंयुक्तं दानं यद्विहितं भवेत्।
तत् सोपाधिकमाख्यातं मुमुक्षुभिरनादृतम्।।८२।।

फलाभिसन्धिनिर्मुक्तमीश्वरार्पितकाङ्क्षितम्।
निरुपाधिकमाख्यातं दानं दानविशारदैः।।८३।।

आदातृदातृदेयानां शिवभावं विचिन्तयन्।
आत्मनोऽकर्तृभावं च यद्दत्तं सहजं भवेत्।।८४।।

सहजं दानमुत्कृष्टं सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
शिवज्ञानप्रदं पुंसां जन्मरोगनिवर्तकम्।।८५।।

शिवाय शिवभक्ताय दीयते यदि किञ्चन।
भक्त्या तदपि विख्यातं सहजं दानमुत्तमम्।।८६।।

दानात् स्वर्णसहस्रस्य सत्पात्रे यत्फलं भवेत्।
एकपुष्पप्रदानेन शिवे तत्फलमिष्यते।।८७।।

शिव एव परं पात्रं सर्वविद्यानिधिर्गुरुः।
तस्मै दत्तं तु यत्किञ्चित्तदनन्तफलं भवेत्।।८८।।

दोहा - सिव सिवजोगी गुरुहि लगि भगति करइ मतिमान।
किरपा लहि पुनि सो करइ जथा सक्ति नित दान॥253॥
सोपाधिक निरुपाधि पुनि सहज भेद ते तीन।
पुन्य करम यहु दान नित बरनहिं सास्त्र प्रबीन॥254॥

चौपाई - जेहि कै फल अभिलाषा मूला। कीन्ह जाइ जो गरबहि फूला।।
सोपाधिक सो दान कहावा। नहिं तनिकहुँ मुमुच्छु मन भावा।।
जेहि मँह फल अभिलाषा नाहीं। जो अरपित सबु ईस्वर पाहीं।।
कहइँ ताहि निरुपाधिक दाना। दान बिसारद बिसद बखाना।।
जेहि देइअ अरु जो कछु देइअ। सो सबु सिव सरूप मनु पेखिअ।।
हौं नहिं कछु काहू कौ दाता। अस बिचार निहछल चित राता।।
तबु यहु दान सहज कहि जाई। दिए होइ सबु भाँति भलाई।।

दोहा - सहज दान सबु दान ते उत्तम अरु उत्कृष्ट।
करि निदान भवब्याधि कँह दे सिव ग्यान बिसिष्ट॥255॥

चौपाई - महादेव लगि करहिं जे दाना। अरु सिव भगतहि सह सम्माना।।
भगति सहित अभिमान भुलाई। दान सहज सोउ श्रेष्ठ कहाई।।
सुबरन सहस दान जो दीन्हे। होइ सुफल अधिकारी चीन्हे।।
सिव कँह एकइ कुसुम चढ़ावा। सो फल भगत तुरन्तहि पावा।।
संकर परम दान अधिकारी। सोइ विद्या निधि गुरु अबिकारी।।
जथा सक्ति तिन्ह दीनि जो जाई। सो अनन्त गुन फल अधिकाई।।

दोहा - सिवजोगी साच्छात सिव सिवग्यानाब्धि अपार।
दीनि जाइ जो कछु तिन्हहि सो परमारथ सार॥256॥

चौपाई - करहु विचार समुझि मन माँही। सिव जोगी ते बड़ कोउ नाहीं।।
दान ग्रहन कँह सुठि अधिकारी। सैव सास्त्र सबु कहहिं तिखारी।।

शिवयोगी शिवः साक्षाच्छिवज्ञानमहोदधिः।
यत्किञ्चिद्दीयते तस्मै तद्दानं पारमार्थिकम्।।८९।।

शिवयोगी महापात्रं सर्वेषां दानकर्मणि।
तस्मान्नास्ति परं किञ्चित्पात्रं शास्त्रविचारतः।।९०।।

भिक्षामात्रप्रदानेन शान्ताय शिवयोगिने।
यत्फलं लभ्यते नैतद् यज्ञकोटिशतैरपि।।९१।।

शिवयोगिनि संतृप्ते तृप्तो भवति शङ्करः।
तत्तृप्त्या तन्मयं विश्वं तृप्तिमेति चराचरम्।।९२।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन येन केनापि कर्मणा।
तृप्तिं कुर्यात् सदाकालमन्नाद्यैः शिवयोगिनः।।९३।।

निरुपाधिकचिद्रूपपरानन्दात्मवस्तुनि।
समाप्तं सकलं यस्य स दानी शङ्करः स्वयम्।।९४।।

उक्ताखिलाचारपरायणोऽसौ
सदा वितन्वन् सहजं तु दानम्।
ब्रह्मादिसम्पत्सु विरक्तचित्तो
भक्तो हि माहेश्वरतामुपैति।।९५।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले भक्तमार्गक्रियादिसप्तविधस्थलप्रसङ्गो नाम नवमः परिच्छेदः ।।९।।

सिव जोगी कँह केवल भिच्छा। देइ भगत जौं आपनि इच्छा।।
एतनहि सों जो फल सो पावै। कोटिन्ह जग्य किएहु नहिं आवै।।
सिवजोगी कै तृपिति मुनीसा। तृपित होइँ सिवसंकर ईसा।।
जग सिवमय सबु काहू जाना। एहि ते तृपित सकल जग माना।।
सकल चराचर तृपित सुखारी। तृपित भए सिवजोगि पुरारी।।

दोहा - **तेहि कारन सबु जतन करि कोउ उपाय निकालु।**
करिअ तृपिति अन्नादि सों सिवजोगिहि सबु कालु॥257॥

छन्द - जबु बिनु कछु आसा तजि अभिलाषा करइ जो बिस्व विलासा।
तेहि लागि समरपन चिदानन्द घन तत्व जो परम प्रकासा।।
आपुन नहिं माना करि सबु दाना हाथ कछू नहिं राखा।
सो भगत अमानी सिवसम दानी भएउ सास्त्र सबु भाखा।।

दोहा - **भगति परायन जो रहै सदाचार अपनाइ।**
अति उदार कर दान नित सहज न कबहुँ जनाइ॥258॥
ब्रम्हादिक सम्पति अनत कबहुँ न चित्त लगाइ।
सो उत्तम दानी भगत माहेस्वर कहि जाइ॥259॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह नौवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
दशमः परिच्छेदः

भक्तस्थलं समाख्यातं भवता गणनायक।
केन वा धर्मभेदेन भक्तो माहेश्वरो भवेत्।।१।।

केवले सहजे दाने निष्णातः शिवतत्परः।
ब्रह्मादिस्थानाविमुखो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।२।।

भक्तेर्यदा समुत्कर्षो भवेद्वैराग्यगौरवात्।
तदा माहेश्वरः प्रोक्तो भक्तः स्थिरविवेकवान्।।३।।

माहेश्वरस्थलं वक्ष्ये यथोक्तं शम्भुना पुरा।
माहेश्वरप्रशंसादौ लिङ्गनिष्ठा ततः परम्।।४।।

पूर्वाश्रयनिरासश्च तथाद्वैतनिराकृतिः।
आह्वानवर्जनं पश्चादष्टमूर्तिनिराकृतिः।।५।।

सर्वगत्वनिरासश्च शिवत्वं शिवभक्तयोः।
एवं नवविधं प्रोक्तं माहेश्वरमहास्थलम्।।६।।

आदितः क्रमशो वक्ष्ये स्थलभेदस्य लक्षणम्।
समाहितेन मनसा श्रूयतां भवता मुने।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
दसवाँ परिच्छेद

चौपाई - रिसि अगस्ति एतना सुनि काना। धन्य धन्य रेनुकहि बखाना।।
पुनि सादर बोलेउ घट जोनी। गननायक आयउ तुम छोनी।।
मनुज दनुज सबु कीन्ह कृतारथ। करन हेतु उतरेउ परमारथ।।
भगतथलहि रुचि आपु बखानी। पूछहुँ कछु अंतर उर आनी।।
धरम भेद कहु काह बनावा। माहेस्वर को भगत कहावा।।
प्रस्न सुनेउ गननायक एहा। रेनुक बोलेउ सहित सनेहा।।

दोहा - सैव भगत सुचि आचरन करइ सहज नित दान।
नहि चाहइ ब्रम्हादि पद तेहि माहेस्वर जान॥260॥

चौपाई - जबु बैराग्य होइ अधिकाई। भगति उत्करष देइ बढ़ाई।।
थिर बिबेक जुत भगत सुजाना। माहेस्वर तेहि कहँहिं सयाना।।
माहेस्वर थल कहउँ बखानी। निज मुँह संभु कहेउ सुनु ग्यानी।।
माहेस्वर कँह करइ बड़ाई। लिंगार्चन निष्ठा अधिकाई।।
पूरुब आस्त्रय करइ निरासा। निराकरन अद्वैत प्रकासा।।
बरजइ सबु प्रकार अह्वाना। अष्टमूर्ति मेटइ बिधि नाना।।

दोहा - सर्वगत्व निरसन परम सिव कौ जगन्मयत्व।
माहेस्वर थल नौ कहहिं जे जानहिं सिव तत्व॥261॥

चौपाई - अबु थलभेद एक ही एका। लच्छन कहिअउँ सहित बिबेका।।
जाहि सुनत सबु पाप नसाई। कइ थिर चित्त सुनहु मुनिराई।।
चर अरु अचर भुवन जँह लागी। सबु ते बड़ सिव अस अनुरागी।।
रुद्र अनुग्रह सबु पर करई। जो नर अस दृढ़ मति अनुसरई।।

विश्वस्मादधिको रुद्रो विश्वानुग्रहकारकः।
इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स वै माहेश्वरः स्मृतः।।८।।

ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायैर्निर्मले परमेश्वरे।
साम्योक्तिं यो न सहते स वै माहेश्वराभिधः।।९।।

ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां महानिति।
बुद्धियोगात्तदासक्तो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।१०।।

ब्रह्मादिदेवताजालं मोहितं मायया सदा।
अशक्तं मुक्तिदाने तु क्षयातिशयसंयुतम्।।११।।

अनादिमुक्तो भगवानेक एव महेश्वरः।
मुक्तिदश्चेति यो वेद स वै माहेश्वरः स्मृतः।।१२।।

क्षयातिशययुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसम्पदः।
तृणवन्मन्यते युक्त्या वीरमाहेश्वरः सदा।।१३।।

शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सुखलेशे तु निःस्पृहः।
शिवानन्दे समुत्कण्ठो वीरमाहेश्वरो भवेत्।।१४।।

परस्त्रीसङ्गनिर्मुक्तः परद्रव्यपराङ्मुखः।
शिवार्थकार्यसम्पन्नः शिवागमपरायणः।।१५।।

शिवस्तुतिरसास्वादमोदमानमनाः शुचिः।
शिवोत्कर्षप्रमाणानां सम्पादनसमुद्यतः।।१६।।

सो नर धरनि श्रेष्ठ होइ आवा। माहेस्वर सिवभगत कहावा।।
ब्रम्हादिक जे देव मलीना। जदि कोउ तुलना कर मति हीना।।
परमेस्वर संग करइ ढिठाई। सो तुलना जेहि सहि नहिं जाई।।
सोइ सिव भगत सत्यव्रत धारी। माहेस्वर संज्ञा अधिकारी।।

दोहा - **ब्रम्हादिक सबु जीव मँह ईस्वर एक महान।**
समुझि ईस आसक्त जो तेहि माहेस्वर जान॥262॥

चौपाई - ब्रम्हा आदि देव गन जेते। माया सों मोहित रह ते ते।।
स्वयं रहहि छय अतिसय फंदा। मुकुति न देइ सकहिं अति मंदा।।
केवल एकु संभु जगु जाना। अहइ अनादि मुकुत भगवाना।।
जो जानइ तेहि मुकुति प्रदाता। माहेस्वर सो भगत कहाता।।
ब्रम्हा बिस्नु आदि कइ बैभव। जामें घट बढ़ संतत संभव।।
सो संपदा जो तृन सम माना। बीर माहेस्वर तेहि जग जाना।।

दोहा - **सबद परस सुख छनिक गनि उदासीन मन होय।**
सिवानन्द उत्कंठित बीर माहेस्वर सोय॥263॥

चौपाई - परनारी ताकइ नहिं ताता। रति प्रसंग कइ केतिक बाता।।
परधन कोटि संपदा आनी। ता पर दीठि नाहिं ललचानी।।
सिव कारज मानइ सबु काजा। मनन हेतु सिव आगम साजा।।
सिव अस्तुति रस रसना पागी। कर प्रसन्न मानस अनुरागी।।
मन क्रम बचन सदा सुचि रहई। आन देव मन कबहुँ न गहई।।
सिव उत्करष प्रमान सहाई। करत जतन मन बुद्धि लगाई।।
तजि ममता करि गरबहि दूरी। जगत कलेस नेवारि समूरी।।
महा मोह मद रचि न छुवाई। इरिषा डाह न तनिक भँवाई।।

दोहा - **काम भावना रहित मन क्रोध बेग ते दूर।**
हिरदै नित संतोषजुत जीवदया भरपूर॥264॥

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्जरः।
अस्पृष्टमदसम्बन्धो मात्सर्यावेशवर्जितः।।१७।।

निरस्तमदनोन्मेषो निर्धूतक्रोधविप्लवः।
सदा सन्तुष्टहृदयः सर्वप्राणिहिते रतः।।१८।।

निवारणसमुद्योगी शिवकार्यविरोधिनाम्।
सहचारी सदाकालं शिवोत्कर्षाभिधायिभिः ।।१९।।

शिवापकर्षसम्प्राप्तौ प्राणत्यागेऽप्यशङ्कितः।
शिवैकनिष्ठः सर्वात्मा वीरमाहेश्वरो भवेत् ।।२०।।

अस्य माहेश्वरस्योक्तं लिङ्गनिष्ठामहास्थलम्।
प्राणात्ययेऽपि सम्पन्ने यदत्याज्यं विधीयते।।२१।।

अपगच्छतु सर्वस्वं शिरश्छेदनमस्तु वा।
माहेश्वरो न मुञ्चेत लिङ्गपूजामहाव्रतम् ।।२२।।

लिङ्गपूजामकृत्वा तु ये न भुञ्जन्ति मानवाः।
तेषां महात्मनां हस्ते मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता।।२३।।

किमन्यैर्धर्मकलिलैः कीकषार्थप्रदायिभिः।
साक्षान्मोक्षप्रदः शम्भोर्धर्मो लिङ्गार्चनात्मकः।।२४।।

अर्पितेनान्नपानेन लिङ्गे नियमपूजिते।
ये देहवृतिं कुर्वन्ति महामाहेश्वरा हि ते।।२५।।

चौपाई - सिवकारज विरोध जे करई। तेहि निवारन मँह रत अहई।।
सिव उत्करष जतन रत मनई। तेहि कै साथ सदा जे रहई।।
सिव अपकरष कतहुँ जदि पावै। बिना हिचक निज प्रान गँवावै।।
आपु समान सबुहि जे माना। सिव तजि कबहुँ न केहु मन आना।।
एहि बिधि निष्ठा सिव मँह होई। बीर माहेस्वर जानहु सोई।।
अति संकट मँह परइ जो प्राना। लिंग तजइ नहिं तबउ बिधाना।।

दोहा - ऊपर सबु लच्छन कहे माहेस्वर पहचान।
तासु लिंग निष्ठा महा थल कँह रूप बिधान॥265॥

चौपाई - भलेहि जाउ सरबसु धन नाना। कटइ सीस निकसइ बरु प्राना।।
तबहुँ न बीर माहेस्वर कोई। लिंगार्चन ब्रत बिरत कि होई।।
जबु तक लिंग पूजि नहिं लेहीं। जीह अन्न तबु तक नहि देहीं।।
अस जे महापुरुस बड़भागी। मोच्छ लच्छि आवै बिनु माँगी।।
का पुनि नीच धरम अपनाए। छुद्र अरथ जे देहिं उपाए।।
परम धरम अति उत्तम माना। संभु जहाँ जगदीस प्रधाना।।
श्रद्धा भगति सहित जो बीरा। पूजइ लिंग लहइ फल धीरा।।

दोहा - लिंगार्चन बिधिवत करइ पालइ धरम महान।
बीर सैव माहेस्वर करइ जगत कल्यान॥266॥

चौपाई - पूजहिं लिंग सहित ब्रत नेमा। अरपहिं अन्न पान सुठि पेमा।।
एहिबिधि निजहि सरीर जिआवहिं। महामाहेस्वर तेइ कहावहिं।।
जाकर मन चिन्मय सिवलिंगा। निरत रहइ थिर सतत असंगा।।
जे उन्मुकुत बिषयरस त्यागी। ते सिव नहिं संसय बड़भागी।।
जे निज मन सिवलिंग लगावा। अस्तुति लिंग बचन नित गावा।।
दूनउ हाथ सिवार्चन करहीं। तेहि सबु रुद्र असंकहि कहहीं।।

दोहा - जे लिंगार्चन निष्ठ नित तिन्हहिं सरग का काम।
पावहिं नित्यानन्द सिव सास्त्र बिहित अभिराम॥267॥

चिन्मये शाङ्करे लिङ्गे स्थिरं येषां मनः सदा।
विमुक्तेतरसर्वार्थे ते शिवा नात्र संशयः।।२६।।

लिङ्गे यस्य मनो लीनं लिङ्गस्तुतिपरा च वाक्।
लिङ्गार्चनपरौ हस्तौ स रुद्रो नात्र संशयः।।२७।।

लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य कर्मणा स्वर्गहेतुना।
नित्यानन्दशिवप्राप्तिर्यस्य शास्त्रेषु निश्चिता।।२८।।

लिङ्गनिष्ठापरं शान्तं भूतिरुद्राक्षसंयुतम्।
प्रशंसन्ति सदाकालं ब्रह्माद्या देवता मुदा।।२९।।

लिङ्गैकनिष्ठहृदयः सदा माहेश्वरो जनः।
पूर्वाश्रयगतान् धर्मांस्त्यजेत्स्वाचाररोधकान्।।३०।।

स्वजातिकुलजान् धर्मान् लिङ्गनिष्ठाविरोधिनः।
त्यजन् माहेश्वरो ज्ञेयः पूर्वाश्रयनिरासकः।।३१।।

शिवसंस्कारयोगेन विशुद्धानां महात्मनाम्।
किं पूर्वकालिकैर्धर्मैः प्राकृतानां हि ते मताः।।३२।।

शिवसंस्कारयोगेन शिवधर्मानुषङ्गिणाम्।
प्राकृतानां न धर्मेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते।।३३।।

विशुद्धाः प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषा स्मृताः।
शिवसंस्कारिणः शुद्धाः प्राकृता इतरे मताः।।३४।।

चौपाई - सहल सुभाउ सान्त जे भगता। इष्टलिंग निष्ठा धरि भजता।।
धारन करइ बिभूति सरीरा। जथा जोग रुद्राच्छ गभीरा।।
करइँ प्रसंसा सदा सराहहिं। ब्रम्हा आदि देव सुख मानहिं।।
लिंगार्चन निज हृदय बसाई। एकनिष्ठ नित नेम बनाई।।
माहेस्वर जन सदा अमानी। मन क्रम बचन न कर बेईमानी।।
निज आचार रोध जो करई। पूरब आश्रय धरम सो तजई।।

दोहा - तजइ धरम पुरुबाश्रय रोधक सैवाचार।
एकनिष्ठ लिंगार्चक माहेस्वर साकार॥268॥

चौपाई - लिंगार्चन निष्ठा मँह बाधक। चाहे केतनहु सो हित साधक।।
जातिधरम कुल धरमहु होई। तजिअ कोटि बैरी सम सोई।।
निहिचय करि तज होइ कठोरा। जानिअ तेहि माहेस्वर घोरा।।
सो पुरुबाश्रय निरसन करई। दृढ़ सिद्धान्त सैव अनुसरई।।
जे सुठि सिवाचार ब्रतधारी। साधु पुरुस सबुबिधि अधिकारी।।
सिव संस्कार जोग लहि पूता। बिसद हृदय जेहि मलनिरधूता।।

दोहा - तेहि कौ पूरब धरम ते अबु प्रजोग कछु नाहिं।
धरम सोउ तेहि कौ कहे जे गँवार जन आहिं॥269॥

चौपाई - सिव संस्कार कीन्ह जेहि जाई। फुरि पालइ सिव धरम सुहाई।।
ऐसेहु प्राकृत जन अनुरागे। अन्य धरम मँह मन नहिं लागे।।
मानुस भेद दूइ कहि आवा। प्राकृत अउर बिसुद्ध कहावा।।
सिव संस्कार जुत्त जे मनई। सास्त्र मते बिसुद्ध सो अहई।।
जेहि के सिवसंस्कार न काऊ। प्राकृत सो नर लोक कहाऊ।।
दुइ प्रकार बरनाश्रम धरमा। मानुस लहइ जथा निज करमा।।

दोहा - एक ब्यवस्था सिव दई दूसर ब्रम्हा दीन्ह।
एहि बिधि मानुस जाति कौ निज निज आश्रय कीन्ह॥270॥

चौपाई - सिव आश्रय मँह जे नर रहहीं। सैव धरम मँह निष्ठा रखहीं।।

वर्णाश्रमधर्माणां व्यवस्था हि द्विधा मता।
एका शिवेन निर्दिष्टा ब्रह्मणा कथिताऽपरा।।३५।।

शिवोक्तधर्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवसंस्कारहीनानां धर्मः पैतामहः स्मृतः।।३६।।

शिवसंस्कारयुक्तेषु जातिभेदो न विद्यते।
काष्ठे तु वह्निदग्धेषु यथा रूपं न विद्यते।।३७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवसंस्कारसंयुतः।
जातिभेदं न कुर्वीत शिवभक्ते कदाचन।।३८।।

पूज्यपूजकयोर्लिङ्गजीवयोर्भेदवर्जने ।
पूजाकर्माद्यसम्पत्तेर्लिङ्गनिष्ठाविरोधतः।।३९।।

सर्वाद्वैतविचारस्य ज्ञानाभावे व्यवस्थितेः।
भवेन्माहेश्वरः कर्मी सर्वाद्वैतनिरासकः।।४०।।

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च।
भेदात् स पूजयेन्नित्यं न चाद्वैतपरो भवेत्।।४१।।

पतिः साक्षान्महादेवः पशुरेष तदाश्रयः।
अनयोः स्वामिभृत्यत्वमभेदे कथमिष्यते।।४२।।

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः।
तदाद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित्।।४३।।

सिव संस्कार रहित जे प्रानी। तेहि कर धरम पितामह जानी।।
सिव संस्कार सहित जे होई। जातिभेद नहिं बाधै सोई।।
जो जो काठ अगिनि मँह जरई। पूरब रूप कहाँ ते धरई।।
तेहि ते करि सबु जतन सहाई। सिव संस्कार सहित बनि जाई।।
सबु सिवभगत भाव अस लावै। जातिभेद नहिं तँह उपजावै।।
पूज्य लिंग अरु पूजक जीवा। दुँहु मँह भेद न उतरइ ग्रीवा।।
पूजा करम आदि नहिं पावा। निष्ठालिंग बिरोध नसावा।।
सर्वाद्वैत विचार व्यवस्था। ज्ञान अभाव असंख्य अवस्था।।
सहित निरास सर्ब अद्वैता। सो माहेस्वर भगत अगैता।।

दोहा - प्रेरक संकर मानि कै आपु प्रेर्ज सुठि जान।
भेद समुझि पूजिअ तिन्हहि बचि अद्वैत धँसान॥271॥
महादेव साक्षात् पति पशु तेहि आश्रय जीव।
सेब्यसेवकहि भाव मँह कँह अद्वैतहि नींव॥272॥

चौपाई - निरमल ग्यान उदित जबु होई। सकल आबरन जीव बिगोई।।
तबु अद्वैत भाव उर आई। ज्ञान हीन तेहि कबहुँ न पाई।।
जो ब्यौहार भेद कर होई। कारन करम तहाँ पुनि सोई।।
ताते नहिं अद्वैत अचारा। जे लिंगार्चक भगति दुआरा।।
पूजा आदि सकल ब्यौहारा। होइँ न बिना भेद आधारा।।
एहि कारन लिंगार्चन निष्ठा। कबहुँ न कर अद्वैत प्रतिष्ठा।।

दोहा - जे लिंगार्चन निरत नित माहेस्वर अति सुद्ध।
सर्वाद्वैत निरास कर संजम नियम प्रबुद्ध॥273॥
इष्टलिंग निज पूजिअत सिवाकार सुभ खान।
तेहि मँह सिव आराधिअत बिनहि किए आह्वान॥274॥

चौपाई - कारन इहाँ सरल अति होई। जे सिवभगत जान सबु कोई।।
सिष्यहि दीन्ह महागुरु जबु ते। बिधिवत इष्टलिंग सुठि तबु ते।।
तेहि मँह बसहिं संभु अबिनासी। लिंग सोइ सिव कला बिलासी।।

भेदस्य कर्महेतुत्वाद् व्यवहारः प्रवर्तते।
लिङ्गपूजादिकर्मस्थो न चाद्वैतं समाचरेत्।।४४।।

पूजादिव्यवहारः स्याद्भेदाश्रयतया सदा।
लिङ्गपूजापरस्तस्मान्नाद्वैते निरतो भवेत्।।४५।।

लिङ्गार्चनपरः शुद्धः सर्वाद्वैतनिरासकः।
स्वेष्टलिङ्गे शिवाकारे न तमाह्वयेच्छिवम्।।४६।।

यदा शिवकलायुक्तं लिङ्गं दद्यान्महागुरुः।
तदारभ्य शिवस्तत्र तिष्ठत्याह्वानमत्र किम्।।४७।।

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः।
तत्राह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम्।।४८।।

नाह्वानं न विसर्गं च स्वेष्टलिङ्गे तु कारयेत्।
लिङ्गनिष्ठापरो नित्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।।४९।।

यथात्मशिवयोरैक्यं न मतं कर्मसङ्गिनः।
तथा शिवात्पृथिव्यादेरद्वैतमपि नेष्यते।।५०।।

पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वमीश्वरस्य प्रकीर्तितम्।
तदधिष्ठातृभावेन न साक्षादेकभावतः।।५१।।

पृथ्व्यादिकमिदं सर्वं कार्यं कर्ता महेश्वरः।
नैतत्साक्षान्महेशोऽयं कुलालो मृत्तिका यथा।।५२।।

जँह लगि लिंग सहित संस्कारा। बसहिं सदा सिव रहित बिकारा।।
नहिं अह्वान करिअ सिव सोधी। ग्यान भगति दुहु बिसय बिरोधी।।

दोहा - **सास्त्र कहहिं दृढमत सुनहु लिंग निष्ठ जो कोउ।**
सिव आवाहन बिसरजन इष्टलिंग नहिं होउ॥275॥
जस आत्मासिव एकता नहिं मानइ सिव पूज।
तस पृथिवी संग संभु कौ ऐक्य अभीष्ट न दूज॥276॥

चौपाई - मूरति आठ संभु कै अहहीं। पृथिवी आदिरूप सबु कहहीं।।
एहि कर भाव इहै समुझाहीं। तिन्ह अभिन्न परमेस्वर नाहीं।।
अधिष्ठान ते आठ कहाहीं। अधिठाता परमेस्वर आहीं।।
नहिं एकत्व भाव तँह होई। यहु संबंध जान सबु कोई।।
पृथ्वी आदि आठहूँ काजा। कर्ता परम महेस बिराजा।।
जस कुम्हार माटी घटु जाना। तैसइ पृथिवी संभु बखाना।।

दोहा - **आठ भेद परपंच यहु धरा आत्म पर्यंत।**
आठहु देह महेस कै जो सबु तत्व नियंत॥277॥

चौपाई - परमेष्ठी परपंच रचावा। इन्ह आठन्ह निज देह बनावा।।
आतमभूत संभु अबिनासी। नहिं अभेद परपंच प्रकासी।।
घट पट सम नहि बिलग बिभेदा। जद्यपि सिव परपंच अभेदा।।
पृथिवी आदि अचेतन माना। जीवात्मा अल्पग्य बखाना।।
केवल सिव सर्बग्य सदाई। कस तीनहुँ अभेद कहि जाई।।
पृथिवी आदि प्रपंच बिधाना। आठ मूर्ति सिव विग्रह नाना।।

दोहा - **देही देह अभिन्न नहिं जगत बिदित सिद्धान्त।**
एहि बिधि चिन्तन करइ जो धीर गभीर प्रसान्त॥278॥

चौपाई - महादेव अति अहइँ बिलच्छन। मूरति आठ न तिन कँहु लच्छन।।
अस समुझइ जो गुनइ सुजाना। बीर माहेस्वर तेहि के माना।।

पृथिव्याद्यात्मपर्यन्तप्रपञ्चो ह्यष्टधा स्थितः।
तनुरीशस्य चात्मायं सर्वतत्त्वनियामकः।।५३।।

शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात्परमेष्ठिनः।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक्स्थितिः।।५४।।

अचेतनत्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वाद् आत्मनस्तथा।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते।।५५।।

इति यश्चिन्तयेन्नित्यं पृथिव्यादेरष्टमूर्तितः।
विलक्षणं महादेवं सोऽष्टमूर्तिनिरासकः।।५६।।

सर्वगत्वे महेशस्य सर्वत्राराधनं भवेत्।
न लिङ्गमात्रे तन्निष्ठो न शिवं सर्वगं स्मरेत्।।५७।।

सर्वगोऽपि स्थितः शम्भुः स्वाधारे हि विशेषतः।
तस्मादन्यत्र विमुखः स्वेष्टलिङ्गे यजेच्छिवम्।।५८।।

शिवः सर्वगतश्चापि स्वाधारे व्यज्यते भृशम्।
शमीगर्भे यथा वह्निर्विशेषेण विभाव्यते।।५९।।

सर्वगत्वं महेशस्य सर्वशास्त्रविनिश्चितम्।
तथाप्याश्रयलिङ्गादौ पूजार्थमधिका स्थितिः।।६०।।

नित्यं भासि तदीयस्त्वं या ते रुद्र शिवा तनूः।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी।।६१।।

सही अरथ सो सिवहि उपासइ। अष्टमूर्ति भ्रमजाल निरासइ।।
सिव ब्यापक सर्बत्र समाना। तिहि पूजा सर्बत्र बिधाना।।
केवल इष्टलिंग आराधे। सर्बगत्व सिव कँह पुनि बाधे।।
इष्टलिंग जे निष्ठा करहीं। तेपि सिवहि सर्बत्र सुमिरिहीं।।

दोहा - **जद्यपि सिव सर्बत्र बिभु तउ बिसेष स्वाधार।**
इष्टलिंग निज पूजिअत छाँड़ि सो अनत बिचार॥279॥

चौपाई - सिव ब्यापकु सबु जद्यपि रहहीं। निज आधार तदपि नित भरहीं।।
एहि कारन बिसेष अभिब्यक्ता। इष्टलिंग मँह रह अनुरक्ता।।
जथा अगिनि सबु लोक रहाई। समीगरभ कछु बिसिष बिभाई।।
सबुइ सास्त्र निहचित यहु कहहीं। परमेस्वर सबुही जगु रहहीं।।
तदपि लिंग मँह रहहिं बिसेषा। पूजा हेतु कृपालु महेसा।।
इष्टलिंग करि आश्रय सोई। बढ़ि कै थिति पूजा हित होई।।

दोहा - **श्रुति कह नित्य सनातनी रुद्र जो देइ तुम्हार।**
सो अनवद्य अघोर सुभ भासहु नित्य सुतार॥280॥

चौपाई - एहि कारन सबु जुगुति बनाई। चहुँ दिसि ब्यापकु सिवहि बराई।।
इष्टलिंग निज कीजिअ सेवा। पूजिअ तहँइ भगत महदेवा।।
जद्यपि संभु सर्बगति अहई। नहिं सर्बत्र भगत रति करई।।
स्वेष्टलिंगगत पूजहि देवा। सर्बगत्व निरसन सो लेवा।।
पूजाबिधि नियमन बस होई। लिंग मात्र मँह संभु सँजोई।।
पूजइ तँहइ महेस मनावइ। सिव ब्यापकता सतत बिभावइ।।

दोहा - **पूजक उत्तम सो अहइ सिव ब्यापकता जानि।**
स्वेष्टलिंग जो पूजिअत अनत बिरति मन मानि॥281॥

चौपाई - पैदा भयउ चराचर एहा। महादेव ते अबिकल देहा।।
एहि कारनहि भिन्न नहिं होई। जथा भिन्न घट माहि न सोई।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थानपराङ्मुखः।
स्वेष्टलिङ्गे महादेवं पूजयेत्पूजकोत्तमः।।६२।।

शिवस्य सर्वगत्वेऽपि सर्वत्र रतिवर्जितः।
स्वेष्टलिङ्गे यजन् देवं सर्वगत्वनिरासकः।।६३।।

पूजाविधौ नियम्यत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवम्।
पूजयन्नपि देवस्य सर्वगत्वं विभावयेत्।।६४।।

यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम्।
तस्मादेतन्न भिद्येत यथा कुम्भादिकं मृदः।।६५।।

शिवतत्त्वात्समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं यथा सिन्धोर्न भिद्यते।।६६।।

यथा तन्तुभिरुत्पन्नः पटस्तन्तुमयः स्मृतः।।
तथा शिवात्समुत्पन्नं शिव एव चराचरम्।।६७।।

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात्।।६८।।

तस्माच्छिवमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
तदभिन्नतया भाति सर्पत्वमिव रज्जुतः।।६९।।

रज्जौ सर्पवद्भाति शुक्तौ तु रजतत्ववत्।
चोरत्ववदपि स्थाणौ मरीच्यां च जलत्ववत्।।७०।।

सिवतत्वहि उपजा संसारा। नहिं बिभेद दूनउँ कछु सारा।।
जो सिव तत्व उहइ तँह आवा। तेही ते संसार बनावा।।
कहहु कवन बिधि भेद लखाई। सिव संसार न कोउ बिलगाई।।
देखहु करि बिचार मन माहीं। तत्व भेद दूनहुँ कछु नाहीं।।

दोहा - **महा सिंधु जल एक है जहँ लगि तेहि बिस्तार।**
फेन बुलबुला लहर तस जस समुद्र जल खार॥282॥

चौपाई - जथा तन्तु ते बस्त्र बुनाई। सदा तन्तुमय पट सो कहाई।।
तथा सिवहि उत्पन्न चराचर। नहिं सिव छाँड़ि होइ कछु दूसर।।
सिव तस आतमसक्ति बिकासा। बिस्वरूप सर्बत्र प्रकासा।।
जइसे पट निज करि बिस्तारा। कुटी रूप सबु जगह पसारा।।
सकल चराचर जगत बिलासा। नित्य संभुमय करत प्रकासा।।
रस्सी ते उरगत्व प्रतीती। जस तस उहाँ अभेद सनीती।।

दोहा - **रस्सी मँह सर्पत्व सम सीपी रजत लखात।**
थूना मँह चोरत्व जिमि जल मरीचि झलकात॥283॥
नभोमध्य गंधर्बपुर रूप सच्चिदानन्द।
भेदरहित सिव मँह सकल बिस्व बिराज अमन्द॥284॥

चौपाई - डार पात धरि रूप बनाई। जथा रहइ कोउ बिरिछ सुहाई।।
ऐसअइ धरनि आदि धरि रूपा। सोहत संभु सदा सुरभूपा।।
भावाभावप्रपंचसरूपा। परमेस्वर संकर बहुरूपा।।
हृदयकंज सिव भगत असेषा। राजत संभु सदा सबिसेषा।।
जद्यपि सकल भुवन बिभु ब्यापा। सिव सबिसेष रहहिं जँह आपा।।
सो थल अबु तुम्ह सुनहु मुनीसा। जे अतिसय प्रिय मान गिरीसा।।

दोहा - **मन्दरगिरि कैलास पुनि गिरि सुमेरु हिमवान।**
भगत हृदय सबिसेष करि रहहिं संभु भगवान॥285॥

चौपाई - सर्बात्मा ब्यापक सिव अहई। परिच्छिन्न जस देहहि रहई।।

गन्धर्वपुरवद्व्योम्नि सच्चिदानन्दलक्षणे।
निरस्तभेदसद्भावे शिवे विश्वं विराजते।।७१।।

पत्रशाखादिरूपेण यथा तिष्ठति पादपः।
तथा भूम्यादिरूपेण शिव एको विराजते।।७२।।

समस्तजगदात्मापि शङ्करः परमेश्वरः।
भक्तानां हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते।।७३।।

कैलासे मन्दरे चैव हिमाद्रौ कनकाचले।
हृदयेषु च भक्तानां विशेषेण व्यवस्थितः।।७४।।

सर्वात्मापि परिच्छिन्नो यथा देहेषु वर्तने।
तथा स्वकीयभक्तेषु शङ्करो भासते सदा।।७५।।

विशुद्धेषु विरक्तेषु विवेकिषु महात्मसु।
शिवस्तिष्ठति सर्वात्मा शिवलाञ्छनधारिषु।।७७।।

नित्यं सन्तोषयुक्तानां ज्ञाननिर्धूतकर्मणाम्।
माहेश्वराणामन्तःस्थो विभाति परमेश्वरः।।७८।।

अन्यत्र शम्भो रतिमात्रशून्यो निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा।
शिवात्मकं विश्वमिदं विबुध्यन् माहेश्वरोऽसौ भवति प्रसादी।।७९।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्थले माहेश्वरप्रशंसादिनवविधस्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः ।।१०।।

तैसअइ निज भगतन्ह कइ काया। भासइ संकर सदा समाया।।
अस श्रुति कहइ सनातन रूपा। रुद्र! काय तव परम अनूपा।।
सो सरीर अनवद्य अघोरा। पुन्य रूप नित करइ अँजोरा।।
जे निष्ठाजुत भगत तिहारे। अरचहिं तुम्हहिं प्रपंच निवारे।।
भगति बिबस तव देह लोभाई। भगत हृदय बसि रही सोहाई।।

दोहा - **अतिसय सुद्ध बिरक्त पुनि सहित बिबेक सुजान।**
निज सरीर धारन करहिं सुभ सिवचिन्ह प्रमान॥286॥

छन्द - तँह देखि सुपासा नित कर बासा सिव ब्यापक भगवाना।
सन्तोष निधाना कर गत ग्याना भसम करम सबु आना।।
माहेस्वर रूपा भगत अनूपा तहाँ सच्चिदानंदा।
तिन्ह अन्तर साजा संभु बिराजा सोभा लहइ अमंदा।।
सिव संभु बिहाई बिरति बनाई संजत अन्तःकरना।।
सरबस सिव माना पूज अमाना इष्टलिंग निज सरना।।
यहु सृष्टि बनाई सिवमय साँई जानहिं जे बड़भागी।।
आनंद समेता संभु निकेता ते नित परम बिरागी।।

दोहा - **अति प्रसन्न माहेस्वर बिस्व सिवात्मक जान।**
साधक होत प्रसादि थल औरउ दै सम्मान॥287॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह दसवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

एकादशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

उक्तो माहेश्वरः साक्षाल्लिङ्गनिष्ठादिधर्मवान्।
कथमेष प्रसादीति कथ्यते गणनायक।।१।।

रेणुक उवाच —

लिङ्गनिष्ठादिभावेन ध्वस्तपापनिबन्धनः।
मनःप्रसादयोगेन प्रसादीत्येष कथ्यते।।२।।

प्रसादिस्थलमित्येतदस्य माहात्म्यबोधकम्।
अन्तरस्थलभेदेन सप्तधा परिकीर्तितम्।।३।।

प्रसादिस्थलमादौ तु गुरुमाहात्म्यकं ततः।
ततो लिङ्गप्रशंसा च ततो जङ्गमगौरवम्।।४।।

ततो भक्तस्य माहात्म्यं ततः शरणकीर्तनम्।
शिवप्रसादमाहात्म्यमिति सप्तप्रकारकम्।।५।।

क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि महामुने।
नैर्मल्यं मनसो लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते।
शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेव सिद्ध्यति।।६।।

शिवप्रसादं यद्द्रव्यं शिवाय विनिवेदितम्।
निर्माल्यं तत्तु शैवानां मनोनैर्मल्यकारणम्।।७।।

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

ग्यारहवाँ परिच्छेद

चौपाई - एतना सुनि अगस्ति रिषि बोलेउ। रेनुक करन रसायन घोलेउ।।
धरइ लिंग निष्ठादिक धरमा। कहेउ प्रगट माहेस्वर मरमा।।
अबु गननायक कहउ बुझाई। यहु परसादी कइस कहाई।।
बोलेउ रेनुक गिरा गभीरा। कुंभज सुनहु महामति धीरा।।
लिंगार्चन निष्ठादिक भावा। पापबन्ध सबु भाँति नसावा।।
मन प्रसन्न नहिं तनिक बिषादी। सो माहेस्वर होई प्रसादी।।

दोहा - यहु प्रसादि थल ग्यापई महिमा जासु अपार।
सो पुनि अन्तर भेद ते कहिअत सात प्रकार॥288॥

चौपाई - पहिला थल प्रसादि थल होई। गुरुमाहात्म्य दूसरो होई।।
लिंग प्रसंसा तीसर मानउ। जंगम गौरव चउथा जानउ।।
पाँचव भगतमहात्म्य कहावा। सरनकीर्तन थल छठ आवा।।
सतवाँ सिवप्रसादमाहातम। सातों थल अस बरनत आगम।।
एक एक करि लच्छन एहा। कहउँ महामुनि सहित सनेहा।।
मन निरमलता चिन्ह प्रसादा। कहहिं सास्त्र सबु बिनु अपवादा।।

दोहा - लिंग रूप सिव कँह कृपा सिद्ध होइ परसाद।
सिव प्रसाद ते नामु थल कहहिं लोग परसाद॥289॥
सिवहि समरपित द्रब्य पुनि सिव प्रसाद कहि जाइ।
सो निरमालय सैव मन निरमल नितहि बनाइ॥290॥

चौपाई - मन प्रसन्न जेहि ते सिध होई। कारन निरमल ग्यानहि सोई।।
तेहि कारन कँह कारन एहा। सिव प्रसाद सिर धरि जो लेहा।।
सिवप्रसाद नित करइ जिमाई। माहेस्वर प्रसादि कहि जाई।।
अन्न सुद्धि सों तत्व सुधाई। लोक बेद सबु कहइ कहाई।।

मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं निर्मलज्ञानकारणम्।
शिवप्रसादं स्वीकुर्वन् प्रसादीत्येष कथ्यते।।८।।

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां तत्त्वशुद्धिरुदाहृता।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय समर्पितम्।।९।।

तदेव सर्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम्।।१०।।

आत्मभोगाय नियतं यद्यद्द्रव्यं समाहितम्।
तत्तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीयादात्मशुद्धये।।११।।

नित्यसिद्धेन देवेन भिषजा जन्मरोगिणाम्।
यद्यत् प्रसादितं भुक्त्वा तत्तज्जन्मरसायनम्।।१२।।

आरोग्यकारणं पुंसामन्तःकरणशुद्धिदम्।
तापत्रयमहारोगसमुद्धरणभेषजम् ।।१३।।

विद्यावैशद्यकरणं विनिपातविघातनम्।
द्वारं ज्ञानावतारस्य मोहोच्छेदस्य कारणम्।।१४।।

वैराग्यसम्पदो मूलं महानन्दप्रवर्धनम्।
दुर्लभं पापचित्तानां सुलभं शुद्धकर्मणाम्।।१५।।

अन्न जो सिव कँह भोग लगावा। सिवप्रसाद अति सुद्ध बनावा।।
सिव आराधन तत्पर भगता। नित प्रसाद आहार निबहता।।

दोहा - सिव प्रसाद ते ग्यान लह कारन परम प्रमान।
तहि ते पुनि परसन्नता उपजइ मनहिं अमान॥291॥

चौपाई - निज अहार लगि भगत परानी। जवन जुटावइँ दाना पानी।।
सो सबु सिवहि निबेदि हरषहीं। आत्मसुद्धि हित भोजन करहीं।।
सिव ते बड़ कोउ बैद्य न होई। बेद सिद्ध नित कह सबु कोई।।
अति असाध्य भवरोग कहाई। सिवहि छाँड़ि को देइ दवाई।।
जो प्रसाद सिव भोग लगावा। पाइ ताहि भव रोग नसावा।।
सिवप्रसाद निरमाल्य सुबायन। जनम निवारन सिद्ध रसायन।।

दोहा - सिद्धि परम जेहि चाहिअ ते सिव भोग लगाय।
सो प्रसाद सिद्धान्न नित भखहिं सिवहि सिर नाय॥292॥

चौपाई - सो आरोग्य हेतु कहि जाता। अन्तःकरन बिसुद्धि प्रदाता।।
महारोग नर तीनहु तापा। नासक भेषज सह सिव जापा।।
बिद्या बिसद बनावन सोई। पतन बिघातक सबु बिधि होई।।
ग्यान अवतरन सुभग दुआरा। मोह बिनासन हेतु सुतारा।।
बर बैराग्य बिभव कौ मूला। परमानन्द बढ़ावन पूला।।
पापी नर कहुँ दुरलभ एहा। सुलभ सदाचारिन्हि कै गेहा।।

दोहा - यहु प्रसाद महिमा अमित कहन न पावै पार।
जे सेवहिं एहि सिव भजहिं जाहिं जनम निस्तार॥293॥

चौपाई - ब्रम्हा बिस्नु आदि सबु देवा। रिषि बसिष्ठ तापस महिदेवा।।
सिव प्रसादु निज माथ लगावा। आदर सहित नित्य प्रति खावा।।
जो नर सिद्धि कामना करई। सिवप्रसाद श्रद्धा सों गहई।।

आदृतं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैर्वसिष्ठाद्यैश्च तापसैः।
शिवस्वीकृतमन्नाद्यं स्वीकार्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिः।।१६।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यच्छिवाय निवेदितम्।
तत्तत्स्वीकारयोगेन सर्वपापक्षयो भवेत्।।१७।।

यथा शिवप्रसादान्नं स्वीकार्यं लिङ्गतत्परैः।
तथा गुरोः प्रसादान्नं तथैव शिवयोगिनाम्।।१८।।

गुरुरेवात्र सर्वेषां कारणं सिद्धिकर्मणाम्।
गुरुरूपो महादेवो यतः साक्षादुपस्थितः।।१९।।

निष्कलो हि महादेवो नित्यज्ञानमहोदधिः।
सकलो गुरुरूपेण सर्वानुग्राहको भवेत्।।२०।।

यः शिवः स गुरुर्ज्ञेयो यो गुरुः स शिवः स्मृतः।
न तयोरन्तरं कुर्याद् ज्ञानावाप्तौ महामतिः।।२१।।

हस्तपादादिसाम्येन नेतरैः सदृशं वदेत्।
आचार्यं ज्ञानदं शुद्धं शिवरूपतया स्थितम्।।२२।।

आचार्यस्यावमानेन श्रेयःप्राप्तिर्विहन्यते।
तस्मान्निःश्रेयसप्राप्त्यै पूजयेत्तं समाहितः।।२३।।

गुरुभक्तिविहीनस्य शिवभक्तिर्न जायते।
ततः शिवे यथा भक्तिस्तथा भक्तिर्गुरावपि।।२४।।

जो कछु पात फूल फल तोया। भगति सहित सिव अर्पित होया।।
तेहि तेहि करइ जो जन स्वीकारा। ताकर होइ पाप निस्तारा।।
एहि बिधि सिवप्रसाद रुचि जाही। असुभ मेटि सुभ आवइ ताही।।

दोहा - **सिवहि समर्पित अन्न ज्यों करइ भगत स्वीकार।**
त्यों गुरु कँह सिवजोगि पुनि सुचि प्रसाद ब्यवहार॥294॥

चौपाई - जे असेष जग मँह सिधि करमा। कारन एक महागुरु परमा।।
महादेव गुरुरूप सुपासा। करइ नित्य साच्छात् प्रकासा।।
सास्वत ग्यान महोदधि रूपा। महादेव निष्कल सुरभूषा।।
सकल होइ गुरु रूप बनावा। सबु पर करन अनुग्रह आवा।।
नहिं कछु संभु गुरू मँह भेदा। कहइँ सास्त्र नित गावहिं बेदा।।
जो सिव सोइ गुरू बड़ग्यानी। जोइ गुरु सो सिव अनत अमानी।।

दोहा - **दूनहुँ अंतर करहिं नहिं बड़ मति सहित बिबेक।**
ग्यान सिद्धि साधक भगत सिव गुरु मानहिं एक॥295॥

चौपाई - अस अबिबेकु न मन मँह लावै। नहिं गुरु अस तस मनुज कहावै।।
हाथ पाँव लखि देह समानी। इतर सरिस अस कहिअ न बानी।।
आचारज गुरु ग्यान प्रदाता। सुचि सिव रूप जगत बिख्याता।।
कबहुँ न करिअ गुरुहि अपमाना। पूजिअ गुरुहि महेस समाना।।
गुरु अपमान करै जो कोई। मोच्छ लाभ कबहूँ नहिं होई।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। गुरु निंदक कहुँ तीनिहु ब्यापा।।
जौं नर चह आपनु कल्याना। कबहुँ करिअ नहिं गुरु अपमाना।।

दोहा - **चाहै जो परमार्थ गति अथवा पद निरबान।**
निरमल चित पूजिअ गुरुहि सदा सहित सम्मान॥296॥

चौपाई - जेहि नर नहिं गुरु भगति सुहाई। सो सिव भगति कबहु नहिं पाई।।

गुरुमाहात्म्ययोगेन निजज्ञानातिरेकतः।
लिङ्गस्यापि च माहात्म्यं सर्वोत्कृष्टं विभाव्यते।।२५।।

शिवस्य बोधलिङ्गं यद् गुरुबोधितचेतसा।
तदेव लिङ्गं विज्ञेयं शाङ्करं सर्वकारणम्।।२६।।

परं पवित्रममलं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
शिवाभिधानं चिन्मात्रं सदानन्दं निरङ्कुशम्।।२७।।

कारणं सर्वलोकानां वेदानामपि कारणम्।
पूरणं सर्वतत्त्वस्य तारणं जन्मवारिधेः।।२८।।

ज्योतिर्मयमनिर्देश्यं योगिनामात्मनि स्थितम्।
कथं विज्ञायते लोके महागुरुदयां विना।।२९।।

ब्रह्मणा विष्णुना पूर्वं यल्लिङ्गं ज्योतिरात्मकम्।
अपरिच्छेद्यमभवत् केन वा परिचोद्यते।।३०।।

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
योगिनो यत्र लीयन्ते मुक्तपाशनिबन्धनाः।।३१।।

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात्परः शिवः।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते।।३२।।

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयः शौनकादयः।
शिवलिङ्गार्चनादेव स्वं स्वं पदमवाप्नुयुः।।३३।।

ता ते जस सिवभगती करई। तैंसइ भगति गुरू मँह धरई।।
गुरुहि महातम कौ बल पाई। अपनहु ग्यान मते अधिकाई।।
एहि ते लिंग महातम ग्यानी। सबु ते अधिक सरोतर मानी।।
गुरु जबु भगत प्रबोधित कीन्हा। सिव कै बोध लिंग तबु चीन्हा।।
उहै लिंग सब कारन रूपा। जानिअ सांकर लिंग सरूपा।।

दोहा - **परम पवित्र बिसुद्ध अति लिंग सनातन ब्रम्ह।**
सदानन्द स्वाधीन चित सिव सरूप अघ जम्ह।।297।।

चौपाई - कारन सबुहि लोक करि भावा। जेहि कारन बेदहु जगु आवा।।
सबुहि तत्व कै पूरन माना। जनम जलधि तारन दिढ जाना।।
परम प्रकासक आपु प्रकासू। इदमित्थं कहि जाइ न जासू।।
जोगी जिन्ह कर ध्यान लगाहीं। सो सिव जोगिन्ह अन्तर माँहीं।।
कइसे जग मँह संभु जनाई। दया करइ गुरु देइ लखाई।।
ब्रम्हा बिस्नु सकल दिसि धावा। जोतिलिंग कै पार न पावा।।
पूरब कथा प्रसंग मनीसा। आदि अंत कोउ पाव न ईसा।।
थके देव पर सके न जाना। पुनि तेहि कवन जान परिमाना।।

दोहा - **बहुत बड़ाई का करौं नहिं अस कीन्हे लाभ।**
लिंग सनातन ब्रम्ह पुनि जस नरियर मँह डाभ।।298।।
जानि अनन्त अनादि सिव रहहिं जोगिजन ध्याय।
पासबंध निरमुकुत होइ तेहि मँह जाहिं समाय।।299।।

चौपाई - अरघा परम सक्ति कहि जाई। सिव परतच्छ लिंग मुनिराई।।
समाजोग सिवसक्ति अनूपा। बिस्वलिंग कहि जाइ सरूपा।।
ब्रम्हा आदि सकल सुर राया। सौनकादि मुनि ग्यान निकाया।।
सिवलिंगार्चन करि सबु काहू। कीन्हेउ तँह निज निज पद लाहू।।
इहाँ रचिउ नहिं संसय आना। बिस्वाधिप परमेस सुजाना।।
सिद्ध सुभाउज भाउ सरूपा। लिंग मूर्ति कँह अमल अनूपा।।

विश्वाधिपत्वमीशस्य लिङ्गमूर्तेः स्वभावजम्।
अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी।।३४।।

गुरुशिष्यसमारूढलिङ्गमाहात्म्यसम्पदः ।
सर्वं चिद्रूपविज्ञानाज्जङ्गमाधिक्यमुच्यते।।३५।।

जानन्त्यतिशयाद् ये तु शिवं विश्वप्रकाशकम्।
स्वस्वरूपतया ते तु जङ्गमा इति कीर्तिताः।।३६।।

ये पश्यन्ति जगज्जालं चिद्रूपं शिवयोगतः।
निर्धूतमलसंस्पर्शास्ते स्मृताः शिवयोगिनः।।३७।।

घोरसंसारतिमिरपरिध्वंसनकारणम्।
येषामस्ति शिवज्ञानं ते मताः शिवयोगिनः।।३८।।

जितकामा जितक्रोधा मोहग्रन्थिविभेदिनः।
समलोष्टाश्मकनकाः साधवः शिवयोगिनः।।३९।।

समौ शत्रौ च मित्रे च साक्षात्कृतशिवात्मकाः।
निस्पृहा निरहंङ्कारा वर्तन्ते शिवयोगिनः।।४०।।

दुर्लभं हि शिवज्ञानं दुर्लभं शिवचिन्तनम्।
येषामेतद्द्वयं चास्ति ते हि साक्षाच्छिवात्मकाः।।४१।।

पादाग्ररेणवो यत्र पतन्ति शिवयोगिनाम्।
तदेव सदनं पुण्यं पावनं गृहमेधिनाम्।।४२।।

एहि सम नहिं कोउ जगत नियंता। बेद सास्त्र सबु फुरइ भनन्ता।।

दोहा - **लिंग महातम संपदा गुरहि सिष्य बिच बाढ़।**
तेहि ते चित बिग्यान जुत जंगम महिमा गाढ़।।300।।

चौपाई - बिस्व प्रकासक सिव जे जानहिं। अतिसय हेरि हरहि पहिचानहिं।।
पुनि तस आतम रूप बनावहिं। ते जन जंगम लिंग कहावहिं।।
जे सिवजोग दृष्टिगत कीन्हा। जगत जाल चिदरूपहि चीन्हा।।
जेहि मँह मलहु छुआती नाहीं। ते जन सिवजोगी कहि जाहीं।।
जेहि उर बसइ परम सिवग्याना। घोर तिमिर भव रूप नसाना।।
सैव सास्त्र तेहि अति सन्मानी। सिवजोगी कहि जाइ सो ग्यानी।।
अति बिसिष्ट सिवजोगी होई। धन्न भाग जो जानै सोई।।

दोहा - **काम क्रोध अति प्रबल अरि जितै ताहि जो बीर।**
मोह पास कँह गाँठि पुनि करै टूक गंभीर।।301।।
जस माटी तस पाहनउ तैसइ सोना हीर।
लोभ नाग जेहि नहिं डँसइ सो सिवजोगी धीर।।302।।

चौपाई - सत्रु मित्र जेहि एक समाना। सिव साक्षात मिलेउ ब्रत ठाना।।
सिव संकल्पमना जे आही। जेहि भौतिक जगु कछु नहिं चाही।।
जो निस्पृह अरु निरहंकारा। सरल सहज जेहि कर ब्यवहारा।।
जो न भयउ कबहूँ भवरोगी। सोइ कहावत हौ सिव जोगी।।
अति दुरलभ जानहु सिवग्याना। ताते पुनि दुर्लभ सिवध्याना।।
ई दुनहुँ जिन्ह कीन्ह सुपासा। तेहि अन्तर सिव करहिं निवासा।।

दोहा - **सिव जोगिन्ह कै चरन रज जहाँ परइ जिसु गेह।**
सदन सो पुन्य गिरहस्थ कै पावन बरसै नेह।।303।।

चौपाई - जो सिव जोगी दरसन पावै। तेहि दिग सकल सिद्धि चलि आवै।।
जेहि सिव जोगी परस सुहाई। अमित पाप तेहि छनहि नसाई।।

सर्वसिद्धिकरं पुंसां दर्शनं शिवयोगिनाम्।
स्पर्शनं पापशमनं पूजनं मुक्तिसाधनम्।।४३।।

महतां शिवतात्पर्यवेदिनामनुमोदिनाम्।
किं वा फलं न सिद्ध्येत सम्पर्काच्छिवयोगिनाम्।।४४।।

गुरोर्लिङ्गस्य माहात्म्यकथनाच्छिवयोगिनाम्।
सिद्धं भक्तस्य माहात्म्यं तथाप्येष प्रशस्यते।।४५।।

ये भजन्ति महादेवं परमात्मानमव्ययम्।
कर्मणा मनसा वाचा ते भक्ता इति कीर्तिताः।।४५।।

दुर्लभा हि शिवे भक्तिः संसारभयतारिणी।
सा यत्र वर्तते साक्षात् स भक्तः परिगीयते।।४७।।

किं वेदैः किं ततः शास्त्रैः किं यज्ञैः किं तपोव्रतैः।
नास्ति चेच्छाङ्करी भक्तिर्देहिनां जन्मरोगिणाम्।।४८।।

शिवभक्तिविहीनस्य सुकृतं चापि निष्फलम्।
विपरीतफलं च स्याद् दक्षस्यापि महाध्वरे।।४९।।

अत्यन्तपापकर्मापि शिवभक्त्या विशुद्ध्यति।
चण्डो यथा पुरा भक्त्या पितृहाऽपि शिवोऽभवत्।।५०।।

सुकृतं दृष्कृतं वापि शिवभक्तस्य नास्ति हि।
शिवभक्तिविहीनानां कर्मपाशनिबन्धनम्।।५१।।

जो सिव जोगिहि पूजन करई। मुकुत होइ भव बन्ध न परई।।
सिव रहस्य ग्याता बिग्यानी। सिव सरूप सुख रमन अमानी।।
अति महान सिवजोगी होई। तेहि संपरक सकल सिधि होई।।
का न मिलइ सिव कृपा बिलासा। पूरन होइ अखिल अभिलाषा।।

दोहा - गुरु सिव जोगी लिंग कँह महिमा किए बखान।
भगत महातम सिद्ध भा पुनरपि लीजिअ जान॥304॥

चौपाई - परमात्मा अब्यय अबिनासी। महादेव नित भजहिं उदासी।।
मन बानी अरु करम सहाई। महादेव जे भजहिं सुहाई।।
ते सिव भगत बिदित जग माँहीं। देखि देखि सबु देव सिहाहीं।।
जग दुरलभ सिव भगति पुनीता। भव भय तारन करइ सुभीता।।
सोइ भगति जाके उर आई। लच्छन सबु परतच्छ लखाई।।
सो सिव भगत न संसय कोई। नित प्रसाद जुत सोक बिगोई।।

दोहा - यहु संसार असार पुनि भगति एक बस सार।
सोउ भगति जदि संभु मँह होइ जगत निस्तार॥305॥

चौपाई - बेद सास्त्र सों बनी न बाता। जग्य बरत तप निष्फल ताता।।
जौं सिव भगति न उर मँह आनी। भवरोगिन्ह गति जाइ न जानी।।
जे मानुस सिव भगति बिहीना। तासु पुन्य निहिचय फल हीना।।
देखहु दच्छ प्रजेस प्रतापी। सोउ सिव बिमुख भयउ संतापी।।
महाजग्य भरि दर्प रचावा। निज दुष्करम बिसम फलु पावा।।
दुरगति लह सिव भगति बिहीना। जग्य बिधंस संभु गन कीना।।
सो सबु कथा सकल जग जाना। अन्त दच्छ कँह बिपति निधाना।।
जो अति पाप करम कर कोई। सोउ सिवभगति सों पावन होई।।

दोहा - चण्ड चण्डकरमा परम पितहि बधेउ बरिआइ।
पुनि अपनायउ सिव भगति जो तेहि सिवहि बनाइ॥306॥

चौपाई - पाप पुन्य सिव भगत समाना। करमलेस तेहि छुअत न आना।।
जे सिवभगति बिमुख नर मंदा। बाँधइ तेहि करम कै फंदा।।

शिवाश्रितानां जन्तूनां कर्मणा नास्ति सङ्गमः।
वाजिनां दिननाथस्य कथं तिमिरजं भयम्।।५२।।

निरोद्धुं न क्षमं कर्म शिवभक्तान् विशृङ्खलान्।
कथं मत्तगजान् रुन्धेच्छृङ्खला बिसतन्तुजा।।५३।।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा शूद्र एव वा।
अन्त्यजो वा शिवे भक्तः शिववन्मान्य एव सः।।५४।।

शुद्धा नियमसंयुक्ताः शिवार्पितफलागमाः।
अर्चयन्ति शिवं लोके विज्ञेयास्ते गणेश्वराः।।५६।।

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यबोधान्वेषणसङ्गतः।
सर्वात्मना शिवापत्तिः शरणस्थानमुच्यते।।५७।।

ब्रह्मादिविबुधान् सर्वान् मुक्त्वा प्राकृतवैभवान्।
प्रपद्यते शिवं यत्तु शरणं तदुदाहृतम्।।५८।।

शरण्यः सर्वभूतानां शङ्करः शशिशेखरः।
सर्वात्मना प्रपन्नस्तं शरणागत उच्यते।।५९।।

विमुक्तभोगलालस्यो देवतान्तरनिस्पृहः।
शिवमभ्यर्थयन् मोक्षं शरणार्थीति गीयते।।६०।।

ये प्रपन्ना महादेवं मनोवाक्कायकर्मभिः।
तेषां तु कर्मजातेन किं वा देवादितर्पणैः।।६१।।

सिव भरोस जे रहहिं सदाई। करम रहइ तेहि जीव बिहाई।।
नहिं सिव भगत लहहिं फल भोगा। सिव भगतहि न ब्याप भवरोगा।।
कहहु कि कबहुँ तिमिर भय होई। जे दिनकर रथ धावहिं ढोई।।
रबि प्रकास घन अंध हेराहीं। सैव भगत सों करम डेराहीं।।

दोहा - **सैव भगत बंधन रहित करम न डारहिं फंद।**
बाँधि सकहिं बिसतंतु कस कबहुँ कि मत्त गयंद॥307॥

चौपाई - सूद्र होउ वा बिप्र कुलीना। खत्तिअ अथवा बनिज प्रबीना।।
अन्त्यज अथवा कोउ होउ मनई। जदि सिव भगति सदा उर धरई।।
सो सबु सिव सम संसय नाहीं। सबु आदर भाजन कहि जाहीं।।
जेहि मँह सिव कै भगति समाई। सैव सरन जाकी परिछाई।।
तेहि मँह भेद करिअ नहिं ताता। जाति कलपना केतिक बाता।।
अगिनि जराइ करइ जिन्ह छारा। तिन्ह इंधन मँह कवन बिचारा।।

दोहा - **दीच्छा सों परिसुद्ध नित संजम नियम समेत।**
अर्चन ते जो फल लहै सिव अर्पित बिनु हेत॥308॥
अइसे जन इहलोकु मँह अर्चहिं सिव निहकाम।
ताहि गनेस्वर जानिअत बसहिं सदा सिवधाम॥309॥

चौपाई - गुरु लिंगादि महातम ग्याना। सतत खोजि कर सरबस जाना।।
सहित ग्यान सिव सरन जवाई। पुन्य सरन थल सो कहि जाई।।
ब्रम्हा बिस्नु आदि सुर जेते। सहित प्रकृति बैभव तजि ते ते।।
जे आवइ महेस सरनाई। सैव मते सो सरन कहाई।।
महादेव ससिमौलि सुहावा। देहिं अभय जो सरनहिं आवा।।
जीव सरन जावै सबु भाँती। सरनागत गति तासु कहाती।।

दोहा - **भोगलालसा रहित जो इतरदेव नहिं प्रीति।**
सिव सों माँगत मुकुति नर आरत भव कँह भीति॥310॥

चौपाई - सरनारथी सो जीव कहावा। सिव कृपालु निज धाम पठावा।।
जे सुचि मनहिं बचन अरु करमा। सिव सरनागत होंहिं सुधरमा।।
तिन्ह जागादि करम का कीन्हें। देव पितर तरपन जल दीन्हें।।

सर्वेषामपि यज्ञानां क्षयः स्वर्गः फलायते।
अक्षयं फलमाप्नोति प्रपन्नः परमेश्वरम्।।६२।।

प्रपन्नपारिजातस्य भवस्य परमात्मनः।
प्रपत्त्या किं न जायेत पापिनामपि देहिनाम्।।६३।।

प्रपन्नानां महादेवं परिपक्वान्तरात्मनाम्।
जन्मैव जन्म नान्येषां वृथा जननसङ्गिनाम्।।६४।।

दुर्लभं मानुषं प्राप्य जननं ज्ञानसाधनम्।
ये न जानन्ति देवेशं तेषामात्मा निरर्थकः।।६५।।

तत्कुलं हि सदा शुद्धं सफलं तस्य जीवितम्।
यस्य चित्तं शिवे साक्षाद् विलीनमबहिर्मुखम्।।६६।।

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यविशेषानुभवस्थितिः।
यस्माच्छिवप्रसादात् स्यात्तदस्य महिमोच्यते।।६७।।

सदा लिङ्गैकनिष्ठानां गुरुपूजानुषङ्गिणाम्।
प्रपन्नानां विशुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।।६८।।

प्रसादोऽपि महेशस्य दुर्लभः परिकीर्त्यते।
घोरसंसारसन्तापनिवृत्तिर्येन जायते।।६९।।

यज्ञास्तपांसि मन्त्राणां जपश्चिन्ता प्रबोधनम्।
प्रसादार्थं महेशस्य कीर्तितानि न संशयः।।७०।।

सरग कामु सबु जग्य कराहीं। तेहि फल जीव सरग पद जाहीं।।
जथा जग्य फल संचित गोई। भोग किए तस खीनहु होई।।
जग्य सरग फल नित छयसीला। पुनि आवइ नर करि सुरलीला।।
जो परमेस्वर सरनहि गहई। पाइ अछय फल निरभय रहई।।
संभु कलपतरु ताहि समाना। जाइ सरन सिव जो तजि माना।।

दोहा - **पापिहु होइ प्रपन्न जौ आरत सिव पद कंजु।**
का न मिलइ तेहि जीव कौ सकल अजाचित मंजु॥311॥

चौपाई - सुद्ध हृदय अति निहछल भावा। जो महेस कँह सरनहि आवा।।
तेहि कर जनम जनम कहि जाई। अउर जनम नर बृथा गँवाई।।
साधन भूत ग्यान कँह द्वारा। दुरलभ पाइ जनम संसारा।।
जे नर नहिं जानहिं देवेसा। जनम अकारथ भवन कलेसा।।
धन्न धन्न कुल बंस बड़ाई। सो कुटुंब अति सुद्ध कहाई।।
जनम सुआरथ तेहि नर माना। जीवन सफल अचिन्त प्रमाना।।

दोहा - **चित्त जासु साच्छात नित सिव सरूप मँह लीन।**
अनत देव रति करन कहुँ नहिं बाहेरमुँह कीन॥312॥

चौपाई - सिव प्रसाद कारन अनुभूता। गुरु लिंगादि महातम पूता।।
सिव प्रसाद कँह महिमा सोई। एहि अमान्य करि सकै न कोई।।
करि निष्ठा लिंगाश्रय रहहीं। गुरुपूजा तत्पर अनुसरहीं।।
सिव सरनागत परम बिसुद्धा। तेहि पर रुद्र कबहुँ नहिं क्रुद्धा।।
सैव सुपंथ भगति रुचि आनी। सदा प्रसन्न महेस भवानी।।
सिव प्रसाद दुर्लभ कहि जाई। जेहि ते भव संताप नसाई।।

दोहा - **प्रबल जगत परिताप त्रय जेहि बिनु होइ न नास।**
सो प्रसन्नता संभु कै नहिं बिनु कठिन प्रयास॥313॥

चौपाई - सिव सेवा लगि नर तनु पाई। करु प्रसन्न तेहि कोटि उपाई।।
तिन्हहिं प्रसादन साधन नाना। बेद सास्त्र सबु भूरि बखाना।।
मंत्र जाप तप जग्य बिधाना। चिंतन ध्यान प्रबोधन ग्याना।।
एहि सबु सों प्रसन्न सिव होऊ। इहाँ करउ नहिं संसय कोऊ।।

प्रसादमूला सर्वेषां भक्तिरव्यभिचारिणी।
शिवप्रसादहीनस्य भक्तिश्चापि न सिद्ध्यति।।७१।।

गर्भस्थो जायमानो वा जातो वा ब्राह्मणोऽथवा।
अन्त्यजो वापि मुच्येत प्रसादे सति शाङ्करे।।७२।।

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे स्वस्वस्थाननिवासिनः।
नित्यसिद्धा भवन्त्येव प्रसादात् पारमेश्वरात्।।७३।।

प्रसादे शाम्भवे सिद्धे परमानन्दकारणे।
सर्वं शिवमयं विश्वं दृश्यते नात्र संशयः।।७४।।

संसारचक्रनिर्वाहनिमित्तं कर्म केवलम्।
प्रसादेन विना शम्भोर्न कस्यापि निवर्तते।।७५।।

बहुनात्र किमुक्तेन नास्ति नास्ति जगत्त्रये।
समानमधिकं चापि प्रसादस्य महेशितुः।।७६।।

शिवप्रसादे सति योगभाजि
सर्वं शिवैकात्मतया विभाति।
स्वकर्ममुक्तः शिवभावितात्मा
स प्राणलिङ्गीति निगद्यतेऽसौ।।७७।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिस्थले प्रसादिस्थलादिसप्तविधस्थलप्रसङ्गो नामैकादशः परिच्छेदः ।।११।।

जदि महेस परसन्न न होंहीं। भगति आपनी कबहुँ न देहीं।।
एक निष्ठ जो भगति कहाई। निहिचय सिव प्रसाद सो आई।।

दोहा - **सिव प्रसाद बिनु जगत मँह भगति न पावइ कोउ।**
जबुहि संभु किरिपा मिलै भगति सिद्ध तबु होउ।।314।।

चौपाई - गरभ रहै सिसु निज महतारी। अथवा प्रसव होउ अबिकारी।।
जनम लेइ नर जीवन धरई। बाभन होउ अन्त्यज वा मनई।।
जदि तेहि पै प्रसन्न सिव होई। मुकुत होइ संसय नहिं कोई।।
ब्रम्हा आदि सकल सुरजूथा। बसहिं थान निज सहित बरूथा।।
परमेस्वर प्रसाद बल भारी। नित्य सिद्ध तेहि करहिं पुरारी।।
परमानन्द सकल सुख मूला। संभु प्रसाद सिद्ध अनुकूला।।

दोहा - **परइ दिखाई बिस्व यहु सिवमय ओरहि छोर।**
सिद्ध भए सिव कृपा कँह संसय गयउ पछोर।।315।।

चौपाई - करम निमित्त मात्र कहलाई। जेहि संसार चक्क घुमराई।।
बिना करम कइसे निरबाहा। भवसागर कौ केतिक थाहा।।
काहू कऽ करम टरइ नहिं टारे। केवल संभु प्रसाद निबारे।।
बहुत कहौं का करौं बड़ाई। एहि ते कवन लाभु अधिकाई।।
एतना कहब बहुत करि जाना। नहि कछु संभु प्रसाद समाना।।
तीनउँ भुवन मध्य कछु नाहीं। सिव प्रसादु सों जे अधिकाहीं।।

छन्द - लहि संभु प्रसादा गत अवसादा बिगत मोह मद सूला।
सबु सिवमय भावा बिस्व बनावा सकल ताप दुःख भूला।।
जे सिवसंकल्पा रहित बिकल्पा करम बंध छुटि जाई।
तेहि कर सिव अंगी सो प्रानलिंगी प्रनत प्रपन्न कहाई।।

दोहा - **एहि बिधि बरनेउँ सैवमत थल प्रसादि कँह सात।**
कहत सुनत समुझत भगत करम मुकुत ह्वै जात।।316।।

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह ग्यारहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

द्वादशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

भक्तो माहेश्वरश्चेति प्रसादीति निबोधितः।
एक एव कथं चैव प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१।।

रेणुक उवाच —

भक्तो माहेश्वरश्चैष प्रसादीति च कीर्तितः।
कर्मप्राधान्ययोगेन ज्ञानयोगोऽस्य कथ्यते।।२।।

लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म तच्छक्तिः प्राणरूपिणी।
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।३।।

प्राणलिङ्गिस्थलं चैतत् पञ्चस्थलसमन्वितम्।
प्राणलिङ्गिस्थलं चादौ प्राणलिङ्गार्चनं ततः।।४।।

शिवयोगसमाधिश्च ततो लिङ्गनिजस्थलम्।
अङ्गलिङ्गिस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते।।५।।

प्राणापानसमाघातात् कन्दमध्याद्यदुत्थितम्।
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं प्राणापाननिरोधिभिः।।६।।

प्राणो यत्र लयं याति भास्करे तुहिनं यथा।
तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

बारहवाँ परिच्छेद

चौपाई - एतना सुनि बोलेउ मुनिराया। मो पर करहु गनेस्वर दाया।।
संका एकु चित्त मँह आई। गननायक मोंहि कहहु बुझाई।।
भगत माहेस्वर एकु कहावा। सोइ परसादी यहु समुझावा।।
पुनि सोइ प्रानलिंगि कहि जाई। कइसे एकहि कहहु सुझाई।।
रेनुक बोलेउ गिरा गँभीरा। सुनहु महा रिसि उर धरि धीरा।।
जोइ माहेस्वर सोइ प्रसादी। नहिं प्रसंगु यहु कतहुँ बिबादी।।
इहाँ न कोऊ अंतर राखा। करम प्रधान जोग सों भाखा।।

दोहा - करम जोग प्राधान्य ते ऊपर दूनहुँ नाउँ।
ग्यान जोग अबु सुनहु मुनि जेहि ते तीसर नाउँ।।317।।

चौपाई - लिंग चिदात्मक ब्रम्ह कहाई। सक्ति जासु पुनि प्रान रूपाई।।
रूप बिसेस लिंग जो जाना। प्रानलिंगि तेहि सास्त्र बखाना।।
प्रानलिंगि थल कहहिं सुजाना। इहाँ पाँच थल सामिल माना।।
पहिला प्रानलिंगि थल तत्पर। प्रानलिंग अरचन थल दूसर।।
तीसर कह सिवजोग समाधी। चउथा लिंग नैज थल साधी।।
पाँचवँ अंगलिंगि थल माना। एहि क्रम इन्ह कर भेद बखाना।।

दोहा - प्रानापान दुहूँ मिलि करहिं मध्य आघात।
तेहि कारन उठि कन्द ते जोति फुरइ आपात।।318।।

चौपाई - प्रानापान निरोध प्रवीना। जोगी जन महेस मँह लीना।।
अन्तरनयन जोति तेहि गहहीं। प्रानलिंग पुनि संग्या करहीं।।
पाला जस दिनकरहि समाई। परम ब्रम्हमय सिवलिंग आई।।

ज्ञानिनां योगयुक्तानामन्तः स्फुरति दीपवत्।
चिदाकारं परब्रह्मलिङ्गमज्ञैर्न भाव्यते।।८।।

अन्तःस्थितं परं लिङ्गं ज्योतीरूपं शिवात्मकम्।
विहाय बाह्यलिङ्गस्था विमूढा इति कीर्तिताः।।९।।

संविल्लिङ्गपरामर्शी बाह्यवस्तुपराङ्मुखः।
यः सदा वर्तते योगी प्राणलिङ्गी स उच्यते।।१०।।

मायाविकल्पजं विश्वं हेयं सञ्चिन्त्य नित्यशः।
चिदानन्दमये लिङ्गे विलीनः प्राणलिङ्गवान्।।११।।

सत्ता प्राणमयी शक्तिः सद्रूपं प्राणलिङ्गकम्।
तत्सामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१२।।

अन्तर्गतं चिदाकारं लिङ्गं शिवमयं परम्।
पूज्यते भावपुष्पैर्यत् प्राणलिङ्गार्चनं हि तत्।।१३।।

अन्तःपवनसंस्पृष्टे सुसूक्ष्माम्बरशोभिते।
मूर्धन्यचंद्रविगलत्सुधासेकातिशीतले ।।१४।।

बद्धेन्द्रियनवद्वारे बोधदीपे हृदालये।
पद्मपीठे समासीनं चिल्लिङ्गं शिवविग्रहम्।।
भावयित्वा सदाकालं पूजयेद् भाववस्तुभिः।।१५।।

जासु प्रान तँह सहज समाना। प्रानलिंग तेहि कहहिं सुजाना।।
प्रानलिंग धारन जो करई। प्रानलिंगि तेहि सबु जन कहई।।
बिना तेल दीया अरु बाती। प्रानलिंग दियना दिन राती।।

दोहा - फुरइ निरंतर जोगिजन ग्यानी गुहा प्रकास।
परब्रम्ह चिद्रूप सो मूरख नहिं आभास॥319॥

चौपाई - अंतर थित सो जोति सुहाई। परम लिंग सिवरूप बिहाई।।
बाह्य लिंग दिढ़ आस्था करहिं। ते अति मूढ़ सास्त्र सबु कहहीं।।
संबित् लिंग धरइ नित ध्याना। बाहिर बस्तु देइ नहिं काना।।
निसपरपंच करइ ब्यौहारा। प्रानलिंगि सो जोगि उदारा।।
माया कँह गुन भेद अपारा। तेहि ते प्रगट सकल संसारा।।
अइसन समुझि हेय तेहि ग्यानी। नित्य बिचार करइ जो प्रानी।।

दोहा - चिदानन्दमय लिंग मँह रहइ निरंतर लीन।
प्रानलिंगि तेहि जानिए जोगी परम प्रबीन॥320॥

चौपाई - सत्ता जो अस्तित्व समानी। प्रान मयी सो सक्ति बखानी।।
प्रानलिंग सो सिव सद्रूपा। अमल अनंत अखंड अनूपा।।
दुहुँ सुठि समरसता जो जानी। प्रानलिंगि सोई बिग्यानी।।
हिरदै पुण्डरीक सुभ साजा। तेहि मँह चिन्मय जोति बिराजा।।
प्रानलिंग सिवमय सोइ सोहा। बाह्य लिंग सबु कीन्ह अपोहा।।
भावकुसुम पूजै तेहि जोई। प्रानलिंग अरचन कह सोई।।

दोहा - प्रानवायु कर ब्यजन नित भाव सुरभि अनुकूल।
सोभित अंबर पट धरे अति तनु मृदुल दुकूल॥321॥
मौलिचन्द अमरित झरत होत सदा अभिसेक।
तुहिन किरन सीतल करत भूषन लसत अनेक॥322॥

चौपाई - इंद्रिन्ह सों नौ बन्हा दुआरा। बोध दिया हिरदै उजिआरा।।
पदुम पीठ तँह सोहइ कैसे। रतन दीप जगमग नभ जैसे।।
तेहि पर चिन्मय लिंग बिराजा। महाजोति जोतिन्ह कर राजा।।

क्षमाऽभिषेकसलिलं विवेको वस्त्रमुच्यते।
सत्यमाभरणं प्रोक्तं वैराग्यं पुष्पमालिका।।१६।।

गन्धः समाधिसम्पत्तिरक्षता निरहङ्कृतिः।
श्रद्धा धूपो महाज्ञानं जगद्भासि प्रदीपिका।।१७।।

भ्रान्तिमूलप्रपञ्चस्य निवेद्यं तन्निवेदनम्।
मौनं घण्टापरिस्पन्दस्ताम्बूलं विषयार्पणम्।।१८।।

विषयभ्रान्तिराहित्यं तत्प्रदक्षिणकल्पना।
बुद्धेस्तदात्मिका शक्तिर्नमस्कारक्रिया मता।।१९।।

एवंविधैर्भावशुद्धैरुपचारैरदूषितैः ।
प्रत्युन्मुखमना भूत्वा पूजयेल्लिङ्गमान्तरम्।।२०।।

अन्तःक्रियारतस्यास्य प्राणलिङ्गार्चनक्रमैः।
शिवात्मध्यानसम्पत्तिः समाधिरिति कथ्यते।।२१।।

सर्वतत्त्वोपरि गतं सच्चिानन्दभासुरम्।
स्वप्रकाशमनिर्देश्यमवाङ्मानसगोचरम्।।२२।।

उमाख्यया महाशक्त्या दीपितं चित्स्वरूपया।
हंसरूपं परात्मानं सोहंभावेन भावयेत्।।
तदेकतानतासिद्धिः समाधिः परमो मतः।।२३।।

सो सिव मूरति दिब्य अनूपा। कहि न सकहिं कबि कवनिउ रूपा।।
अस भावना करहिं सिव जोगी। सोचि न सकहिं कबहुँ भवरोगी।।
सुमिरि परम छबि ध्यान लगाई। भगत हृदय आवै अधिकाई।।

दोहा - **एहि बिधि नित करि भावना पूजइ लगन लगाइ।**
भावबस्तु सुचि सोधि कै अस्तुति माथ नवाइ।।323।।

चौपाई - छमा बिमल जल सों अभिसेका। बस्त्र रुचिर पुनि बनेउ बिबेका।।
आभूषन नित सत्य कहावा। पुहुपमाल बैराग्य बनावा।।
गंधद्रब्य संपत्ति समाधी। अच्छत निरहंकार सुसाधी।।
श्रद्धा धूप अनूप सुहावा। महाग्यान सुभ दीप जरावा।।
जो नित करै जगत उजियारा। अन्तःकरन प्रकास अपारा।।
मूल प्रपंचहि भरम निवेदन। सो सुस्वादु नैवेद्य समरपन।।
घंटानाद अउर अनुरनना। भगत मौन पूजा मँह बरना।।
जो मुखसुद्धि पूगफल पाना। बिसयार्पन कामादिक नाना।।

दोहा - **बिसयभरम कँह बारना लिंग प्रदच्छिन कल्प।**
बुद्धिलीनता लिंग मँह सबिधि प्रनाम अनल्प।।324।।

चौपाई - ए सबु भाव सुद्ध उपचारा। दूषनरहित अनेक प्रकारा।।
एहिबिधि गहि सबु पूजा साधन। अंतरमुख बनाइ आपन मन।।
पूजा करइ छाँड़ि आडम्बर। प्रानलिंग ज्योतिर्मय आन्तर।।
प्रानलिंग अरचन कँह करमा। आभ्यन्तर पूजा रत धरमा।।
आतमध्यान सिवात्मक सारा। मिलइ जो नित सम्पत्ति अपारा।।
सो समाधि सबु बिधि कहि जाई। प्रानलिंगि कै सदा सहाई।।
सबुहि परे जे तत्व छतीसा। सच्चिदादि भासुर जे ईसा।।
स्वयं प्रकास बिलच्छन धारा। मन बानी सीमा ते पारा।।

सोरठा - **उमा नाम बड़ सक्ति चित्स्वरूप जो कहि गई।**
करउ भगत अनुरक्ति जो दीपित ह्वै ताहि सों।।325।।

परब्रह्म महालिङ्गं प्राणो जीवः प्रकीर्तितः।
तदेकभावमननात् समाधिस्थः प्रकीर्तितः।।२४।।

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभावयेत्।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः।।२५।।

भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम्।
भावयेत्तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे।।२६।।

सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् तत्कैलासपदं विदुः।
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं सर्वकारणकारणम्।।२७।।

बहिर्वासनया विश्वं विकल्पार्थं प्रकाशते।
अन्तर्वासितचित्तानामात्मानन्दः प्रकाशते।।२८।।

आत्मारणिसमुत्थेन प्रमोदमथनात्सुधीः।
ज्ञानाग्निना दहेत्सर्वं पाशजालं जगन्मयम्।।२९।।

संसारविषवृक्षस्य पञ्चक्लेशपलाशिनः।
छेदने कर्ममूलस्य परशुः शिवभावना।।३०।।

अज्ञानराक्षसोन्मेषकारिणः संहृतात्मनः।
शिवध्यानं तु संसारतमसश्चण्डभास्करः।।३१।।

स्वान्तस्थशिवलिङ्गस्य प्रत्यक्षानुभवस्थितिः।
यस्यैव परलिङ्गस्य निजमित्युच्यते बुधैः।।३२।।

दोहा - हंसरूप परमातमा सोहं इति करि भाउ।
करै भावना ताहि सन निसिदिन थिरइ सुभाउ॥326॥
एकतानता सिद्ध करि बैठइ ध्यान लगाइ।
जोगी कँह थिति अचलु यहु परम समाधि कहाइ॥327॥

चौपाई - महालिंग परब्रम्ह कहावा। प्रान जीव मँह भेद न गावा।।
दूनहुँ एकु भाव जो माना। सो समाधि रत भगत सुजाना।।
जो साधक निज अन्तर भावइ। छह चक्रन पै पदुम सजावइ।।
मूलाधार भौंह बिच सोहैं। ब्रम्हा बिस्नु आदि तिन्ह रोहैं।।
भौंह बीच ऊपर थल पारा। करइ भावना कमल हजारा।।
तेहि भीतर ध्यावइ ससिमंडल। सीतल किरन मनोहर निरमल।।

दोहा - करै भावना छेद कँह तँह सूछम ससि बीच।
रंध्र बिन्दु कैलास पद लेत ध्यान जो खींच॥328॥
छिद्र बिन्दु कैलास पर संभु सदा आसीन।
जो कारन सबु कारनहु अस भावइ मतिलीन॥329॥

चौपाई - जे बाहेर बासना बिकासइ। तेहि बिकल्पजुत बिस्व प्रकासइ।।
अन्तर बासित चित्त लगाई। सिवानन्द मँह रहे लुभाई।।
सिवानन्द मंथन बुध करई। आतम अरनि निरन्तर मथई।।
तेहि ते ग्यान अगिनि प्रगटाई। जाल फंद भव देइ जराई।।
जगत जाल बिस बिरिछ समाना। पँच कलेस एहि पत्ता नाना।।
रागद्वेष अस्मिता अविद्या। अभिनिवेस पाँचहुँ नहिं हृद्या।।
करम मूल बिस बिरिछ कटाई। सिव भावना कुठार बनाई।।

दोहा - ढाँकि छिपावै आतमहि जो राच्छस अज्ञान।
आतुर ताहि बढ़ावन संसृति तमस महान॥330॥
ताहि निवारन हेतु अति प्रबल सतत सिवध्यान।
जो प्रचंड परतापजुत राजत सुरुज समान॥331॥

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।३३।।

चिदानन्दमयः साक्षच्छिव एव निरञ्जनः।
लिङ्गमित्युच्यते नान्यद् यतः स्याद्विश्वसंभवः।।३४।।

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गमित्युच्यते बुधैः।
शिवाभिदं परं ब्रह्म चिद्रूपं जगदास्पदम्।।३५।।

वेदान्तवाक्यजां विद्यां लिङ्गमाहुस्तथापरे।
तदसज्ज्ञेयरूपत्वाल्लिङ्गस्य ब्रह्मरूपिणः।।३६।।

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुर्जगतां मूलकारणम्।
लिङ्गी महेश्वरश्चेति मतमेतदसङ्गतम्।।३७।।

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परत्मनि।।३८।।

ज्योतिर्मयं परं लिङ्गं श्रुतिराह शिवात्मकम्।
तस्य भासा सर्वमिदं प्रतिभाति न संशयः।।३९।।

लिङ्गान्नास्ति परं तत्त्वं यदस्माज्जायते जगत्।
यदेतद्रूपतां धत्ते यदत्र लयमश्नुते।।४०।।

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
निजरूपमिति ध्यानात् तदवस्था प्रजायते।।४१।।

चौपाई - निज अन्तर सिवलिंग जे रहई। अनुभव स्वयं सतत जे करई।।
स्वात्मरूप अनुभव परलिंगा। प्रानलिंग बुध कह निजलिंगा।।
ब्रम्हा बिस्नु आदि सबु देवा। बेदादिक सद्ग्रंथहु जे बा।।
लीन भये जेहि मँह उपजाए। उहै लिंग बसि ब्रम्ह कहाये।।
चित् आनन्दस्वरूप निरंजन। सिव साच्छात् लिंग भवभंजन।।
सिवहि ब्रम्ह कोउ दूसर नाहीं। उपजै बिस्व लीन एहि माँही।।

दोहा - बहुत कहौं का इहाँ पुनि लिंग कहहिं बुध तेहि।
जो चिद्रूप सिवात्मक पर ब्रम्ह जग ठेहि।।332।।

चौपाई - अहइँ जे सैवेतर मतवादी। कहहिं बचन अस इहाँ प्रमादी।।
महावाक्य जे चार कहाहीं। बिसद प्रसिद्ध उपनिषद् माहीं।।
तिन्ह ते बोध होइ जो ज्ञाना। सोई लिंग बेदान्ती माना।।
पर तिन्ह कथन असङ्गत होई। ब्रम्ह तहाँ मन बानी गोई।।
इहाँ ब्रम्ह जो लिंग सरूपा। ग्येय सदा प्रत्यच्छ निरूपा।।
एहि बिधि ब्रम्ह अगोचर नाहीं। लिंग ब्रम्ह भ्रम भेद नसाहीं।।

दोहा - मूल हेतु संसार कँह लिंग एक अव्यक्त।
लिंगी नाम महेस्वर कहहिं ते ग्यानि असक्त।।333।।

चौपाई - मत यहु सदा असंगत होई। जड़ पुनि प्रकृति जान सबु कोई।।
सक्ति महेस्वर चेतन रूपा। सत्य सैव सिद्धान्त निरूपा।।
महालिंग जबु द्योतित होई। भुवन तमस सबु आपु बिगोई।।
नहिं तँह सूरज चंद प्रकासा। तारा अगिनि न तड़ित बिकासा।।
ज्योतिर्मय परलिंग कहावा। सोपि सिवात्मक अस श्रुति गावा।।
तेहि कँह दुति द्योतित संसारा। एहि मँह नहिं संदेह कबारा।।

दोहा - लिंग समान न बढ़ि कहूँ दूसर तत्व कि होउ।
एहि ते जग उद्भव सकल रूप धरइ लय सोउ।।334।।

चौपाई - एहि कारन सत चित आनन्दा। ब्रम्ह होइ परलिंग अमन्दा।।

ज्ञानमङ्गमिति प्राहुर्ज्ञेयं लिङ्गं सनातनम्।
विद्यते तद्द्वयं यस्य सोऽङ्गलिङ्गीति कीर्तितः।।४२।।

अङ्गे लिङ्गं समारूढं लिङ्गे चाङ्गमुपस्थितम्।
एतदस्ति द्वयं यस्य स भवेदङ्गलिङ्गवान्।।४३।।

ज्ञात्वा यः सततं लिङ्गं स्वान्तःस्थं ज्योतिरात्मकम्।
पूजयेद्भावयन्नित्यं तं विद्यादङ्गलिङ्गिनम्।।४४।।

ज्ञायते लिङ्गमेवैकं सर्वैः शास्त्रैः सनातनैः।
ब्रह्मेति विश्वधामेति विमुक्तेः पदमित्यपि।।४५।।

मुक्तिरूपमिदं लिङ्गमिति यस्य मनःस्थितिः।
स मुक्तो देहयोगेऽपि स ज्ञानी स महागुरुः।।४६।।

अनादिनिधनं लिङ्गं कारणं जगतामिह।
ये न जानन्ति ते मूढा मोक्षमार्गबहिष्कृताः।।४७।।

यः प्राणलिङ्गार्चनभावपूर्वैर्धर्मैरुपेतः शिवभावितात्मा।
स एव तुर्यः परिकीर्तितोऽसौ संविद्विपाकाच्छरणाभिधानः।।४८।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
प्राणलिङ्गिस्थले प्राणलिङ्गिस्थलादिपञ्चविधस्थलप्रसङ्गो
नाम द्वादशः परिच्छेदः ।।१२।।

'सोइ निज रूप' ध्यान नित धरई। निजलिंगावस्था अनुसरई।।
ग्यानहिं आपनु अंग बनावा। ग्येय सनातन लिंग कहावा।।
एहि दूनउँ जानइ जे मनई। अंगलिंगि तेहि कँह सबु कहई।।
अंगहि लिंग लिंग मँह अंगा। जेहि कै होइ यहु ग्यान अभंगा।।
बीजांकुर निभ ग्यान जो पावै। अंगलिंग जुत सो हरषावै।।
सास्त्र महागुरु अनुभवद्वारा। जो नर निज अन्तर पैठारा।।
तँह ज्योतिर्मय लिंग निहारी। पूजइ करइ भावना भारी।।

दोहा - अंगिलिंगि श्रद्धा सहित तेहि कहैं सबु लोग।
परम सिद्ध सो सिव भगत करइ सुफल सबु भोग।।335।।

चौपाई - सकल सनातन सास्त्र सयाने। एकहि लिंग बिबिध बिधि माने।।
कोउ कह ब्रम्ह सच्चिदानन्दा। बिस्वधाम कोउ कहइ अमन्दा।।
कोउ कह परम मुकुति पद एहा। जेहि जस भावइ सहित सनेहा।।
मुकुतिसरूप लिंग यहु माना। अनुभव सहित दिढ़इ अनुमाना।।
जो यहु समुझइ धरे सरीरा। तेहि मुकुत मानहिं मतिधीरा।।
सोइ बड़ ग्यानी सतत सुजाना। महागुरू संजुत बिग्याना।।

दोहा - लिंग हेतु संसार कँह आदि अंत ते हीन।
मूढ़ जे अस नहिं जानहीं मोच्छ पंथ बहि खीन।।336।।

छन्द - जो भाव बनावा अरचि सुहावा प्रान लिंग नित पूजा।
अस धरम समेता भवभय जेता आतम सिव नहिं दूजा।।
जो नित अस भावइ तुरिअ कहावइ सगरों तासु बड़ाई।
संवित् परिपाका धरम पताका सो थल सरन कहाई।।

दोहा - प्रानलिंगि थल पाँचहूँ कहेउ इहाँ समुझाइ।
अन्त ग्यानपरिपाक ते थल सो सरन कहाइ।।337।।

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह बारहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

त्रयोदशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

माहेश्वरः प्रसादीति प्राणलिङ्गीति बोधितः।
कथमेष समादिष्टः पुनः शरणसंज्ञकः।।१।।

रेणुक उवाच —

अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः सती ज्ञेयः शिवः पतिः।
यत्सौख्यं तत्समावेशे तद्वान् शरणनामवान्।।२।।

स्थलमेतत्समाख्यातं चतुर्धा धर्मभेदतः।
आदौ शरणमाख्यातं ततस्तामसवर्जनम्।।३।।

ततो निर्देशमुद्दिष्टं शीलसम्पादनं ततः।
क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि निशाम्यताम्।।४।।

सतीव रमणे यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन्।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान्।।५।।

परिज्ञाते शिवे साक्षात् को वाऽन्यमभिकाङ्क्षति।
निधाने महति प्रप्ते कः काचं याचतेऽन्यतः।।६।।

शिवानन्दं समासाद्य को वाऽन्यमुपतिष्ठते।
गङ्गामृतं परित्यज्य कः काङ्क्षेन्मृगतृष्णिकाम्।।७।।

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

तेरहवाँ परिच्छेद

चौपाई - प्रानलिंगि थल पाँचहु सुनेऊ। पुनि घटजोनि बचनु यहु कहेऊ।।
प्रानलिंगि माहेस्वर होई। सोइ परसादी कहु सबु कोई।।
ई दूनहुँ सरूप मोंहि भावा। सहित सनेहु आपु समझावा।।
केहि कारन सो सरन कहाई। रेनुक कहहु मोहिं समुझाई।।
तब रेनुक मन महुँ मुसकाना। रिसि अगस्ति चाहत सबु जाना।।
बोलेउ प्रगट सुधासम बानी। सुनहु महामुनि आतमग्यानी।।
सती अंगलिंगी सुभ ग्याना। तासु पती सिव ग्येय बखाना।।

दोहा - दूनहुँ मिलि समरस भये सौख्य परम जो होय।
अनुभव करै जो ताहि कौ सोइ सरन थल होय॥338॥

चौपाई - धरम भेद थल चार प्रकारा। बुधजन कहहिं सास्त्र अनुसारा।।
पहिल सरल पुनि तामस निरसन। पुनि निरदेस सील संपादन।।
लच्छन कहउँ जथाक्रम एहा। सुनिअ मुनीस जाइ संदेहा।।
पतिब्रता निज पति अनुसरई। तेहि मँह प्रीति भाव जस करई।।
तस जो प्रीति करइ सिव पाहीं। स्वयं सक्ति बनि कै मन माँहीं।।
अन्य देवता चित्त न धरई। बुध जन सरनवान तेहि कहई।।
सिव जेहि नित परतच्छ लखाई। सो कस आन देव ललचाई।।
जो पायो भरपूर खजाना। सो क्यों माँगे काँच कँचाना।।

संसारतिमिरच्छेदे विना शङ्करभास्करम्।
प्रभवन्ति कथं देवाः खद्योता इव देहिनाम्।।८।।

संसारार्तः शिवं यायाद् ब्रह्माद्यैः किं फलं सुरैः।
चकोरस्तृषितः पश्येच्चन्द्रं किं तारका अपि।।९।।

शिव एव समस्तानां शरण्यः शरणार्थिनाम्।
संसारोरगदष्टानां सर्वज्ञः सर्वदोषहा।।१०।।

शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते।
तदासक्तमना योगी नान्यत्र रमते सुधीः।।११।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं गतः।
तदनन्तसुखं प्राप्य मोदते नान्यचिन्तया।।१२।।

शिवासक्तपरानन्दमोदिना गुरुणा यतः।
निरस्यन्ते तमोभावाः स तामसनिरासकः।।१३।।

यस्य ज्ञानं तमोमिश्रं न तस्य गतिरिष्यते।
सत्त्वं हि ज्ञानयोगस्य नैर्मल्यं विदुरुत्तमाः।।१४।।

शमो दमो विवेकश्च वैराग्यं पूर्णभावना।
क्षान्तिः कारुण्यसम्पत्तिः श्रद्धा सत्यसमुद्भवा।।१५।।

दोहा - सिवानन्द कौ पाइ नर काहे अनत लुभाइ।
को चाहै मिगतृस्निका गंगामिरित बिहाइ॥339॥

चौपाई - जुगनू सरिस देव गन आहीं। तिन्ह बस भवतम छेदन नाहीं।।
प्रानिन्ह कर भव तिमिर बिनासा। को करि सक बिनु सिव रबि भासा।।
भवभय पीड़ित आरत प्रानी। संकर सरन जाउ हित मानी।।
ब्रम्हा आदि देव सरनाई। को फल लाभु न कछु समुझाई।।
चितव चकोर ससिहि जेहि भाँती। कबहुँ कि देखिअ तारक पाँती।।
सिव सर्वग्य दोसु सबु हन्ता। महादेव भरि भुवन नियन्ता।।

दोहा - एकहि संभु सरन्य तेहि डँसइ जेहि भव ब्याल।
जाहिं सरन संकर चरन किरपा पाइ निहाल॥340॥

चौपाई - पैदा होइ जबुहि सिवग्याना। परमानन्द प्रकास अमाना।।
तेहि मँह चित्त लगावइ जोगी। रमइ न अनत कहाइ न भोगी।।
तेहि ते बुध करि सकल प्रयासा। संकर सरन करहिं नित बासा।।
रह प्रसन्न सुख पाइ अनन्ता। आन देव कछु करइ न चिन्ता।।
सिव रति निरत अनन्द निधाना। जो गुरु लोक सास्त्र सन्माना।।
दूर करइ तम भाव अपारा। गुरु सोई तामस निस्तारा।।
तमस सबल जेहि कर श्रुत ग्याना। नहिं ताकर सद्गति निर्बाना।।
ग्यान जोग निरमलता हेतू। सत्व कहहिं सबु बुधजन केतू।।

दोहा - सम दम ध्यान अखंड नित बिसय विवेक विचार।
छमा सतत करुना विपुल श्रद्धा सत्य अधार॥341॥

शिवभक्तिः परो धर्मः शिवज्ञानस्य बान्धवाः।
एतैर्युक्तो महायोगी सत्त्विकः परिकीर्तितः।।१६।।

कामक्रोधमहामोहमदमात्सर्यवारणाः ।
शिवज्ञानमृगेन्द्रस्य कथं तिष्ठन्ति सन्निधौ।।१७।।

यत्र कुत्रापि वा द्वेष्टि प्रपञ्चे शिवरूपिणि।
शिवद्वेषी स विज्ञेयो रजसाविष्टमानसः।।१८।।

यो द्वेष्टि सकलान् लोकान् यो वाऽहङ्कुरुते सदा।
योऽसत्यभावानायुक्तः स तामस इति स्मृतः।।१९।।

तमोमूला हि सञ्जाता रागद्वेषादिपादपाः।
शिवज्ञानकुठारेण छेद्यन्ते हि निरन्तरम्।।२०।।

शिवज्ञाने समुत्पन्ने सहस्रादित्यसन्निभे।
कुतस्तमोविकाराः स्युर्महतां शिवयोगिनाम्।।२१।।

निराकृत्य तमोभागं संसारस्य प्रवर्तकम्।
निर्दिश्यते तु यज्ज्ञानं स निर्देश इति स्मृतः।।२२।।

गुरुदेव परं तत्त्वं प्रकाशयति देहिनाम्।
को वा सूर्यं विना लोके तमसो विनिवर्तकः।।२३।।

परम धरम सिव भगति पुनि ए साधन सिवग्यान।
महाजोगि इन दस गुनन परथित सत्व निधान॥342॥

चौपाई - काम कोह मद मोह अपारा। इरिषा डाह हस्ति परिवारा।।
इन्ह कर कतहुँ गन्ध नहिं होई। जँह सिवग्यान सिंह रह कोई।।
जँह सिवरूप प्रपंच देखाई। तँह कोउ द्वेष करइ हठि धाई।।
तेहि कर चित्त रजोगुन साना। सो सिव द्वेषी अधम कहाना।।
सबु लोगन्ह ते द्वेष जे करई। अहंकारबिष नित फुफकरई।।
जाहि झूठ अति लगइ पिआरा। तेहि जानहु तामस अन्हिआरा।।

दोहा - राग द्वेष आदिक बिरिछ तम सों उग चहुँ ओर।
कहहिं सदा सिवग्यान ते जो कुठार अति घोर॥343॥

चौपाई - जबु उतपन्न होइ सिवग्याना। जोति सहस मारतंड समाना।।
तबु सिवजोगि महा जे अहईं। तम बिकार तिन्ह कर कँह रहई।।
जेहि ते यहु संसार छछाई। प्रगट होइ पुनि आपु नसाई।।
सो तम मूल बिदित संसारा। करि तम भाग निराकृत सारा।।
पुनि निर्दिष्ट होइ जो ग्याना। बुध कह तेहि निर्देस सुजाना।।
परमतत्व ग्यानी गुरु होई। रहइ लोक चिंता मँह खोई।।
परम तत्व सो करइ प्रकासा। देइ ग्यान नर सहित हुलासा।।

दोहा - एहि असार संसार मँह गहन तिमिर चहुँ ओर।
सूरज बिनु कस तम कटै को जग करै अँजोर॥344॥

अन्तरेण गुरुं सिद्धं कथं संसारनिष्कृतिः।
निदानज्ञं विना वैद्यं किं वा रोगो निवर्तते।।२४।।

अज्ञानमलिनं चित्तदर्पणं यो विशोधयेत्।
प्रज्ञाविभूतियोगेन तमाहुर्गुरुसत्तमम्।।२५।।

अपरोक्षिततत्त्वस्य जीवन्मुक्तस्वभाविनः।
गुरोः कटाक्षे संसिद्धे को वा लोकेषु दुर्लभः।।२६।।

कैवल्यकल्पतरवो गुरवः करुणालयाः।
दुर्लभा हि जगत्यस्मिन् शिवाद्वैतपरायणाः।।२७।।

क्षीराब्धिरिव सिन्धूनां सुमेरुरिव भूभृताम्।
ग्रहाणामिव तिग्मांशुर्मणीनामिव कौस्तुभः।।२८।।

द्रुमाणामिव भद्रश्रीर्देवानामिव शङ्करः।
गुरुः शिवः परः श्लाघ्यो गुरूणां प्राकृतात्मनाम्।।२९।।

जिज्ञासा शिवतत्त्वस्य शीलमित्युच्यते बुधैः।
निर्देश्ययोगादार्याणां तद्वान् शीलीति कथ्यते।।३०।।

प्रपन्नार्तिहरे देवे परमात्मनि शङ्करे।
भावस्य स्थिरतायोगः शीलमित्युच्यते बुधैः।।३१।।

चौपाई - बिनु गुरु सिद्ध न जगत निकित्ती। जस बिनु बैद न रोग निवृत्ती।।
होइ निदान बैद के हाथे। भव छूटइ सद्गुरु के साथे।।
जो अज्ञानमलिन चितदर्पन। भसम लगाइ करइ नित घरसन।।
प्रग्या भसम सो निरमल करई। चित्तहु दर्पन बिसद चमकई।।
सो उत्तम गुरु सबु जग कहई। कीरति बिमल लोक तिहुँ लहई।।
तत्व लखइ परतच्छ दुरावा। जीवनमुकुत सुभाउ सुहावा।।
अस गुरु कृपा दृष्टि जे पाई। तेहि नहिं जग कछु दुर्लभताई।।

दोहा - देन मोच्छफल कलपतरु करुनासिंधु अपार।
सिवाद्वैत मँह लीन गुरु दुर्लभ एहि संसार॥345॥

चौपाई - छीरसिंधु सबु सागर माहीं। जस सुमेरु सबु भूधर माहीं।।
सबुइ ग्रहन मँह सुरुज समाना। कौस्तुभ जस बिच मनिगन नाना।।
सकल द्रुमन्ह मँह चंदन जइसे। सबु देवन्ह मँह संकर जइसे।।
तैइसइँ प्राकृत गुरुजन नाना। तँह सिवगुरु अति श्रेष्ठ बखाना।।
उत्तम गुरु उपदेस लगाई। होइ सतत सिवतत्व बड़ाई।।
सो सिवतत्व ग्यान अभिलाषा। बुधजन ताहि सील कहि राखा।।
जाके सील सतत संग रहई। अखिल लोक तेहि सीली कहई।।
अपर सील लच्छन बुध कहहीं। जे परमारथ रत नित अहहीं।।

दोहा - सरनागत आरति हरन सरन सुखद गलनील।
सिव मँह श्रद्धा भाव थिर अतिसय उत्तम सील॥346॥

चौपाई - सिव कँह एकमात्र बिज्ञाना। सिव कँह अचल निरन्तर ध्याना।।
सील सिवहि पावन उत्कंठा। सीलवान तँह निरत अकुंठा।।

शीलं शिवैकविज्ञानं शिवध्यानैकतानता।
शिवप्राप्तिसमुत्कण्ठा तद्योगी शीलवान् स्मृतः।।३२।।

शिवादन्यत्र विज्ञाने वैमुख्यं यस्य सुस्थिरम्।
तदासक्तमनोवृत्तिस्तमाहुः शीलभाजनम्।।३३।।

पतिव्रताया यच्छीलं पतिरागात् प्रशस्यते।
तथा शिवानुरागेण सुशीलोऽभक्त उच्यते।।३४।।

पतिं विना यथा स्त्रीणां सेवान्यस्य तु गर्हणा।
शिवं विना तथान्येषां सेवा निन्द्या कृतात्मनाम्।।३५।।

बहुनात्र किमुक्तेन शिवज्ञानैकनिष्ठता।
शीलमित्युच्यते सद्भिः शीलवांस्तत्परो मतः।।३६।।

शिवात्मबोधैकरतः स्थिराशयः शिवं प्रपन्नो जगतामधीशम्।
शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः शिवैक्यवानेष हि कथ्यते बुधैः।।३७।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ शरणस्थले शरणस्थलादिचतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम त्रयोदशः परिच्छेदः ।।१३।।

सिव ते अनत ग्यान नहिं चाही। थिर अस भाव सदा निर्बाही।।
मन कै बृत्ति सदा सिवसक्ता। भगति छाँड़ि नहिं कहुँ अनुरक्ता।।
सबु प्रपंचु ते बिरति दिढ़ाई। सो नर सीलवान कहि जाई।।
पतिबरता कँह सील सुहावा। पति अनुराग प्रसंसा पावा।।
तैंसइँ सिव अनुराग प्रभाऊ। नहिं सिवरतिहि सुसील बटाऊ।।
निज पति छाँड़ि सेव जो नारी। अन्य पुरुस अघ निन्दा भारी।।
तैसइ सिव तजि दूसर देवा। निन्दनीय जदि नर कर सेवा।।

दोहा - **बहुत कहे का लाभ इह एकनिष्ठ सिवग्यान।**
सील कहावै संत सों तत्पर सीली मान॥347॥

छन्द - केवल सिव बोधा जन अबिरोधा थिर आसय दिढ आना।
जो जगत नियन्ता पाप निहन्ता तेहि सिव सरन पयाना।।
निज सील बनावा साज सुहावा सिव प्रति प्रीति निहाई।
बुध सकल बिचारा सास्त्र दुआरा सो सिव एक कहाई।।

दोहा - **एकनिष्ठता ग्यान कँह सिव कै कह बुध लोग।**
जेहि जन मँह सो सील जुत तेहि न ब्याप भवरोग॥348॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह तेरहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ
श्रीसिद्धान्तशिखामणिः
चतुर्दशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

तामसत्यागसम्बन्धान्निर्देशाच्छीलतस्तथा।
शरणाख्यस्य भूयोऽस्य कथमैक्यनिरूपणम्।।१।।

रेणुक उवाच —

प्राणलिङ्गादियोगेन सुखातिशयमेयिवान्।
शरणाख्यः शिवेनैक्यभावनादैक्यवान् भवेत्।।२।।

ऐक्यस्थलमिदं प्रोक्तं चतुर्धा मुनिपुङ्गव।
ऐक्यमाचारसम्पत्तिरेकभाजनमेव च।।
सहभोजनमित्येषां क्रमाल्लक्षणमुच्यते।।३।।

विषयानन्दकणिकानिःस्पृहो निर्मलाशयः।
शिवानन्दमहासिन्धुमज्जनादैक्यमुच्यते।।४।।

निर्धूतमलसम्बन्धो निष्कलङ्कमनोगतः।
शिवोऽहमिति भावेन निरूढो हि शिवैक्यताम्।।५।।

शिवेनैक्यं समापन्नश्चिदानन्दस्वरूपिणा।
न पश्यति जगज्जालं मायाकल्पितवैभवम्।।६।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेदविजृम्भी तत्त्ववीचिमान्।
मायासिन्धुर्लयं याति शिवैक्यवडवानले।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस
चौदहवाँ परिच्छेद

चौपाई - पुनि जिग्यासु भयेउ घटजोनी। पूछेउ ऐक्य कवनबिधि होनी।।
तामस गुन कै कीन्हे त्यागा। ग्यान जोग निरदेस बिभागा।।
अबहिं जो सील कहेउ तेहि लागे। साधक सरन ऐक्य कस आगे।।
कीन्ह जो कुंभज प्रस्न सुहावा। सो रेनुक अतिसय मन भावा।।
बोलेउ गननायक सुचि बानी। सहित सनेह सैवमत ग्यानी।।
कुंभज जो उत्तर तुम्ह माँगा। प्रस्न तुम्हार मोंहि प्रिय लागा।।
रिसिबर सुनहु चित्त मन लाई। कहहुँ जथामति सकल बुझाई।।

दोहा - प्रानलिंग कँह ध्यान ते साधक अति सुख पाइ।
सरन सिवात्मक ऐक्य ते ऐक्यवान कहि जाइ।।349।।

चौपाई - हे मुनिबर यहु चार प्रकारा। ऐक्य थलहु बुध कीन्ह बिचारा।।
ऐक्य प्रथम दूसर आचारा। तीसर एकपात्रता सारा।।
सहभोजन यहु चउथ कहाई। क्रम सों लच्छन कहब बुझाई।।
बिसय बिलास भोग सुख लागी। लघु किनकिउ नहिं इच्छा जागी।।
निरमल चित्त सदा एक रूपा। कबहुँ कतहुँ नहिं होइ बिरूपा।।
सिवानन्दसागर अवगाही। साधक सोइ ऐक्य थल आही।।

दोहा - मलि मलि मैल छुड़ाइ पुनि निष्कलंक मन होइ।
बान्हि सिवोहं भावना पाव सिवैक्यहि सोइ।।350।।

चौपाई - संभु सच्चिदानन्द सरूपा। सकल जगत कारन सुरभूपा।।
तेहि मिलि एकभाव जो पावा। सो नर साधक सिद्ध कहावा।।

मायाशाक्तितिरोधानाच्छिवे भेदविकल्पना।
आत्मनस्तद्विनाशे तु नाद्वैतात्किञ्चिदिष्यते।।८।।

पशुत्वं च पतित्वं च मायामोहविकल्पितम्।
तस्मिन् प्रलयमापन्ने कः पशुः को नु वा पतिः।।९।।

घोरसंसारसर्पस्य भेदवल्मीकशायिनः।
बाधकं परमाद्वैतभावना परमौषधम्।।१०।।

भेदबुद्धिसमुत्पन्नमहासंसारसागरम् ।
अद्वैतबुद्धिपोतेन समुत्तरति देशिकः।।११।।

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता कामरक्षःक्रियाकरी।
संसारकालरात्रिस्तु नश्येदद्वैतभानुना।।१२।।

तस्मादद्वैतभावस्य सदृशो नास्ति योगिनाम्।
उपायो घोरसंसारमहातापनिवृत्तये।।१३।।

अद्वैतभावनाजातं क्षणमात्रेऽपि यत्सुखम्।
तत्सुखं कोटिवर्षेण प्राप्यते नैव भोगिभिः।।१४।।

चित्तवृत्तिसमालीनजगतः शिवयोगिनः।
शिवानन्दपरिस्फूर्तिर्मुक्तिरित्यभिधीयते।।१५।।

कबहुँ न सो देखइ जग जाला। माया कल्पित बिभव बिसाला।।
लहि ब्रम्हांड बुलबुला उद्भव। जेहि मँह बाढ़ होइ कछु संभव।।
जेहि कर पता न चल गहराई। छत्तीस तत्व लहर लहराई।।
माया रूप समुद्र अपारा। भय उपजै नहिं जाइ निहारा।।

दोहा - जो माया सागर अकथ जेहि लखि जीव डेराइ।
सो सिवैक्य बड़वाग्नि ते छन मँह जाइ सुखाइ॥351॥

चौपाई - माया जबहीं संभु समाई। सिव ते जीव भाग बिलगाई।।
जबु बिनसइ सो भाव असेषा। नहिं अद्वैत छाँड़ि अवसेषा।।
जो पसुभाव अउर पतिभावा। माया मोह बिकल्प बनावा।।
जबहीं माया मोह नसाई। कँह पसु कँह पुनि पति रहि जाई।।
बिसम बिसय बिस यहु संसारा। महा भयावन उरग पसारा।।
भेद रूप बिल करइ निवासा। छिन छिन छाँड़इ गरल उसाँसा।।

दोहा - ताहि बिनासन औषधी उत्तम अतिसय सोइ।
परमाद्वैतभावना सिद्ध प्रबल जो होइ॥352॥

चौपाई - भेद बुद्धि उत्पन्न अपारा। जगत जलधि दुर्गम दुस्तारा।।
मति अद्वैत सुदिढ़ करि नावा। देसिक चतुर पार होइ जावा।।
अति अज्ञान तिमिर अन्हिआरी। कामरच्छ करतूति करारी।।
यह संसार कालनिसि भारी। सिवाद्वैत रबि देइ बिदारी।।
एहि कारन जोगिन्ह नहिं काऊ। सिवाद्वैत सम आन उपाऊ।।
महाताप संसार सुघोरा। जेहि बल छनहिं नसाइ न थोरा।।
छनहि मात्र सुख जोगि जो पावा। जेहि अद्वैतभाव उपजावा।।
कोटि बरस लगि जतन करावइ। भोगी कबहुँ न सो सुख पावइ।।

दोहा - चित्तबृत्ति मँह लय करइ सिवजोगी संसार।
सिवानन्द परिफुरित ही मुकुति ताहि यहु सार॥353॥

शिवैकभावनापन्नशिवत्वे देहवानपि।
देशिको हि न लिप्येत स्वाचारैः सूतकादिभिः।।१६।।

शिवाद्वैतपरिज्ञाने स्थिते सति मनस्विनाम्।
कर्मणा किं नु भाव्यं स्यादकृतेन कृतेन वा।।१७।।

शम्भोरेकत्वभावेन सर्वत्र समदर्शनः।
कुर्वन्नपि महाकर्म न तत्फलमवाप्नुयात्।।१८।।

सुकृती दुष्कृती वापि ब्राह्मणो वान्त्यजोऽपि वा।
शिवैकभावयुक्तानां सदृशो भवति ध्रुवम्।।१९।।

वर्णाश्रमसदाचारैर्ज्ञानिनां किं प्रयोजनम्।
लौकिकस्तु सदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते।।२०।।

निर्दग्धकर्मबीजस्य निर्मलज्ञानवह्निना।
देहिवद्भासमानस्य देहयात्रा तु लौकिकी।।२१।।

शिवज्ञानसमापन्नस्थिरवैराग्यलक्षणः।
स्वकर्मणा न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा।।२२।।

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि जाग्रन् वापि महामतिः।
शिवज्ञानसमायोगाच्छिवपूजापरः सदा।।२३।।

चौपाई - एकहि सत्य संभु नहिं दूसर। अस संभाव करइ जो तत्पर।।
सो सिवत्वमय देसिक बीरा। जद्यपि धारन करइ सरीरा।।
सूतक आदि जे निज आचारा। निज समाज गत मत परचारा।।
तदपि न ब्यापहिं कबहुँ सरीरा। दूषित होइ न कोउ मतिधीरा।।
लिंग एक निष्ठामति जाकी। सिवाद्वैत परिग्यान बिबाकी।।
अस मनस्वि कै करम नसाहीं। सत अरु असत कछू फल नाहीं।।

दोहा - सिव अरु जीवहि एकता धरइ चित्त मँह भाव।
एक दृष्टि देखइ सबुहि कहुँ नहिं करइ दुराव।।354।।
अस मानुस जदि करइ नित करम खेप कै खेप।
तदपि न ब्यापइ ताहि फल नाहिं सुभासुभ लेप।।355।।

चौपाई - पुन्य करम कर चाहे कोऊ। अथवा अघ सरूप कोउ होऊ।।
उत्तम बिप्र बंस सुचि जाता। अथवा कोउ चंडाल कहाता।।
जे सिवैकभाव जुत आहीं। ते ते तिन्हहिं समान लखाहीं।।
सदाचार बरनाश्रम केरा। का लगि सिवग्यानी एहि हेरा।।
कवन परोजन एहि ते साधा। नाहिं किए का करिहैं बाधा।।
जद्यपि फल ते कछु नहिं चहहीं। लौकिक सदाचार मँह रहहीं।।

दोहा - करम बीज जरि गयउ सबु निर्मल ग्यानहि आगि।
देह धरे जोगी फिरै देही सम जो लागि।।356।।

चौपाई - जो संजुत्त सदा सिवग्याना। जेहि कर थिर बैराग्य बखाना।।
जो सिवजोगी सिव अनुरागी। सिव मँह रमइ बिसय रस त्यागी।।
करइ करम सुभ असुभ न जानइ। करम लेस तेहि देह न सानइ।।
करम न ताहि लगइ एहि भाँती। जथा सलिल नहिं पदुमहि पाती।।
सो मतिमान महा सिवग्यानी। सिव संबद्ध सकल बिधि मानी।।
जागत सोवत चलत खड़ाई। जो कछु करइ सो सिव पँहि जाई।।

यद्यत्पश्यति सामोदं वस्तु लोकेषु देशिकः।
शिवदर्शनसम्पत्तिस्तत्र तत्र महात्मनः।।२४।।

यद्यच्चिन्तयते योगी मनसा शुद्धभावनः।
तत्तच्छिवमयत्वेन शिवध्यानमुदाहृतम्।।२५।।

यत्किञ्चिद्भाषितं लोके स्वेच्छया शिवयोगिना।
शिवस्तोत्रमिदं सर्वं यस्मात् सर्वात्मकः शिवः।।२६।।

या या चेष्टा समुत्पन्ना जायते शिवयोगिनाम्।
सा सा पूजा महेशस्य सर्वदा तद्गतात्मनाम्।।२७।।

विश्वं शिवमयं चेति सदा भावयतो धिया।
शिवैकभाजनात्मत्वादेकभाजनमुच्यते ।।२८।।

स्वस्य सर्वस्य लोकस्य शिवस्याद्वैतदर्शनात्।
एकभाजनयोगेन प्रसादैक्यमतिर्भवेत्।।२९।।

शिवे विश्वमिदं सर्वं शिवः सर्वत्र भासते।
आधाराधेयभावेन शिवस्य जगतः स्थितिः।।३०।।

चित्तैकभाजनं यस्य चित्तवृत्तेः शिवात्मकम्।
नान्यत्तस्य किमेतेन मायामूलेन वस्तुना।।३१।।

दोहा - **एहि बिधि सिव पूजा निरत सदा महामतिमान।**
समायोग सिवग्यान ते पूजा करम समान॥357॥

चौपाई - सिवलिंगैक्य सकल संसारा। निज नयनन्हि जिन जिनस निहारा।।
तिन्ह तिन्ह जिनस सो संभु लखाई। देखि महातम अति हरषाई।।
सुद्ध भाव मन संजुत करई। जोगी जो कछु चिंतन करई।।
सो सबु सिवमय संसय नाहीं। लोक बिदित सिवध्यान कहाहीं।।
निज इच्छा लगि जो कछु भाषइ। सिवजोगी मन नीकहु लागइ।।
सो सबु सिव अस्तुति सुभ जानहु। सिव सर्बात्मक कारन मानहु।।

दोहा - **सिवजोगी दरसन जगत चिंतन बचन प्रमान।**
सब सिवमय सिवध्यान पुनि सिव अस्तुतिहि समान॥358॥

चौपाई - जो जो करम करइ हित लागी। जोगी नित सिव पद अनुरागी।।
सो सो सब सादर सिव पूजा। सिव आराधन तजि नहिं दूजा।।
जागत सोवत सबु थिति माँहीं। सिवजोगी कछु दूसर नाहीं।।
सकल भुवन सिवमय अस भावा। जब सिवजोगी बुद्धि दिढावा।।
तँह सिवैकभाजनता आई। सोपि एकभाजन कहि जाई।।
आपु सिवहि अरु सब संसारा। ई तीनउँ समुझइ एकसारा।।
एहि कारन एकपात्र कहावा। मति अद्वैत प्रसाद बनावा।।

दोहा - **पादोदक चरमूर्ति कँह लिंग स्नान पुनि बारि।**
ग्रहन जोग सम दूनहूँ यहु फुरि कहउँ बिचारि॥359॥
सिव मँह जग जग मँह सिवहु कहहु कहाँ सिव नाहिं।
बनि अधार आधेय दोउ सिव अरु जगत रहाहिं॥360॥

चौपाई - चित्तवृत्ति जाकर सिवरूपा। मात्र बिसय चेतन अनुरूपा।।
बिसय तहाँ कछु दूसर नाहीं। मायामूल प्रयोजन काहीं।।
करइ प्रकासित चित् नहिं आना। बिस्व प्रपंच प्रगट बिधि नाना।।

चित् प्रकाशयते विश्वं तद्विना नास्ति वस्तु हि।
चिदेकनिष्ठचित्तानां किं मायापरिकल्पितैः।।३२।।

वृत्तिशून्ये स्वहृदये शिवलीने निराकुले।
यः सदा वर्तते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।।३३।।

गुरोः शिवस्य शिष्यस्य स्वस्वरूपतया स्मृतिः।
सहभोजनमाख्यातं सर्वग्रासात्मभावतः।।३४।।

शिवं विश्वं गुरुं साक्षाद्योजयेन्नित्यमात्मनि।
एकत्वेन चिदाकारे तदिदं सहभोजनम्।।३५।।

अयं शिवो गुरुश्चैव जगदेतच्चराचरम्।
अहं चेति मतिर्यस्य नास्त्यसौ विश्वभोजकः।।३६।।

अहं भृत्यः शिवः स्वामी शिष्योऽहं गुरुरेव वै।
इति यस्य मतिर्नास्ति स चाद्वैतपदे स्थितः।।३७।।

पराहन्तामये स्वात्मपावके विश्वभास्वति।
इदन्ताहव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यते।।३८।।

अहं शिवो गुरुश्चाहमहं विश्वं चराचरम्।
यया विज्ञायते सम्यक् पूर्णाहन्तेति सा स्मृता।।३९।।

बिनु चित नहिं कोउ बस्तु प्रकासा। नामरूप नहिं कबहुँ बिकासा।।
चित्त जाहि चित् एक लगावा। मायारचित न तेहि कछु भावा।।
बृत्तिरहित निज हृदय बनावा। परम सान्त सिव ध्यान लगावा।।
जोगी संतत अस ब्यौहरई। कबहुँ न सो भवबन्धन परई।।

दोहा - गुरु कँह सिव कँह सिष्य कँह सुमिरन निज निज रूप।
आत्मभाव गरसन सबुइ कह सहभोज अनूप॥361॥

चौपाई - सिव गुरु बिस्व चित्त मँह धरई। एक रूप संजोजन करई।।
चिदाकार निज आतम माँहीं। तीनउँ जुरि प्रत्यच्छ लखाहीं।।
एहि बिधि एकरूपता बनई। सोइ सबु सहभोजन नित कहई।।
शिव गुरु बिस्व निरंतर सोहइँ। निज सरूप ते भिन्न न होवइँ।।
परामरस अस जबहीं होई। सहभोजन तबहीं कह सोई।।
सिव गुरु जगत चराचर एहा। आपुहि भिन्न भिन्न करि लेहा।।
भेद बुद्धि यहु जासु सहाई। सो न बिस्व भोजक कहि जाई।।
हौं सेवक सिव स्वामि हमारे। यहु हौं सिष्य सो गुरु पद धारे।।
जाकी अस मति कबहुँ न आई। सो अद्वैत पदहि सरसाई।।

दोहा - अगिनि पराहंतामयी आत्मा रूप प्रकास।
नित्य निरन्तर बिस्व कँह देइ सुथिर आभास॥362॥
हब्य इदन्तारूप जो हवन करइ धरि ध्यान।
बिस्वहोमि तेहि कहत सबु अनुगत सास्त्रबिधान॥363॥

चौपाई - सिव हौं बिस्व चराचर हमहीं। हमहीं गुरु तीनउँ पुनि हमहीं।।
जेहि चिति सों अस होइ जनाई। पूर्णाहंता सो कहि जाई।।
चिद्रूपी आधार कृसानू। आग्याचक्र तेज तेहि जानू।।
तेहि मँह हवन करइ सबिधाना। भेद समूह जगत हबि नाना।।

आधारवह्नौ चिद्रूपे भेदजातं जगद्धविः।
जुहोति ज्ञानयज्वा यः स ज्ञेयो विश्वहव्यभुक्।।४०।।

चिदाकारे पराकाशे परमानन्दभास्वति।
विलीनचित्तवृत्तीनां का वा विश्वक्रमस्थितिः।।४१।।

निरस्तविश्वसम्बाधे निष्कलङ्के चिदम्बरे।
भावयेल्लीनमात्मानं सामरस्यस्वभावतः।।४२।।

सैषा विद्या परा ज्ञेया सत्तानन्दप्रकाशिनी।
मुक्तिरित्युच्यते सद्भिर्जगन्मोहनिवर्तिनी।।४३।।

भक्तादिधामार्पितधर्मयोगात्
प्राप्तैकभावः परमाद्भुतेन।
शिवेन चिद्व्योममयेन साक्षान्-
मोक्षश्रियो भाजनतामुपैति।।४४।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ ऐक्यस्थले ऐक्यस्थलादिचतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ।।१४।।

एहि बिधि ग्यान जग्य जो करई। बिस्व हव्यभुक् तेहि सबु कहई।।
चिदाकारमय पर आकासू। परानंद जँह सुरुज प्रकासू।।
जेहि कर चित्तवृत्ति तँह लीना। बिस्वकरमथिति तेहि का कीना।।

दोहा - **भवबंधन छूटइ बहुरि निरमल चित आकास।**
तँह स्वभाव समरस बनइ आपुहि लीन अभास॥364॥

छन्द - जेहि सास्त्र बखाना सज्जन माना विद्यापरा सुहाई।
जो सत् चित् भासइ अनन्द प्रकासइ जोगिन्ह अति सुखदाई।।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी मुकुति कहहिं सबु ग्यानी।
नाना भ्रम खेदा बिस्व बिभेदा करइ सो मोह निदानी।।

दोहा - **भक्त आदि थल अरपित धरम जोग के हेतु।**
अति अद्भुत चिद्व्योममय मुकुति पहुँच कौ सेतु॥365॥
ऐसो जो सिवलिंग सो ऐक्य करइ साच्छात।
सो नर पावइ मोच्छ ध्रुव पुनि न होइ भवपात॥366॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह चौदहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

पञ्चदशः परिच्छेदः

रेणुक उवाच —

षट्स्थलोक्तसदाचारसम्पन्नस्य यथाक्रमम्।
लिङ्गस्थलानि कथ्यन्ते जीवन्मुक्तिपराणि च।।१।।

अगस्त्य उवाच —

भक्ताद्यैक्यावसानानि षडुक्तानि स्थलानि च।
लिङ्गस्थलानि कानीह कथ्यन्ते कति वा पुनः।।२।।

रेणुक उवाच —

गुर्वादिज्ञानशून्यान्ता भक्तादिस्थलसंश्रिताः।
स्थलभेदाः प्रकीर्त्यन्ते पञ्चाशत् सप्त चाधुना।।३।।

आदौ नवस्थलानीह भक्तस्थलसमाश्रयात्।
कथ्यन्ते गुणसारेण नामान्येषां पृथक् शृणु।।४।।

दीक्षागुरुस्थलं पूर्वं ततः शिक्षागुरुस्थलम्।
प्रज्ञागुरुस्थलं चाथ क्रियालिङ्गस्थलं ततः।।५।।

भावलिङ्गस्थलं चाथ ज्ञानलिङ्गस्थलं ततः।
स्वयं चरं परं चेति तेषां लक्षणमुच्यते।।६।।

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यया दीक्षेति सा तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुः स्मृतः।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

चौपाई - रेनुक कहेउ सुनहु मुनिराया। छह थल सदाचार जे कहाया।।
साधक सदाचारजुत जेते। जतन मोच्छहित पुरवहिं ते ते।।
लिंग थलहु बरनउँ तेहि कारन। क्रम सो जीवन्मुकुति सँवारन।।
तब कुंभज बोलेउ मृदु बानी। सहित बिबेक बिनय रति सानी।।
भगत अरंभ ऐक्य अवसाना। छह थल सुंदर आपु बखाना।।
अब कहु लिंगथलहु कति आहीं। के के इहाँ बहुरि कहि जाहीं।।

दोहा - सुनहु भगत थल आदि छह लिंगथलन आधार।
ग्यानसून्य अंतहु गुरु आदिक सत्तावन परकार।।367।।

चौपाई - नौ थल कहि अबु करउँ अरंभा। जिन्हकर भगत सो थल अवलंबा।।
गुन अनुसार नाम पुनि तिन्हहीं। एक एक सुनु जो सबु गिनहीं।।
पहिला दीच्छागुरु थल कहई। दूसर सिच्छा गुरुथल अहई।।
प्रग्यागुरु थल तीसर जानहु। क्रियालिंग थल चउथा मानहु।।
भावलिंगथल पँचव कहाई। छठवाँ ग्यानलिंग थल आई।।
स्वयं लिंग थल पर चर आगे। एहि बिधि नव थल गिनती लागे।।
इन्हकर लच्छन सुनहु मुनीसा। जिन्ह के श्रवन जाहिं अघ खीसा।।
परम ग्यान जो देइ बड़ाई। पासबंध छीजइ जेहि पाई।।
सो दीच्छा अस कह सब ग्यानी। ता मँह गुरु दीच्छा गुरु मानी।।

दोहा - गुरु मँह लसइ गुकार जो गुनातीत तेहि जान।
रूपातीत रुकार कँह आसय निहिचय मान।।368।।

गुणातीतं गुकारं च रूपातीतं रुकारकम्।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।८।।

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यलम्।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते।।९।।

षडध्वातीतयोगेन यतते यस्तु देशिकः।
मायाब्धितारणोपायहेतुर्विश्वगुरुः शिवः।।१०।।

अखण्डं येन चैतन्यं व्यज्यते सर्ववस्तुषु।
आत्मयोगप्रभावेण स गुरुर्विश्वभासकः।।११।।

दीक्षागुरुरसौ शिक्षाहेतुः शिष्यस्य बोधकः।
प्रश्नोत्तरप्रवक्ता च शिक्षागुरुरितीर्यते।।१२।।

बोधकोऽयं समाख्यातो बोध्यमेतदिति स्फुटम्।
शिष्यो नियुज्यते येन स शिक्षागुरुरुच्यते।।१३।।

संसारतिमिरोन्माथिशरच्चन्द्रमरीचयः ।
वाचो यस्य प्रवर्तन्ते तमाचार्यं प्रचक्षते।।१४।।

ददाति यः पतिज्ञानं जगन्मायानिवर्तकम्।
अद्वैतवासनोपायं तमाचार्यवरं विदुः।।१५।।

पूर्वपक्षं समादाय जगद्भेदविकल्पनम्।
अद्वैतकृतसिद्धान्तो गुरुरेष गुणाधिकः।।१६।।

ताको ही गुरु मानिए जो मेटै अग्यान।
तत्व रूप गुन हीन कौ सही करावै ग्यान॥369॥

चौपाई - जो नित सास्त्र परायन रहई। सास्त्र तत्व कँह संचय करई।।
पुनि निज सिष्यहि बोध करावै। तेहि जीवन ब्यौहार धरावै।।
स्वयं आचरइ जेहि अनुसारा। सोइ आचारज कह संसारा।।
बरन पदादि अहइँ षटमारग। भयउ जथा बिधि इन्हते पारग।।
गहि सुठि जोग जतन जो करई। सो देसिक अस बुध जन कहई।।
माया जलधि जो पार लगाई। कहि उपाय बहु होइ सहाई।।
सो धनि बिस्वगुरू अस नामा। सोइ सिव अखिल लोकबिश्रामा।।

दोहा - जो निज जोग प्रभाव ते जड़हु करइ चैतन्य।
सो अखण्ड चैतन्य गुरु बिस्व प्रकासक धन्य॥370॥

चौपाई - जो दीच्छा गुरु ग्यान करावै। सिष्यहि सो सिच्छा गुरु भावै।।
तेहि कर संसय सकल निवारै। लेइ परीच्छा सिष्य निखारै।।
उत्तर देइ नित सिष्य सहाई। सो सिच्छा गुरु सहज सुहाई।।
बोधक सिव सिद्धांत महत्वा। बोध्य जोग सिव सो परतत्वा।।
एहि बिग्यान सिष्यजुत करई। सो सिच्छा गुरु गुरु पद लहई।।
जगत रूप तम निकर बिनासन। सरत चंद कर बचन प्रकासन।।
करइ सतत जो सुधा सरूपा। सो आचारज परम अनूपा।।
पसु सबु जीव संभु पति अहई। सोइ माया पति सिव बुध कहई।।
पति कहँ ग्यान उदय जब होई। तबहिं दूर जगमाया होई।।
सो पतिग्यान देइ जो बुधबर। तेहि सुठि आचारज कह सब नर।।

दोहा - अद्वैतवासनोपाय रूप सोह आचार्ज।
करइ सिष्य कल्यान नित बुद्धि कलुष करि मार्ज॥371॥

सन्देहवनसन्दोहसमुच्छेदकुठारिका ।
यत्सूक्तिधारा विमला स गुरूणां शिखामणिः।।१७।।

यत्सूक्तिदर्पणाभोगे निर्मले दृश्यते सदा।
मोक्षश्रीर्बिम्बरूपेण स गुरुर्भवतारकः।।१८।।

शिष्याणां हृदयालेख्यं प्रद्योतयति यः स्वयम्।
ज्ञानदीपिकयाऽनेन गुरुणा कः समो भवेत्।।१९।।

परमाद्वैतविज्ञानपरमौषधदानतः।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते।।२०।।

उपदेष्टोपदेशानां संशयच्छेदकारकः।
सम्यज्ज्ञानप्रदः साक्षादेष ज्ञानगुरुः स्मृतः।।२२।।

निरस्तविश्वसम्भेदं निर्विकारं चिदम्बरम्।
साक्षात्करोति यो युक्त्या स ज्ञानगुरुरुच्यते।।२२।।

कलङ्कवानसौ चन्द्रः क्षयवृद्धिपरिप्लुतः।
निष्कलङ्कस्थितो ज्ञानचन्द्रमा निर्विकारवान्।।२३।।

पार्श्वस्थतिमिरं हन्ति प्रदीपो मणिनिर्मितः।
सर्वगामि तमो हन्ति बोधदीपो निरङ्कुशः।।२४।।

सर्वार्थसाधकज्ञानविशेषादेशतत्परः ।
ज्ञानाचार्यः समस्तानामनुग्रहकरः शिवः।।२५।।

भेद बिकल्पन जगत कँह पूर्वपच्छ लै हाथ।
उत्तर ताहि निवारइ गहि अद्वैतहि पाथ॥372॥
अइसन गुरु सामान्य ते कई गुना बढ़ि होइँ।
स्वयं सिद्ध साधक हितू काढ़हिं तत्व बिलोइ॥373॥

चौपाई - जेहि गुरु बचन बिमल सुठि धारा। संसय बिपिन उछेद कुठारा।।
सो गुरु अगम सास्त्र सबु जाना। गुरु समुदाय सिखामनि माना।।
जाके बिमल सूक्ति सुभ ऐना। मोच्छ लच्छि भासइ दिन रैना।।
सो गुरु नर तारइ भव एहा। बुध सबु कहहिं न कछु संदेहा।।
सिष्य चित्त करि निरुज बिकासा। हृदयचित्र कर बिसद प्रकासा।।
करि निज ग्यान दिया अरु बाती। तेहि गुरु होइ कवन संघाती।।

दोहा - **परमाद्वैत बिग्यान कँह परमौषधि करि दान।**
गुरु भव रोग निवारक पावइ कवन महान॥374॥

चौपाई - जो उपदेसइ अति समुझाई। संसय दूर करइ मनु लाई।।
सहित बिबेक देइ जो ग्याना। ताहि ग्यान गुरु जगत बखाना।।
सकल बिस्व कहँ भेदनिरासा। निरबिकार कर चित् आकासा।।
जुगुति लगाइ करइ प्रत्यच्छा। जो सो ग्यानगुरू मति स्वच्छा।।
जो ससि नभ मँह रहा लखाई। घटइ बढ़इ सकलंक दुखाई।।
ग्यान बिधू अस कबहुँ न होई। नहिं कलंक नहिं बिकिरिति कोई।।

दोहा - **अगल बगल कँह तम हनइ मनि सों बन्यो प्रदीप।**
हनइ सकल अज्ञान तम बोध निरंकुस दीप॥375॥

चौपाई - सकल अरथ साधन धरि थाती। तत्पर देन ग्यान बहु भाँती।।
सबुहि अनुग्रह करन कृपाला। ग्यानाचार्ज सो सिव कहि जाला।।
जाको कृपा कटाच्छ सुधाकर। बढ़वइ ग्यान रूप महसागर।।

कटाक्षचन्द्रमा यस्य ज्ञानसागरवर्धनः।
संसारतिमिरच्छेदी स गुरुर्ज्ञानपारगः।।२६।।

बहिस्तिमिरविच्छेत्ता भानुरेष प्रकीर्तितः।
बहिरन्तस्तमश्छेदी विभुर्देशिकभास्करः।।२७।।

कटाक्षलेशमात्रेण विना ध्यानादिकल्पनम्।
शिवत्वं भावयेद्यत्र स वेदः शाम्भवो भवेत्।।२८।।

शिववेदकरे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले।
जीवन्मुक्तो भवेच्छिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः।।२९।।

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते।
तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः।।३०।।

परानन्दचिदाकारं परब्रह्मैव केवलम्।
लिङ्गं सद्रूपतापन्नं लक्ष्यते विश्वसिद्धये।।३१।।

लिङ्गमेव परं ज्योतिर्भवति ब्रह्म केवलम्।
तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः।।३२।।

परित्यज्य क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजैकतत्पराः।
वर्तन्ते योगिनः सर्वे तस्माल्लिङ्गं विशिष्यते।।३३।।

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजांशसंमिताः।
इति यत्पूज्यते सिद्धैस्तत्क्रियालिङ्गमुच्यते।।३४।।

जगत तिमिर कँह करइ बिनासा। सो गुरु ग्यान पार चहुँ आसा।।
बाहर जो फैला अन्हिआरा। करइ नास रबि बारंबारा।।
बाहर भीतर जो तम छायो। बिभु गुरु रबि तेहि अंत भगायो।।

दोहा - केवल कृपा कटाच्छ ते किये बिना कछु ध्यान।
उपजइ जबु सिव भावना सो कह सांभव ग्यान॥376॥

चौपाई - जेहि ते ग्यान सुनिर्मल पावा। सिवभावना हृदय उपजावा।।
जीवन्मुक्त सिष्य जेहि होई। ग्यान जलधि जग गुरु सो होई।।
गुरु बिग्यान जोग जुति पाई। क्रिया लीन जामें होइ जाई।।
सो थल क्रियालिंग कहि जाई। आगमपारग कहहिं बुझाई।।
गहि चित्परानंद आकारा। केवल परब्रम्ह अबिकारा।।
बिस्वसृष्टिसिधि हेतु बनाई। इष्टलिंग सत् रूप देखाई।।
परब्रम्ह थित लिंग सरूपा। परम जोति केवल सद्रूपा।।
तेहि कारन एहि पूजा कीन्हें। सकल करम फल सहजहि दीन्हे।।
करहिं जोगि जन करम न दूजा। केवल करहिं लिंग कँह पूजा।।
क्रियालिंग एहि कारन माना। श्रेष्ठ न कोउ जग ताहि समाना।।

दोहा - लिंग परम आराध्य यहु क्रिया लिंग जेहि नाम।
जोगी नित पूजन करहिं और न कोऊ काम॥377॥

चौपाई - जग्य आदि सुभ क्रिया कहाहीं। ते सब ताहि बराबर नाहीं।।
मात्र तनिक लिंगार्चन अंसा। जोगी करहिं न जग्य प्रसंसा।।
महिमा जानि सिद्धजन पूजहिं। क्रियालिंग तजि आव न दूजहिं।।
जग्य अगिनिहोत्रादिक काहे। का फल दुश्चर तप निरबाहे।।
लिंगार्चन दृढ़ रति बस जाके। सकल करम सिद्धी बस ताके।।
ब्रम्हा बिस्नु आदि सब देवा। करहिं प्रीति लिंगार्चन सेवा।।
आश्रय अचल लिंग गहि राखा। निज पद सोहहिं सिद्ध सुभाखा।।

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु।।३५।।

ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे विबुधा लिङ्गमाश्रिताः।
सिद्धाः स्वस्वपदे भान्ति जगत्तन्त्राधिकारिणः।।३६।।

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भावोऽपि लीयते।
यत्र तद्देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम्।।३७।।

भावेन गृह्यते देवो भगवान् परमः शिवः।
किं तेन क्रियते तस्य नित्यपूर्णो हि स स्मृतः।।३८।।

अखण्डपरमानन्दबोधरूपः परः शिवः।
भक्तानामुपचारेण भावयोगात् प्रसीदति।।३९।।

मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गाद्भावलिङ्गं विशिष्यते।
निरस्तसर्वदोषत्वाद् ज्ञानमार्गप्रवेशनात्।।४०।।

विहाय बाह्यलिङ्गानि चिल्लिङ्गं मनसि स्मरन्।
पूजयेद् भावपुष्पैर्यो भावलिङ्गीति कथ्यते।।४१।।

मूलाधारेऽथवा चित्ते भ्रूमध्ये वा सुनिर्मलम्।
दीपाकारं यजन् लिङ्गं भावद्रव्यैः स योगवान्।।४२।।

स्वानुभूतिप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन संयुतः।
शिलामृद्दारुसंभूतं न लिङ्गं पूजयत्यसौ।।४३।।

पाइ लिंग बल रहहिं सुखारी। जथा जोग जग तंत्र प्रभारी।।

दोहा - क्रियालिंग मँह क्रिया जस लीन होइ बिधि पाइ।
भावपच्छ मँह तैसहीं भावलिंग कहि जाइ।।378।।

चौपाई - भावलिंग गुरु कहहिं बखानी। भावरूप जानहिं बिग्यानी।।
परमेस्वर संकर भगवंता। भाव बिबस बस होहिं अनन्ता।।
निरमल मन जो मानइ तेही। कस न होइँ बस संकर केही।।
निरमल मन जन जो तेहि पावा। ताहि कपट छल छिद्र न भावा।।
तब पूजा बाहिर किन काजा। पूरनकाम संभु नित छाजा।।
सिव प्रति जो अस भाव बनाई। सिव आपुहि तेहि देहिं जनाई।।

दोहा - परमानंद अखंड पुनि ग्यान रूप सिव आहिं।
भगतन कै उपचार बस भाव पाइ पतिआहिं।।379।।

चौपाई - लिंग जे माटी पाथर खोखा। तिन्ह ते भावलिंग अति चोखा।।
तिन्हमँह कबहुँक दोस लखाई। एहि मँह सबुइ दोस निरसाई।।
भावलिंग कर ग्यान प्रबेसा। तिन्ह मँह कतहुँ न अस लवलेसा।।
बाह्यलिंग तजि देखि सुभीता। चित् लिंग सुमिरइ परम पुनीता।।
भाव कुसुम सों पूजा करई। भावलिंगि तेहि सबु जन कहई।।
मूलाधार चित्त मँह अथवा। दूनहुँ भौंह बीच पुनि मँथवा।।
लिंगाकृति दीआ लौ रचई। भावद्रब्य सों पूजा करई।।
जो अस रचइ जजइ मन लाई। सिव जोगी सो साधु कहाई।।

दोहा - ज्योतिर्लिंग समेत जो निज अनुभव परमान।
कबहुँ न पूजै लिंग सो माटी काठ पषान।।380।।

चौपाई - अलप ग्यान जुत जो नर होई। क्रिया रूप पूजा कर सोई।।
जे ग्यानी सिव सास्त्र बखाने। आंतर भावार्चन पहिचाने।।
सैव भाव ग्यापक जो ग्याना। जेहि थल जाइ समग्र समाना।।
ग्यानलिंग सो सुथल कहावा। सिव तत्वार्थ बिसारद गावा।।

क्रियारूपा तु या पूजा सा ज्ञेया स्वल्पसंविदाम्।
आन्तरा भावपूजा तु शिवस्य ज्ञानिनां मता।।४४।।

तद्भावज्ञापकज्ञानं लयं यत्र समश्नुते।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः।।४५।।

त्रिमूर्तिभेदनिर्मुक्तं त्रिगुणातीतवैभवम्।
ब्रह्म यद्बोध्यते तत्तु ज्ञानलिङ्गमुदाहृतम्।।४६।।

स्थूले क्रियासमापत्तिः सूक्ष्मे भावस्य सम्भवः।
स्थूलसूक्ष्मपदातीते ज्ञानमेव परात्मनि।।४७।।

कल्पितानि हि रूपाणि स्थूलानि परमात्मनः।
सूक्ष्माण्यपि च तैः किं वा परबोधं समाचरेत्।।४८।।

परात्परं तु यद्ब्रह्म परमानन्दलक्षणम्।
शिवाख्यं ज्ञायते येन ज्ञानलिङ्गीति कथ्यते।।४९।।

बाह्यक्रियां परित्यज्य चिन्तामपि मानसीम्।
अखण्डज्ञानरूपत्वं यो भजेन्मुक्त एव सः।।५०।।

तद्भावज्ञापकं ज्ञानं यत्र ज्ञाने लयं व्रजेत्।
तद्वानेष समाख्यातः स्वाभिधानो मनीषिभिः।।५१।।

स्वच्छन्दाचारसन्तुष्टो ज्योतिर्लिङ्गपरायणः।
आत्मस्थसकलाकारः स्वाभिधो मुनिसत्तमः।।५२।।

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्चकः।
भिक्षाशी समबुद्धिश्च मुक्तप्रायो मुनिर्भवेत्।।५३।।

बैभवजुत जो त्रिगुनातीता। भेद तिमूरति तीनिउँ बीता।।
सो अस ब्रम्ह जाइ बतलावा। ग्यानलिंग सोइ परम कहावा।।

दोहा - **थूल लिंग पूजा क्रिया सूच्छ्म लिंग मँह भाव।**
थूल सूच्छ्म दूनउँ परे एकहि ग्यान बिभाव॥381॥

चौपाई - थूल रूप कल्पित करि राखा। सूच्छ्म रूप पुनि तैसेइँ भाखा।।
माया करइ कल्पना नाना। परमेस्वर कँह रूप बिधाना।।
थूल सूच्छ्म जे रूप अनेका। तिन्ह ते सधइ न मोच्छ बिबेका।।
तेहि कारन परबोध सरूपा। तृप्ति लिंग आचरइ अनूपा।।
ब्रम्ह परात्पर जो कहि आवा। लच्छन परमानंद सुहावा।।
सिव संग्यक जानइ जो तेही। ग्यानलिंगि सो परम सनेही।।

दोहा - **बाहरि अर्चा क्रिया तजि छाँड़ि मानसिक ध्यान।**
जो भज ग्यान अखंड लह मोच्छ परम कल्यान॥382॥

चौपाई - भावलिंग ग्यापक पुनि ग्याना। जाइ ग्यान जेहिं नियत समाना।।
जो धारइ नित अस सुचि ग्याना। जेहि बुध कहहिं परे अनुमाना।।
ताहि सराह सिवागम ग्यानी। सो नर सोह 'स्वयम्' अभिधानी।।
सदा रहइ स्वच्छंद अमानी। अति संतोष हृदय मँह आनी।।
जोति लिंग अति आदर करई। तेहि पूजा नित तत्पर रहई।।
सकल बिस्व निज आतम माहीं। जो राखइ सो 'स्व' कहि जाही।।

दोहा - **सकल बिसय ममता रहित सदा विगत अभिमान।**
पाँच अविद्या आदि सबु करि कलेस अवसान॥383॥
माँगि भीख भोजन करइ सबु मँह बुद्धि समान।
मुनिसत्तम निरबाध अस पायउ मुकुति प्रमान॥384॥

चौपाई - जेतना जवन जहाँ मिलि जाई। ताही सों संतोष जनाई।।
देह सकल नित भसम रचावा। निष्ठासहित भभूत लगावा।।
निज इंद्रिय आपन बस राखा। कबहुँ न कामबासना ताखा।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः।
समवृत्तिर्भवेद्योगी भिक्षुके वा नृपेऽथवा।।५४।।

पश्यन् सर्वाणि भूतानि संसारस्थानि सर्वशः।
स्मयमानः परानन्दे लीनात्मा वर्तते सुधीः।।५५।।

ध्यानं शैवं तथा ज्ञानं भिक्षा चैकान्तशीलता।
यतेश्चत्वारि कर्माणि न पञ्चममिहेष्यते।।५६।।

स्वरूपज्ञानसम्पन्नो ध्वस्ताहंममताकृतिः।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चराभिधः।।५७।।

कामक्रोधादिनिर्मुक्तः शान्तिदान्तिसमन्वितः।
समबुद्ध्या चरेद् योगी सर्वत्र शिवबुद्धिमान्।।५८।।

इदं मुख्यमिदं हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र सञ्चरेद् योगी सर्वं ब्रह्मेति भावयन्।।५९।।

न सम्मानेषु सम्प्रीतिं नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः सञ्चरेद्योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः।।६०।।

अप्रकृतैर्गुणैः स्वीयैः सर्वं विस्मापयन् जनम्।
अद्वैतपरमानन्दमुदितो देहिवच्चरेत्।।६१।।

न प्रपञ्चे निजे देहे न धर्मे न च दुष्कृते।
गतवैषम्यधीर्धीरो यतिश्चरति देहिवत्।।६२।।

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्तिपराङ्मुखमनःस्थितिः।
चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः।।६३।।

राजा होउ बरुक भिखमंगा। मति समान दुहुँ ओर अभंगा।।
एहि लच्छन जे परम बिजोगी। ते कहाइँ सचमुच सिवजोगी।।
सदा लीन जे परमानंदा। जोगी साधक सुधी अमंदा।।
ते जग जीव सकल नित देखहिं। बिसमय सहित समानहिं लेखहिं।।

दोहा - **सैव ग्यान अरु ध्यान पुनि भिच्छा बास अकेल।**
करम चारि जोगी धरैं नहिं पाँचवँ सों मेल॥385॥

चौपाई - जो सरूप निज जानइ पूरा। नहिं भ्रम तँह नहिं आध अधूरा।।
मैं और मोरु भाव जिन्ह नाहीं। नहिं उपजहिं पुनि पुरुब बिलाहीं।।
स्वयं थली होइ अपुनेइ चरई। तेहि सबु ‘चर’ अस जग मँह कहई।।
काम क्रोध बहु दोस बिहीना। सम दम नियम आदि गुन लीना।।
सिवजोगी सिव बुद्धि सयाना। सबु कँह बरतइ एक समाना।।
यहु बड़ छोट मुख्य यहु हीना। जो सोचइ सो बुद्धि बिहीना।।

दोहा - **ऊँच नीच बड़ छोट कोउ अस नहि करिअ बिचार।**
सबु कछु ब्रम्ह बनाइ मन अटइ जोगि संसार॥386॥

चौपाई - मानहु अपमानहु वा पावइ। हरष बिषाद न कछु मन लावइ।।
जोगी सम बरतइ ब्यवहारा। थित आतम कूटस्थ अपारा।।
निज गुन प्रगटि अलौकिक नाना। बिस्मित करइ सबुइ जन जाना।।
नित अद्वैत भाव सो गहई। परमानन्द मुदित मन रहई।।
सो सिव जोगी बिचरन करई। चरित सधारन नर अनुहरई।।
नहिं संसार न आपु सरीरा। धरमाधरम न मति कर धीरा।।
कतहुँ विषमता बुद्धि न आवै। जोगी अस ब्यवहार बनावै।।
बिधि निषेधमय तजि ब्यवहारा। प्राकृत जन इव चर संसारा।।

दोहा - **प्राकृत बैभव सों बिमुख अति निस्पृह मन साध।**
चिदानन्द निज आत्मथित मगन मुनी निरबाध॥387॥

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतः स्वस्वरूपतः।
परं नास्तीति बोधस्य परत्वमभिधीयते।।६४।।

स्वतन्त्रः सर्वकृत्येषु स्वं परत्वेन भावितः।
तृणीकुर्वन् जगज्जालं वर्तते शिवयोगिराट्।।६५।।

वर्णाश्रमसामाचारमार्गनिष्ठापराङ्मुखः ।
सर्वोत्कृष्टं स्वमात्मानं पश्यन् योगी तु मोदते।।६६।।

विश्वातीतं परं ब्रह्म शिवाख्यं चित्स्वरूपकम्।
तदेवाहमिति ज्ञानी सर्वोत्कृष्टः स उच्यते।।६७।।

अचलं ध्रुवमात्मानमनुपश्यन्निरन्तरम्।
निरस्तविश्वविभ्रान्तिर्जीवन्मुक्तो भवेन्मुनिः।।६७।।

ब्रह्माद्याः किं नु कुर्वन्ति देवताः कर्ममार्गगाः।
कर्मातीतपदस्थस्य स्वयं ब्रह्मस्वरूपिणः।।६९।।

स्वेच्छया सञ्चरेद्योगी विमुञ्चन् देहमानिताम्।
दर्शनैः स्पर्शनैः सर्वानज्ञानपि विमोचयेत्।।७०।।

नित्ये निर्मलभावने निरुपमे निर्धूतविश्वभ्रमे
सत्तानन्दचिदात्मके परशिवे साम्यं गतः संयमी।
प्रध्वस्ताश्रमवर्णधर्मनिगलः स्वच्छन्दसञ्चारवान्
देहीवाद्भुतवैभवो विजयते जीवन्विमुक्तः सुधीः।।७१।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गतभक्तस्थले दीक्षागुरुस्थलादि-नवविधलिङ्गस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चदशः परिच्छेदः ।।१५।।

चौपाई - होइ के स्वयं स्वयं जो भासइ। निज सरूप आचरन प्रकासइ।।
सिवहि छाँड़ि सिवजोगि न दूसर। ग्यान परत्व ताहि अस अनुसर।।
करन हेतु कारज बिध नाना। परम स्वतंत्र स्वयं कौ माना।।
आपु सदा आपुहि मँह रहई। आपुहि पुनि परतत्व समुझई।।
तृनहु न गिनइ सकल संसारा। सो सिवजोगिराट् सुबिचारा।।
आश्रम बरन आचरन मारग। निष्ठा छाँड़ि बिमुख भवपारग।।

दोहा - बरनाश्रम बंधन निबुकि लखि असार संसार।
आपुहि सर्बोत्तम निरखि जोगिहि मोद अपार॥३८८॥

चौपाई - बिस्वातीत नाउँ सिव जासू। ब्रम्ह परम चिद्रूप बिलासू।।
हौं सोई अस दृढ़ जेहि ग्याना। सो पर सर्वोत्कृष्ट कहाना।।
निहचय अचल निरंतर मानइ। आपुहि आपु सही पहिचानइ।।
संसय सकल दूरि होइ आवा। सो मुनि जीवन्मुकुत कहावा।।
करम परे पद उरुध थिराई। जोगी ब्रम्हरूप ह्वै जाई।।
ब्रम्हा आदि सकल जे देवा। लागि करम पथ नितहीं खेवा।।
ते अस जोगी कँह का करिहीं। नहिं कछु तेहि परोजन भरिहीं।।

दोहा - काया कँह अभिमान तजि भ्रमइ जोगि मन मानि।
भाव राखि निरदुंद मन कर आचरन सुजानि॥३८९॥

छन्द - जेहि दरसन पाई परस सुहाई मुकुत होइँ अग्यानी।
नित निरमल भावा भरम नसावा सो अनुपम बिग्यानी।।
सिव रूप अमंदा सत् चित् आनन्दा समरस करइ प्रकासा।
संजम ब्रत धारइ सैव बिचारइ बंधन सकल बिनासा।।

दोहा - सो बिचरन स्वच्छंद कर बरनाश्रम रजु तोरि।
अद्भुत आतम बैभवी मुकुति पंथ पगु जोरि॥३९०॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह पन्द्रहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

षोडशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

स्थलानां नवकं प्रोक्तं भक्तस्थलसमाश्रयम्।
माहेश्वरस्थले सिद्धं स्थलभेदं वदस्व मे।।१।।

रेणुक उवाच —

माहेश्वरस्थले सन्ति स्थलानि नव तापस।
क्रियागमस्थलं पूर्वं ततो भावागमस्थलम्।।२।।

ज्ञानागमस्थलं चाथ सकायस्थलमीरितम्।
ततोऽकायस्थलं प्रोक्तं परकायस्थलं ततः।।३।।

धर्माचारस्थलं चाथ भावाचारस्थलं ततः।
ज्ञानाचारस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते।।४।।

शिवो हि परमः साक्षात् पूजा तस्य क्रियोच्यते।
तत्परा आगमा यस्मात् तदुक्तोऽयं क्रियागमः।।५।।

प्रकाशते यथा नाग्निररण्यां मथनं विना।
क्रियां विना तथान्तःस्थो न प्रकाशो भवेच्छिवः।।६।।

न यथा विधिलोपः स्यद्यथा देवः प्रसीदति।
यथागमः प्रमाणं स्यत्तथा कर्म समाचरेत्।।७।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

सोरहवाँ परिच्छेद

चौपाई - रिसि अगस्ति बोलेउ मुनिराई। भगत थलहि तुम्ह कहेउ बुझाई।।
भेद ताहि के नौ थल जाना। गननायक जेहि आपु बखाना।।
माहेस्वर थल मँह थल सिद्धा। कहहु मोंहि जे परम प्रसिद्धा।।
तब रेनुक बोलेउ गननायक। सुनहु मुनीस सकल सुखदायक।।
नव थल माहेस्वर थल माहीं। परम प्रसिद्ध सिद्ध थल आहीं।।
पहिले तिन्ह कर नाउँ गिनावौं। पुनि सरूप तिन्ह तोंहिं बतावौं।।

दोहा - **किरियागम भावागम ग्यानागम थल तीनि।**
चउथ सकाय अकाय पुनि छठ परकायहु कीनि।।391।।
सातवँ धर्माचार थल आठवँ भावाचार।
नौवाँ यानाचार थल बुध जन कहहिं बिचार।।392।।

चौपाई - करउँ निरूपन एक एकाई। कुंभज सुनहु सजग मनु लाई।।
सिव जोगी सिव प्रगट जनाई। पूजा ताकर क्रिया कहाई।।
आगम जो सोइ क्रिया बतावा। किरियागम एहि हेतु कहावा।।
अरनि दारु जिमि अगिनि छिपाई। होइ प्रगट नहिं बिना मथाई।।
तिमि अन्तः नित संभु बिलासा। नहिं बिनु क्रिया प्रगट परकासा।।
जेहि ते जग बिधि लोप न होई। जेहि बिधि सिव परसन्न सुखोई।।
जेहि मँह आगम होइ प्रमाना। सोई करम करिअ नहिं आना।।

दोहा - **मानि संभु आदिष्ट बिधि सिव आराधन बुद्धि।**
बिहित करम बुधजन करहिं सदा लहहिं सबु सिद्धि।।393।।

विधिः शिवनियोगोऽयं यस्माद्विहितकर्मणि।
शिवाराधनबुद्ध्यैव निरतः स्याद्विचक्षणः।।८।।

गुरोरादेशमासाद्य पूजयेत् परमेश्वरम्।
पूजिते परमेशाने पूजिताः सर्वदेवताः।।९।।

सदा शिवार्चनोपायसामग्रीव्यग्रमानसः।
शिवयोगरतो योगी मुच्यते नात्र संशयः।।१०।।

अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे ज्ञानकर्मणी।
फलोत्पत्तौ विरक्तस्य तस्मात्तद्द्वयमाचरेत्।।११।।

ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते।
फलाभिसन्धिरहितं तस्मात् कर्म न सन्त्यजेत्।।१२।।

आचार एव सर्वेषामलङ्काराय कल्पते।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।।१३।।

ज्ञानेनाचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनात्।।१४।।

भावचिह्नानि विदुषो यानि सन्ति विरागिणः।
तानि भावागमत्वेन वर्तन्ते सर्वदेहिनाम्।।१५।।

शिवोऽहमिति भावोऽपि शिवतापत्तिकारणम्।
न ज्ञानमात्रं नाचारो भावयुक्तः शिवो भवेत्।।१६।।

ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो ध्यानं तद्भावकारणम्।
तस्माज् ज्ञाते महादेवे ध्यानयुक्तो भवेत्सुधीः।।१७।।

चौपाई - गुरु आदेस सदा सिर लेवा। करउ भगत परमेस्वर सेवा।।
एकहि सिव आराधन कीन्हे। निज प्रसाद सबु देवन्ह दीन्हें।।
सिव पूजा उपकरन लगाई। जो ब्याकुल नित चित्त रमाई।।
निरत भगत सिवजोगहि माँहीं। मुकुत होय कछु संसय नाहीं।।
अंध न देखइ पंगु न चलई। जिमि दुहुँ मिलि कारज सबु करई।।
ग्यान करम तिमि दूनहुँ मानहु। प्रीति परस्पर आश्रित जानहु।।
जोगी फल उत्पत्ति न ध्यावै। ग्यान करम दूनहुँ अपनावै।।

दोहा - ग्यान सिद्ध ग्यानी जिअँहिं पकरि करम कै डोरि।
जद्यपि नहिं फल कामना तदपि करम नहिं छोरि॥394॥

चौपाई - अलंकार नर तनु का होई। सदाचार यहु कह सबु कोई।।
जे नर इहाँ रहित आचारा। तिन्ह के जीवन कौ धिक्कारा।।
सदाचार जुत जो रह ग्याना। ताते सिव अतिसय सुख माना।।
सो ग्यानी निज अन्तिम सांसा। रहिअ सदाचारी सिवदासा।।
जे विद्वान होहिं बैरागी। भाव चिन्ह जिन्ह के संग लागी।।
ते सबु साधारन जन पाँहीं। भावागम प्रमान कहि जाहीं।।

दोहा - कारन प्राप्ति सिवत्व कँह 'हौं सिव हौं' यहु भाव।
नाहिन ग्यान न आचरन सिव केवल जुत भाव॥395॥

चौपाई - बस्तु बस्तुतः कवन स्वरूपा। ग्यान इहै निर्नायक रूपा।।
जो निर्नीत बस्तु कर भावा। तेहि कर कारन ध्यान कहावा।।
महादेव परमारथ जानी। करिअ ध्यान सिव संतत ग्यानी।।
बाहर भीतर सबु दिसि ओरा। परिपूरन परमेस अछोरा।।
पावन परमानन्द अमंदा। पंडितवर भावइ स्वच्छन्दा।।
अरथहीन बानी जस होई। नारी सती हीन पति कोई।।
जथा बुद्धि श्रुति ग्यान ते खीना। तथा क्रिया सिवभाग बिहीना।।

अन्तर्बहिश्च सर्वत्र परिपूर्णं महेश्वरम्।
भावयेत् परमानन्दलब्धये पण्डितोत्तमः।।१८।।

अर्थहीना यथा वाणी पतिहीना यथा सती।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया।।१९।।

चक्षुर्हीनो यथा रूपं न किञ्चिद्वीक्षितुं क्षमः।
भावहीनस्तथा योगी न शिवं द्रष्टुमीश्वरः।।२०।।

भावशुद्धेन मनसा पूजयेत्परमेष्ठिनम्।
भावहीनां न गृह्णाति पूजां सुमहतीमपि।।२१।।

नैरन्तर्येण सम्पन्ने भावे ध्यातुं शिवं प्रति।
तद्भावो जायते यद्वत् क्रिमेः कीटस्य चिन्तनात्।।२२।।

निष्कलङ्कं निराकारं परब्रह्म शिवाभिधम्।
निर्ध्यातुमसमर्थोऽपि तद्विभूतिं विभावयेत्।।२३।।

परस्य ज्ञानचिह्नानि यानि सन्ति शरीरिणाम्।
तानि ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्ते विमुक्तये।।२४।।

भावेन किं फलं पुंसां कर्मणा वा किमिष्यते।
भावकर्मसमायुक्तं ज्ञानमेव विमुक्तिदम्।।२५।।

केवलं कर्ममात्रेण जन्मकोटिशतैरपि।
नात्मनां जायते मुक्तिर्ज्ञानं मुक्तेर्हि कारणम्।।२६।।

ज्ञानहीनं सदा कर्म पुंसां संसारकारणम्।
तदेव ज्ञानयोगेन संसारविनिवर्तकम्।।२७।।

दोहा - नयन दीठि बिनु जथा कोउ रूप न देखन पार।
भाव हीन जोगी तथा सिव नहिं सकइ निहार॥396॥

चौपाई - अंतःकरन बिसुद्ध बनाई। मन मँह सिवभावना बसाई।।
भावइ श्रद्धा बिनय बड़ाई। पूजिअ परमेस्वर चित लाई।।
केतनिउ बड़ पूजा कर कोई। भावहीन जदि नहिं गह सोई।।
चिन्तन भ्रमर करइ कृमि कोउ। सो पुनि भ्रमर भाव मँह होऊ।।
तैसइ सिव प्रति ध्यान निरन्तर। जोगी सिव मँह रहइ न अन्तर।।
परब्रम्ह जेहि सिव अस नामा। निराकार निष्कलुस सुधामा।।
जौ कोउ समरथ धरन न ध्याना। तौ चिंतइ बिभूति भगवाना।।

दोहा - भावागम जुत जोगिजन ग्यानचिन्ह जे धारि।
ते ग्यानागम रूप सों देही मुकुति अधारि॥397॥

चौपाई - भाव मात्र सों फल नहिं काहू। कियेउ करम का होई लाहू।।
ग्यान मुकुति कँह साधन एका। भावकरम जुत सहित बिबेका।।
केवल करम करइ बिधि नाना। कोटि जनम नहिं मुकुति बिधाना।।
ज्ञान बिना कहुँ मुकुति न होई। कोटि उपाय करै बरु कोई।।
एकमात्र कारन सबु कहई। ग्यान जुत्त नर मुक्ती लहई।।
ज्ञानहीन जे करम अपारा। होइँ सदा कारन संसारा।।

दोहा - करम ग्यानजुत होइ जबु उपजइ बिमल बिबेक।
कटइ सकल संसार मल मुकुति करइ अभिसेक॥398॥

चौपाई - जग्य आदि जे क्रियाबिधाना। मानुस करम करइ बिध नाना।।
तिन्ह कर फल सरगादि कहाई। छीन पुन्य सों अवसि नसाई।।
मोच्छ रूप थिर फल अभिलाषे। थिर चित सतत ग्यान अभ्यासे।।
सदा निगम आगम अभ्यासा। बीरसैव सास्त्रादि प्रयासा।।
गुरु प्रसन्न करि बिबिध उपाया। पाइ परम उपदेस निकाया।।

फलं क्रियावतां पुंसां स्वर्गाद्यं नश्वरं यतः।
तस्मात्स्थायिफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव समभ्यसेत्।।२८।।

शास्त्राभ्यासादियत्नेन सद्गुरोरुपदेशतः।
ज्ञानमेव समभ्यस्येत् किमन्येन प्रयोजनम्।।२९।।

ज्ञानं परशिवाद्वैतपरिपाकविनिश्चयः।
येन संसारसम्बन्धविनिवृत्तिर्भवेत् सताम्।।३०।।

शिवात्मकमिदं सर्वं शिवादन्यन्न विद्यते।
शिवोऽहमिति या बुद्धिस्तदेव ज्ञानमुत्तमम्।।३१।।

अन्धो यथा पुरस्थानि वस्तूनि च न पश्यति।
ज्ञानहीनस्तथा देही नात्मस्थं वीक्षते शिवम्।।३२।।

शिवस्य दर्शनात् पुंसां जन्मरोगनिवर्तनम्।
शिवदर्शनमप्याहुः सुलभं ज्ञानचक्षुषाम्।।३३।।

दीपं विना यथा गेहे नान्धकारो निवर्तते।
ज्ञानं विना तथा चित्ते मोहोऽपि न निवर्तते।।३४।।

परस्य या तनुर्ज्ञेयाऽदेहकर्माभिमानिनः।
तया सकायो लोकोऽयं तदात्मत्वनिरूपणात्।।३५।।

कायं विना समस्तानां न क्रिया न च भावना।
न ज्ञानं यत्ततो योगी कायवानेव सञ्चरेत्।।३६।।

शिवैकज्ञानयुक्तस्य योगिनोऽपि महात्मनः।
काययोगेन सिद्ध्यन्ति भोगमोक्षादयः सदा।।३७।।

करइ ग्यान अभ्यास सुहाई। साधन अन्य न होइँ सहाई।।
ग्यान कवन जेहि कर अभ्यासा। सुनु मुनि होइ सकल भ्रम नासा।।
परसिव छाँड़ि अनत कछु नाहीं। यहु दृढ़ निहिचय ग्यान कहाहीं।।

दोहा - **एही कै अभ्यास ते होवै संसृति नास।**
जे सज्जन बैरागजुत ते कर मुकुति प्रयास॥399॥
यहु सबु कुछ सिव रूप है सिव ते पर कछु नाहिं।
'हौं सिव' अस जो बुद्धि सोइ उत्तम ग्यान कहाहि॥400॥
आन्हर बस्तु समच्छ ज्यों कैसेहुँ देखत नाहिं।
त्यों सिव अंतर आपने अग्यानिहि न देखाहिं॥401॥

चौपाई - जौ सिव कौ दरसन होइ जाई। मानुस जनमरोग मिटि जाई।।
जेहि के ग्यान नयन रुचि आही। सिव दरसन दुरलभ कहुँ नाहीं।।
जेहि प्रकार बिनु दीप जराई। घर कै अंधकार नहिं जाई।।
तेहि प्रकार बिनु ग्यान प्रकासा। चित्त मोह नहिं होइ निरासा।।
जो नहिं देह करम अभिमानी। ग्येय सरीर ग्यानथलि मानी।।
तेहि ते लोक सकाय कहावा। सो सरीर आतमा बनावा।।

दोहा - **काय बिना नहिं काहु कै क्रिया भावना ग्यान।**
धरि सरीर जोगी भ्रमइँ जानत सकल जहान॥402॥

चौपाई - जे ग्यानी जग बिसय बिजोगी। धरि सरीर बिचरहिं सिवजोगी।।
कारन इहाँ एकु यहु लेखा। धीर महात्मा ग्यानी देखा।।
सिद्ध न होइँ मोच्छ अरु भोगा। बिना भये काया संजोगा।।
जथा अनल बिनु काठ सहाई। प्रगट न होइ प्रकास लखाई।।
तस जोगी बिनु काय सुपासा। आत्मतत्व नहिं करइ प्रकासा।।
मूर्ति रहित कस पूजिअ देवा। परजोगिहु सरीर सों सेवा।।
उभय पूज्यता कारन एहा। मूरति देव जोगि कै देहा।।

काष्ठं विना यथा वह्निर्जायते न प्रकाशवान्।
मूर्तिं विना तथा योगी नात्मतत्त्वप्रकाशवान्।।३८।।

मूर्त्यात्मनैव देवस्य यथा पूज्यत्वकल्पना।
तथा देहात्मनैवास्य पूज्यत्वं परयोगिनः।।३९।।

निष्कलो हि महादेवः परिपूर्णः सदाशिवः।
जगत्सृष्ट्यादिसंसिद्ध्यै मूर्तिमानेव भासते।।४०।।

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयोऽपि मुमुक्षवः।
कायवन्तो हि कुर्वन्ति तपः सर्वार्थसाधकम्।।४१।।

तपो हि मूलं सर्वासां सिद्धीनां यज्जगत्त्रये।
तपस्तत्कायमूलं हि तस्मात् कायं न सन्त्यजेत्।।४२।।

औपचारिकदेहित्वाज्जगदात्मत्वभावनात्।
मायासम्बन्धराहित्यादकायो हि परः स्मृतः।।४३।।

परस्य देहयोगोऽपि न देहाश्रयविक्रिया।
शिवस्येव यतस्तस्मादकायोऽयं प्रकीर्तितः।।४४।।

परलिङ्गे विलीनस्य परमानन्दचिन्मये।
कुतो देहेन सम्बन्धो देहिवद्भासनं भ्रमः।।४५।।

देहाभिमानहीनस्य शिवभावे स्थितात्मनः।
जगदेतच्छरीरं स्याद् देहेनैकेन का व्यथा।।४६।।

शिवज्ञानैकनिष्ठस्य नाहंकारभवभ्रमः।
न चेन्द्रियभवं दुःखं त्यक्तदेहाभिमानिनः।।४७।।

दोहा - महादेव निष्कल सदा सिव पूरे सब छोर।
सृष्टि हेतु निज देह धरि भासि रह्यो सब ओर॥403॥

चौपाई - ब्रम्हा आदि सकल सुरजूथा। मोच्छकामि मुनि साधु बरूथा।।
धारन करि करि बिबिध सरीरा। सबुहि अरथ साधहिं तपधीरा।।
तीनहुँ लोकसिद्धि जे मानी। तिन्ह अधार तप सबुइ बखानी।।
काय मूल तप निहिचय एहा। करि बहु जतन धरइ यहु देहा।।
जो सकाय परजोगी अहई। गौण रूप काया सो धरई।।
जगत्प्रपंच समच्छ देखाई। आत्मभाव तँह लेइ बनाई।।
नहिं माया संबंध रखाई। एहि कारन अकाय कहि जाई।।

दोहा - सिव समान सिवजोगि कँह नहिं गत देह बिकार।
एहि ते सिद्ध अकाय यहु आगम सुद्ध बिचार॥404॥

चौपाई - चिन्मय परमानन्द सरूपा। परलिंग परम महेस अनूपा।।
तँह जोगी जबु होइ बिलीना। कँह संबंध देह ते हीना।।
तबु जो देह लखै जन सोई। छाँड़ि भरम नहिं दूसर होई।।
छूट्यो जबु सरीर अभिमाना। जोगी जबु सिवभाव समाना।।
तबु तेहि भयउ भावबिस्तारा। बनेउ देह सारा संसारा।।
पुनि का ब्यथा देह मन माहीं। सबु सरीर लखि ताहि सिहाहीं।।
जो नित निरत सिवाद्वय ग्याना। तासु अहंकृत भरम नसाना।।
देहगरब त्यागा जिन होऊ। नहिं तेहि इंद्रिय भव दुख होऊ।।

दोहा - नहिं मानुस नहिं देव हौं यच्छ न राच्छस नाँहि।
'सिव हौं'- अस जो जानई देहकरम तेहि काहि॥405॥

चौपाई - प्रकृति रहै नित बस में जाके। जो माया मारग लघु डाँके।।
सत्य ग्यान सुखरूप बनाई। सिवजोगी परकाय कहाई।।
ग्यान प्रकृष्ट परम आनन्दा। जगमगात जेहि देह अमन्दा।।

न मनुष्यो न देवोऽहं न यक्षो नैव राक्षसः।
शिवोऽहमिति यो बुद्ध्यात् तस्य किं देहकर्मणा।।४८।।

वशीकृतत्वात् प्रकृतेर्मायामार्गातिवर्तनात्।
परकायोऽयमाख्यातः सत्यज्ञानसुखात्मकः।।४९।।

परब्रह्मवपुर्यस्य प्रबोधानन्दभासुरम्।
प्राकृतेन शरीरेण किमेतेनास्य जायते।।५०।।

सम्यज्ज्ञानाग्निसन्दग्धजन्मबीजकलेवरः।
शिवतत्त्वावलम्बी यः परकायः स उच्यते।।५१।।

इन्द्रियाणि मनोवृत्तिवासनाः कर्मसंभवाः।
यत्र यान्ति लयं तेन सकायोऽयं परात्मना।।५२।।

पराहन्तामनुप्राप्य पश्येद् विश्वं चिदात्मकम्।
सदेहोऽतिभ्रमस्तस्य निश्चिता हि शिवात्मता।।५३।।

स्वस्वरूपं चिदाकारं ज्योतिः साक्षाद्विचिन्तयन्।
देहवानपि निर्देहो जीवन्मुक्तो हि साधकः।।५४।।

देहस्तिष्ठतु वा यातु योगिनः स्वत्मबोधिनः।
जीवन्मुक्तिर्भवेत् सद्यश्चिदानन्दप्रकाशिनी।।५५।।

आत्मज्ञानावसानं हि संसारपरिपीडनम्।
सूर्योदयेऽपि किं लोकस्तिमिरेणोपरुध्यते।।५६।।

देहाभिमाननिर्मुक्तः कलातीतपदाश्रयः।
कथं याति परिच्छेदं शरीरेषु महाबुधः।।५७।।

सो सरीर परब्रम्ह सरूपा। सिवजोगी अतिसय अभिरूपा।।
पंचभूतमय थूल सरीरा। अबु केहि काम कहहिं मतिधीरा।।
एहि सरीर जे करम कराहीं। तेहि कर किमपि परोजन नाहीं।।
आसय यहु आगम नित भाखा। रचि जोगी परकाया राखा।।

दोहा - **जनम हेतु बपु जरि गयउ सम्यक् ग्यान कृसानु।**
जेहि सिव तत्वालम्बि कै सो परकाय कहानु॥406॥

चौपाई - इंद्रिय सकल करम उद्भूता। मनोबृत्ति बासना प्रभूता।।
लीन होइँ जेहि थल सबु जाई। हेतु परात्म सकाय कहाई।।
जोगी 'हौं पर सिव' यहु भावइ। सकल बिस्व चिन्मय अनुभावइ।।
सो सदेह समुझब भ्रम भारी। तासु सुथिर सिवरूप निहारी।।
निज सरूप गहि चित् आकारा। अरु साच्छात् जोति निरधारा।।
देहरहित सो जदपि सदेहा। जीवन्मुकुत होइ जन एहा।।
रहइ देह अथवा सो जाऊ। आत्मबोध जेहि जोगी भाऊ।।
तेहि कर जीवन्मुकुति तुरंता। चिदानन्द परकास अनन्ता।।

दोहा - **जबु तक आतमग्यान नहिं तबु तक संसृति क्लेस।**
उए गगन दिनकर कबहुँ जग मँह तम कौ लेस?॥407॥

चौपाई - जो निर्मुक्त देह अभिमाना। कलातीत पद किय अस्थाना।।
सो बड़ बुध रह बंध बिगोई। देह बिसय सीमित कस होई।।
धरम होइ आचरन सुभावा। सिवजोगी परकाय बनावा।।
सोइ धरम जग मंगल हेतू। रचि समाज सिवभावन सेतू।।
सत्य अहिंसा अरु अस्तेया। छमा दया अरु दान अमेया।।
ब्रम्हचरज पूजा जप ध्याना। ए सबु धरम सरूप निधाना।।

दोहा - **आगम सास्त्र कीन्ह बहु सोइ धरम उपदेस।**
जेहि सिव करि राखे प्रथम संग्रह निपुन निदेस॥408॥

तस्यैव परकायस्य समाचारो य इष्यते।
स धर्मः सर्वलोकानामुपकाराय कल्पते।।५८।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दया क्षमा।
दानं पूजा जपो ध्यानमिति धर्मस्य संग्रहः।।५९।।

शिवेन विहितो यस्मादागमैर्धर्मसंग्रहः।
तस्मात्तमाचरन् विद्वान् तत्प्रसादाय कल्पते।।६०।।

अधर्मं न स्पृशेत् किञ्चिद् विहितं धर्ममाचरेत्।
तं च कामविनिर्मुक्तं तमपि ज्ञानपूर्वकम्।।६१।।

आत्मवत् सर्वभूतानि संपश्येद् योगवित्तमः।
जगदेकात्मताभावान्निग्रहादिविरोधतः ।।६२।।

एक एव शिवः साक्षज्जगदेतदिति स्फुटम्।
पश्यतः किं न जायेत ममकारो हि विभ्रमः।।६३।।

धर्म एव समस्तानां यतः संसिद्धिकारणम्।
निस्पृहोऽपि महायोगी धर्ममार्गं च न त्यजेत्।।६४।।

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न संत्यजेत्।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिकाः।।६५।।

सदाचारप्रियः शम्भुः सदाचारेण पूज्यते।
सदाचारं विना तस्य प्रसादो नैव जायते।।६६।।

भाव एवास्य सर्वेषां भावाचारः प्रकीर्तितः।
भावो मानसचेष्टात्मा परिपूर्णः शिवाश्रयः।।६७।।

तेहि कारन तिन्ह आचरहिं जे विद्वान महान।
संभु कृपा तापर करहिं होइ प्रसन्न भगवान॥409॥

चौपाई - अधरम परस करइ नहिं काहू। सास्त्र बिहित सो धरम निबाहू।।
फल कँह चाह तहाँ नहिं लावै। बिना ग्यान नहिं हाथ लगावै।।
जदि निहकाम करम कोउ करई। अनायास आपुहि सो फरई।।
आपु समान लखइ सबु प्रानी। सकल सृष्टि संकर मय जानी।।
जोगी साधक सिद्ध सयाना। एकात्मता करइ संधाना।।
निग्रह आदि भाव बिलगावा। जोगी समुझि परम सुख पावा।।
एकहि सिव यहु जगत प्रंपचू। फुटइ देख नहिं संसय रंचू।।
अस जोगी इहँ का नहिं पावा। ई ममकार न केहि भरमावा।।

दोहा - धरम सकल संसिद्ध कहँ हेतु एक बेजोड़।
निस्पृह पुनि जोगी महा मारग धरम न छोड़॥410॥

चौपाई - ग्यानामृत ते तृप्ती कितहूँ। जोगी धरम न छाँड़िअ तबहूँ।।
बड़कन कै लखि लखि आचारा। मानुस अनुकर एहि संसारा।।
संभुहि सदाचार प्रिय लागइ। सदाचार जुत पूजा छाजइ।।
सदाचार बिनु संभु भवेसा। होइ नहिं सकहिं प्रसन्न महेसा।।
धर्माचारथली कँह भावा। सबु कँह भावाचार कहावा।।
भाव बिचार क्रिया मन माँहीं। मानस चेष्टा भाव कहाहीं।।
परिपूरन यहु तबइ कहाई। जबु सिव कँह आश्रित करि जाई।।

दोहा - करम भावना विहित जो परम पवित्र कहाइ।
एहि कारन जुत भावना परधरमहि अपनाइ॥411॥
कर्ता प्रेरक अरु करम तीनहुँ हैं सिव रूप।
अस मन लावइ भावना तबु होइ करम अनूप॥412॥

भावनाविहितं कर्म पावनादपि पावनम्।
तस्माद् भावनया युक्तं परधर्मं समाचरेत्।।६८।।

भावेन हि मनःशुद्धिर्भावशुद्धिश्च कर्मणा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा योगी भावं न सन्त्यजेत्।।६९।।

शिवभावनया सर्वं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
कुर्वन्नपि महायोगी गुणदोषैर्न बाध्यते।।७०।।

अन्तः प्रकाशमानस्य संवित्सूर्यस्य सन्ततम्।
भावेन यदुपस्थानं तत्सन्ध्यावन्दनं विदुः।।७१।।

आत्मज्योतिषि सर्वेषां विषयाणां समर्पणम्।
अन्तर्मुखेन भावेन होमकर्मेति गीयते।।७२।।

भावयेत् सर्वकर्माणि नित्यनैमित्तिकानि च।
शिवप्रीतिकराण्येव सङ्गराहित्यसिद्धये।।७३।।

शिवे निवेश्य सकलं कार्याकार्यं विवेकतः।
वर्तते यो महाभागः स सङ्गरहितो भवेत्।।७४।।

आत्मानमखिलं वस्तु शिवमानन्दचिन्मयम्।
एकभावेन सततं संपश्यन्नेव पश्यति।।७५।।

अस्य ज्ञानसमाचारो योगिनः सर्वदेहिनाम्।
ज्ञानाचारो यदुक्तोऽयं ज्ञानाचारः स कथ्यते।।७६।।

शिवाद्वैतपरं ज्ञानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।
सिद्धेन वाप्यसिद्धेन फलं ज्ञानान्तरेण किम्।।७७।।

चौपाई - मन कै सुद्धि भाव ते आवइ। भाव सुद्धि सिव करम बनावइ।।
अइसन करि बिचार मन माँही। जोगी भाव कबहुँ तज नाहीं।।
सिव भावना सहित सब करमा। नित्य निमित्त मानि निज धरमा।।
महाजोगि जौ संतत करई। तेहि के पुन्यपाप नहिं लगई।।
अन्तः थित जो संवित् दिनकर। होइ प्रकासित तहाँ निरंतर।।
उपस्थान सिवभाव सहाई। सोइ संध्या बदंन कहि जाई।।

दोहा - आतमजोति चिदग्नि मँह अन्तरमुख करि भाव।
बिसय समरपन आहुती होम करम कहि जाव।।413।।

चौपाई - साधक जदि चाहै संसारा। सकल मोह आसक्ति निवारा।।
नित्य निमित्त आदि सबु करमा। समुझै सिवहि प्रसादन धरमा।।
ते साधक निहचय बड़भागी। जिन्ह जग सकल बासना त्यागी।।
गहि बिबेक निज काज अकाजू। करहिं समरपन सिव पहिं छाजू।।
करइ जे अस सिव भाव बनाई। सो आसक्तिरहित होइ जाई।।
चिन्मय सिव आनंद सरूपा। आपुहि सकल बिसय भव कूपा।।
एक भाव जो देख पदारथ। सोइ सिवद्रष्टा होइ जथारथ।।

दोहा - जोगी भावाचार जुत जो कर ग्यानाचार।
सबु कँह ग्यानाचार सोइ सो थल ग्यानाचार।।414।।

चौपाई - सिव अद्वैत परक जो ज्ञाना। सोइ जथारथ सबु बुध माना।।
सिद्ध असिद्ध ग्यान कोउ होऊ। ताहि भजे नहिं कछु फल सोऊ।।
निरमल यहु सिवज्ञान कहावा। जो भज एहि सो मुकुती पावा।।
ग्यान मलिन जो रागहि द्वेषहि। कारन सो संसार बिसेषहि।।
जो परतत्व प्रकासक सोहा। महाग्यान परिपूरन रोहा।।
एहि आधार जो चलि आचारा। आगम कह सो ग्यानाचारा।।

निर्मलं हि शिवज्ञानं निःश्रेयसकरं परम्।
रागद्वेषादिकलुषं भूयः संसृतिकारणम्।।७८।।

परिपूर्णं महाज्ञानं परतत्त्वप्रकाशकम्।
अवलम्ब्य प्रवृत्तो यो ज्ञानाचारः स उच्यते।।७९।।

निर्विकल्पे परे धाम्नि निष्कले शिवनामनि।
ज्ञानेन योजयेत् सर्वं ज्ञानाचारी प्रकीर्तितः।।८०।।

ज्ञानं मुक्तिप्रदं प्राप्य गुरुदृष्टिप्रसादतः।
कः कुर्यात् कर्मकार्पण्ये वाञ्छां संसारवर्धने।।८१।।

कर्म ज्ञानाग्निना दग्धं न प्ररोहेत् कथञ्चन।
यदाहुः संसृतेर्मूलं प्रवाहानुगतं बुधाः।।८२।।

ज्ञानेन हीनः पुरुषः कर्मणा बद्धयते सदा।
ज्ञानिनः कर्मसङ्कल्पा भवन्ति किल निष्फलाः।।८३।।

शुद्धाचारे शुद्धभावो विवेकी ज्योतिः पश्यन् सर्वतश्चैवमेकम्।
ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चो जीवन्मुक्तश्चेष्टते दिव्ययोगी।।८४।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गतमाहेश्वरस्थले क्रियागमस्थलादि-नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम षोडशः परिच्छेदः ।।१६।।

दोहा - **निरबिकल्प सिव निष्कल सास्त्र प्रथित पर धाम।**
ग्यान सहित सबु जोरि तेहि ग्यानाचारी नाम॥415॥

चौपाई - होइ गुरु कृपा दृष्टि कौ भोजन। पाइ ग्यान दृढ़ मुकुती साधन।।
कौन करै इच्छा संजुत मन। करम कृपिन संसार बढ़ावन।।
अति अनादि कालहु चलि आई। कारन जो संसार कहाई।।
नाम करम जेहि बुध जन कहहीं। जासु जाल प्रति जनमहि परहीं।।
ग्यान अगिनि जरि भयउ सो छारा। तबु न कबहुँ अँकुरइ संसारा।।
ग्यान हीन नर बारम्बारा। बँधइ करम सों नहिं छुटकारा।।

दोहा - **करम संकलप होइ जो ग्यानिन्ह लगि अबिबेकु।**
सो मिथ्या मिटि जाइ पुनि लागहि फल नहिं एकु॥416॥

छन्द - अति निरमल ज्ञानाचार सुजाना धीरज सहित बिबेका।
पुनि सुद्ध सुभावा मनहिं बनावा सबु थल निरखइ एका।।
जो दिव्य अनूपा सिवसम रूपा भासइ जोति अमंदा।
आश्रय करि ग्याना प्रकृति बिधाना नासइ संसृति फंदा।।

दोहा - **एहि बिधि जीवन्मुकुत होइ करम बीज निज दाहि।**
दिब्यजोगि ब्यौहरइ नित लौकिक जन जस चाहि॥417॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह सोरहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

सप्तदशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

स्थलानि तानि चोक्तानि यानि माहेश्वरस्थले।
वदस्व स्थलभेदं मे प्रसादिस्थलसंश्रितम्।।१।।

रेणुक उवाच —

स्थलभेदा नव प्रोक्ताः प्रसादिस्थलसंश्रिताः।
कायानुग्रहणं पूर्वमिन्द्रियानुग्रहं ततः।।२।।

प्राणानुग्रहणं पश्चात् ततः कायार्पितं मतम्।
करणार्पितमाख्यातं ततो भावार्पितं मतम्।।३।।

शिष्यस्थलं ततः प्रोक्तं शुश्रूषास्थलमेव च।
ततः सेव्यस्थलं चैषां क्रमशः शृणु लक्षणम्।।४।।

अनुगृह्णाति यल्लोकान् स्वकायं दर्शयन्नसौ।
तस्मादेष समाख्यातः कायानुग्रहनामकः।।५।।

यथा शिवोऽनुगृह्णाति मूर्तिमाविश्य देहिनः।
तथा योगी शरीरस्थः सर्वानुग्राहको भवेत्।।६।।

शिवः शरीरयोगेऽपि यथा सङ्गविवर्जितः।
तथा योगी शरीरस्थो निःसङ्गो वर्तते सदा।।७।।

शिवभावनया युक्तः स्थिरया निर्विकल्पया।
शिवो भवति निर्धूतमायावेशपरिप्लवः।।८।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

सतरहवाँ परिच्छेद

चौपाई - मुनि अगस्ति बोलेउ अति धीरा। गननायक सों गिरा गंभीरा।।
जे माहेश्वर थल उर राखे। ते सबु आपु मोंहि सन भाषे।।
अबु प्रसादिथल संश्रित नाना। जे थल तिन्हकर करहु बखाना।।
मुनि सन रेनुक कहेउ बुझाई। भेद प्रसादिथलन्हिं बिलगाई।।
आगम तँह नौ भेद बतावा। सो सबु संभु कृपा उर आवा।।
क्रम सों तिन्ह कर नाँउँ गिनावौं। पुनि तिन्हकर लच्छन बतलावौं।।

दोहा - कायानुग्रह थल पहिल इन्द्रियानुग्रह फेरि।
प्रानानुग्रह तीसर पुनि कायार्पित हेरि।।418।।
पाँचव करनार्पित कहेउ भावार्पित छठ आइ।
थलक्रम सिष्य सुश्रूषा नौवाँ सेव्य गिनाइ।।419।।

चौपाई - सिवजोगी जुत ग्यानाचारा। परब्रम्ह जेहि कह संसारा।।
सो काया निज दरस कराई। करइ अनुग्रह लोक लगाई।।
कायानुग्रह थल एहि भाँती। ताहि कहत नहिं जीह थिराती।।
सिव जीवहि जस करइ अनुग्रह। आपु प्रबिसि तिन मूरति बिग्रह।।
तस जोगी निज दिब्य सरीरा। थित होइ करइ अनुग्रह धीरा।।
जथा संभु निज धारि सरीरा। अनासक्त रह सदा गँभीरा।।
जोगी तथा धरे निज काया। अनासक्त रह सदा अमाया।।

दोहा - थिर अरु रहित बिकल्प सों सिवभावना सहाइ।
मायावेस उपद्रव रहित सो सिव होइ जाइ।।420।।

चित्तवृत्तिषु लीनासु शिवे चित्सुखसागरे।
अविद्याकल्पितं वस्तु नान्यत् पश्यति संयमी।।९।।

नेदं रजतमित्युक्ते यथा शुक्तिः प्रकाशते।
नेदं जगदिति ज्ञाते शिवतत्त्वं प्रकाशते।।१०।।

यथा स्वप्नकृतं वस्तु प्रबोधेनैव शाम्यति।
तथा शिवस्य विज्ञाने संसारं नैव पश्यति।।११।।

अज्ञानमेव सर्वेषां संसारभ्रमकारणम्।
तन्निवृत्तौ कथं भूयः संसारभ्रमदर्शनम्।।१२।।

गलिताहङ्कृतिग्रन्थिः क्रीडाकल्पितविग्रहः।
जीवन्मुक्तश्चरेद्योगी देहिवन्निरुपाधिकः।।१३।।

दर्शनात्परकायस्य करणानां विवेकतः।
इन्द्रियानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्ववेदिभिः।।१४।।

इन्द्रियाणां समस्तानां स्वार्थेषु सति सङ्गमे।
रागो वा जायते द्वेषस्तौ योगी परिवर्जयेत्।।१२।।

इन्द्रियाणां बहिर्वृत्तिः प्रपञ्चस्य प्रकाशिनी।
अन्तः शिवे समावेशो निष्प्रपञ्चस्य कारणम्।।१६।।

क्षणमन्तः शिवं पश्यन् केवलेनैव चेतसा।
बाह्यार्थानामनुभवं क्षणं कुर्वन् दृगादिभिः।।१७।।

सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियविहीनवान्।
शिवाहितमना योगी शिवं पश्यति नापरम्।।१८।।

चौपाई - चिदानंदरसजलधि समाना। परमेस्वर महेस सबु जाना।।
सगरी चित्तबृत्ति तँह जाई। जबहिं जथाबिधि जाहिं समाई।।
तबु संजम जम नियम निधाना। सिवजोगी सरूप कल्याना।।
रचित अबिद्या बस्तु न देखइ। सकल जगत सो सिवमय पेखइ।।
अइसन कबहुँ रजत नहिं होती। कहे जथा सीपी परतीती।।
तइसँइ यहु नाहिन संसारा। जाने पर सिवतत्व निखारा।।
सो मिथ्या जो सपन रचाई। जागे नहिं सो बस्तु रहाई।।
समुझि परइ जबु सिव बिग्याना। तबइ झूठ संसार नसाना।।

दोहा - कारन भ्रम संसार कँह एकमात्र अग्यान।
तेहि के मिटे कहहु पुनि जगभ्रम कहाँ देखान?॥421॥

चौपाई - नाउँ अमुक हौं मोर सरीरा। अहंकार कँह गाँठ गभीरा।।
जबु यहु गाँठ सुभाव नसावा। लीला हेतु देह अपनावा।।
पुनि यहु मानस भाव दिढ़ाई। संतत रहित उपाधि बनाई।।
जीवन्मुक्त होइ सो जोगी। जग बिचरइ ब्यौहरइ अभोगी।।
दरसन तेहि जोगी परकाया। सुठि बिबेक जे करन निकाया।।
तत्वग्यान करतल गत जाही। कहहि इन्द्रियानुग्रह ताही।।
इंद्रिय निज निज बिसय गहाई। उपजइ रागद्वेष समुदाई।।
जोगी करउ जतन पुनि भारी। रागद्वेष दुहुँ देइ पवारी।।

दोहा - रचइ नित्य परपंच बहु इंद्रिय बाह्य प्रबृत्ति।
जदि सोइ अन्तः सिव लगइ होइ प्रपंच निबृत्ति॥422॥

चौपाई - चित्त समाहित केवल करई। छन भरि सिव अन्तर निरुअरई।।
बाह्य बिसय छन भरि अनुभवई। नयन आदि इंद्रिय बस धरई।।
सो जोगी इंद्रिय आरूढ़ा। जद्यपि सो तेहि रहित अनूढ़ा।।
सिवहि समरपित मन चित लाई। देखइ सिवहि न कछु अलगाई।।

न जरा मरणं नास्ति न पिपासा न च क्षुधा।
शिवाहितेन्द्रियस्यास्य निर्मानस्य महात्मनः।।१९।।

मनो यत्र प्रवर्तेत तत्र सर्वेन्द्रियस्थितिः।
शिवे मनसि सल्लीने क्व चेन्द्रियविचारणा।।२०।।

यद्यत् पश्यन् दृशा योगी मनसा चिन्तयत्यपि।
तत्तत् सर्वं शिवाकारं संविद्रूपं प्रकाशते।।२१।।

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी।
योजयेत् स शिवः साक्षात् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः।।२२।।

सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च बहिरन्तः शिवं यजन्।
स्वच्छन्दचारी सर्वत्र सुखी भवति संयमी।।२३।।

शिवस्य परकायस्य यत् तात्पर्यावलोकनम्।
तत्प्राणानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्वदर्शिभिः।।२४।।

प्राणो यस्य लयं याति शिवे परमकारणे।
कुतस्तस्येन्द्रियस्फूर्तिः कुतः संसारदर्शनम्।।२५।।

करणेषु निवृत्तेषु स्वार्थसङ्गात् प्रयत्नतः।
तैः समं प्राणमारोप्य स्वान्ते शान्तमतिः स्वयम्।।२६।।

शान्तत्वात् प्राणवृत्तीनां मनः शाम्यति वृत्तिभिः।
तच्छान्तौ योगिनां किञ्चिच्छिवादन्यन्न दृश्यते।।२७।।

प्राण एव मनुष्याणां देहधारणकारणम्।
तदाधारः शिवः प्रोक्तः सर्वकारणकारणम्।।२८।।

सिव तजि इंद्रिय बिसय न आना। जागि महातम गत अभिमाना।।
नहिं तेहि मरन बुढ़ापा आवइ। भूख पिआस न ताहि सतावइ।।
जहाँ जाइ मन तहहिं बढ़ाई। इंद्रिय निज निज बिसय लगाई।।
मन जबु सिव मँह भा संल्लीना। का गति करन अधार बिहीना।।

दोहा - **सिव जोगी जोइ जोइ लखै मनहूँ ध्यावै सोइ।**
सिवाकार संबित् सकल सोइ सोइ भासित होइ॥423॥

चौपाई - इंद्रिय सहित प्रान मन आनी। करइ समाहित जो सिवग्यानी।।
जामें पुनि एहि जोजन करई। सो सिव रूप बस्तु सबु धरई।।
भरम न तनिक तहाँ रह कोई। सकल जगत सिवमय तबु होई।।
सिवजोगी संजमी पुनीता। इंद्रिय साधि सुभाव प्रनीता।।
अन्तर बहि सर्बत्र समाना। जजन करइ सिव कँह बिधि नाना।।
सिव जोगी सबु काल अनन्दा। भ्रमन करइ सर्बत्र सुछन्दा।।

दोहा - **इंद्रियानुग्रहसम्पन्न सिवजोगी परकाय।**
तात्पर्यावलोकनहु प्राननिरोध कहाय॥424॥
प्रानानुग्रह कहहिं एहि आगमसम्मत ग्यान।
सबुइ मनीषी साधुजन जिन्हहिं तत्वपहिचान॥425॥

चौपाई - कारन परम संभु अबिनासी। तेंहि जबु लीन प्रान घटबासी।।
तबु कँह तस इंद्रिय ब्यापारा। कँह देखाइ भौतिक संसारा।।
कुंभक आदि उपाय प्रबृत्ता। इंद्रिय निज निज बिसय निबृत्ता।।
तबु करि करन प्रान एक रूपा। जोगी होइ सान्त मति रूपा।।
प्रानबृत्ति के सान्त भये ते। सान्त होइ मन बृत्ति लये ते।।
जब मन परम सान्त होइ जाई। जोगिन्ह सिव तजि कछु न देखाई।।

दोहा - **प्रानहि कारन मनुज कँह धारन करन सरीर।**
सिव कारन कँह कारने धारहिं प्रान गभीर॥426॥

निराधारः शिवः साक्षात् प्राणस्तेन प्रतिष्ठितः।
तदाधारा तनुर्ज्ञेयः जीवो येनैव चेष्टते।।२९।।

शिवे प्राणो विलीनोऽपि योगिनो योगमार्गतः।
स्वशक्तिवासनायोगाद् धारयत्येव विग्रहम्।।३०।।

स चाभ्यासवशाद्भूयः सर्वतत्त्वातिवर्तिनि।
निष्कलङ्के निराकारे निरस्ताशेषविक्लवे।।३१।।

चिद्विलासपरिस्फूर्तिपरिपूर्णसुखाह्वये।
शिवे विलीनः सर्वात्मा योगी चलति न क्वचित्।।३२।।

प्रध्वस्तवासनासङ्गात् प्राणवृत्तिपरिक्षयात्।
शिवैकीभूतसर्वात्मा स्थाणुवद्भाति संयमी।।३३।।

शिवस्य पररूपस्य सर्वानुग्राहिणोऽर्चने।
त्यागो देहाभिमानस्य कायार्पितमुदाहृतम्।।३४।।

यदा योगी निजं देहं शिवाय विनिवेदयेत्।
तदा भवति तद्रूपं शिवरूपं न संशयः।।३५।।

इन्द्रियप्रीतिहेतूनि विषयासङ्गजानि च।
सुखानि सुखचिद्रूपे शिवयोगी निवेदयेत्।।३६।।

दर्शनात् स्पर्शनात् भुक्तेः श्रवणाद् घ्राणनादपि।
विषयेभ्यो यदुत्पन्नं शिवे तत्सुखमर्पयेत्।।३७।।

देहद्वारेण यद्यत् स्यात् सुखं प्रासङ्गमात्मनः।
तत्तन्निवेदयन् शम्भोर्योगी भवति निर्मलः।।३८।।

चौपाई - सिव आधार कबहुँ कछु नाहीं। निराधार सिव नित्य प्रमानी।।
सिव संसार अधार कहाई। सिव राखहिं तेहि प्रान टिकाई।।
पुनि यहु प्रान देह आधारा। प्रान बिना को देह संभारा?।।
प्रान होइ सबु जीव सहाई। प्रानहि ते किरिया भरिपाई।।
सिवजोगी कँह प्रान बिलीना। सिव मँह मारग जोग अधीना।।
तदपि प्रान निज सक्ति बासना। जोग ते करइ सरीर धारना।।
प्रानबायु पुनि निज अभ्यासा। रहइ निरन्तर सिव संकासा।।
सबुइ तत्व ते बढ़ि सिव आहे। निष्कलंक आकार बिगाहे।।
बाधा ताहि न ब्यापइ काहू। चलइ सतत चित् सक्ति प्रबाहू।।
चिद्विलास जँह फुरइ अमंदा। तेहि ते परिपूरन सुखकंदा।।

दोहा - जोगी सो सर्बातमा ऐसे सिव मँह लीन।
होइ अचल थिर रहइ पुनि ब्यापक अमित अहीन॥427॥

चौपाई - भए बिनष्ट बासनासक्ती। बिरमित भये प्रान कँह बृत्ती।।
सिव मिलि एकाकार बनाई। सर्वात्मा सिव जोगि कहाई।।
सोहै सकल भाँति तबु सोई। सिव परयाय थानु निभ होई।।
सिव पररूप अनुग्रहकारी। तेहि कर सेवा आपु बिसारी।।
करइ जो त्यागि देह अभिमाना। सो कायार्पित थल सबु माना।।
जबु जोगी सिव पूजन करई। ताहि स्वेदह समरपन करई।।
तबु ताकर सो देह सरूपा। होइ असंसय सुभ सिवरूपा।।
इन्द्रिय कँह आनन्द दिआवै। बिसयासक्ति जाहि उपजावै।।
सो सबु सुख अरपइ सिव जोगी। चिदानन्द मय सिवहि बियोगी।।

दोहा - दरस परस अरु भुगुति ते सूँघे सुने जे होय।
बिसयन्ह जे सुख ऊपजै सिवहि समरपय सोय॥428॥

चौपाई - देह द्वार इंद्रिय समुदाया। तेहि माध्यम सुख भीतर आया।।

आसञ्जनं समस्तानां करणानां परात्परे।
शिवे यत् तदिदं प्रोक्तं करणार्पितमागमे।।३९।।

यद्यत्करणमालम्ब्य भुङ्क्ते विषयजं सुखम्।
तत्तच्छिवे समर्प्यैष करणार्पक उच्यते।।४०।।

अहङ्कारमदोद्रिक्तमन्तःकरणवारणम् ।
बध्नीयाद् यः शिवालाने स धीरः सर्वसिद्धिमान्।।४१।।

इन्द्रियाणां समस्तानां मनः प्रथममुच्यते।
वशीकृते शिवे तस्मिन् किमन्यैस्तद्वशानुगैः।।४२।।

इन्द्रियाणां वशीकारो निवृत्तिरिति गीयते।
लक्ष्यीकृते शिवे तेषां कृतः संसारगाहनम्।।४३।।

संसारविषकान्तारसमुच्छेदकुठारिका ।
उपशान्तिर्भवेत् पुंसामिन्द्रियाणां वशीकृतौ।।४४।।

इन्द्रियैरेव जायन्ते पापानि सुकृतानि च।
तेषां समर्पणादीशे कुतः कर्मनिबन्धनम्।।४५।।

प्रकाशमाने चिद्वह्नौ बहिरन्तर्जगन्मये।
समर्प्य विषयान् सर्वान् मुक्तवज्जायते जनः।।४६।।

चित्तद्रव्यं समादाय जगज्जातं महाहविः।
चिद्वह्नौ जुह्वतामन्तः कुतः संसारविप्लवः।।४७।।

आत्मज्योतिषि चिद्रूपे प्राणवायुनिबोधिते।
जुह्वन् समस्तविषयान् तन्मयो भवति ध्रुवम्।।४८।।

अवसि आतमा सो सुख लहई। आगम लोक सबुइ यहु कहई।।
सो सुख सिव पँहिं भोग लगावा। जोगी सबु बिधि निरमल भावा।।
परहू ते पर परम बनावा। महादेव सिवलिंग सुहावा।।
तेहि सिवलिंग करहिं संजोजन। इंद्रिय सकल बिसिष्ट परोजन।।
करनार्पित थल इहै कहावा। सैवागम मँह अस सुठि गावा।।

दोहा - जेहि जेहि करन अलम्बि करि करइ बिसय सुख भोग।
तेहि तेहि करन समर्पि सिव यहु करनार्पक जोग।।429।।

चौपाई - अहंकार मदमत्त सुसाजा। अन्तःकरन रूप गजराजा।।
सिव अलान जो बाँधइ बीरा। सकल सिद्धि स्वामी सो धीरा।।
इंद्रिय सकल बिसयगत नाना। परम मुख्य तिन्ह मँह मनु माना।।
सो जबु सिव कँह बस होइ जाई। तेहि बस करनन्ह कहाँ कहाई।।
बसीकार इंद्रिय समुदाई। बुध जन सों निबृत्ति कहि जाई।।
जबहिं कीन्ह तिन्ह सबिधि सिवार्पन। करहिं कहाँ ते जगत निमज्जन।।

दोहा - जगत बिसम बिस कानन काटन कठिन कुठार।
उपसांतिहि नर पावई किए करन अधिकार।।430।।

चौपाई - पाप पुन्य जे जगत कहावा। ते इंद्रिय कारन उपजावा।।
इंद्रिय भईं समरपित ईसा। जाहिं करम बंधन नर खीसा।।
बाहेर अन्तर जगत लहाहीं। चित्पावक प्रज्वलित सोहाहीं।।
तेहि मँह करि सबु बिसय समरपन। जीवन्मुक्त करइ नर बिचरन।।
त्रिगुनात्मक संसार समूहा। चित्त द्रव्य अरु करि हबि ढूहा।।
चित्पावक मँह आहुति डारै। जगत उपद्रव खोदि पवारै।।

दोहा - प्रानबायु ते प्रज्वलित चिन्मय आतमजोत।
बिसय होम तँह करत नर निहिचय सिवमय होत।।431।।

इन्द्रियाणि समस्तानि शरीरं भोगसाधनम्।
शिवपूजाङ्गभावेन भावयन् मुक्तिमाप्नुयात्।।४९।।

शिवे निश्चलभावेन भावानां यत्समर्पणम्।
भावार्पितमिदं प्रोक्तं शिवसद्भाववेदिभिः।।५०।।

चित्तस्थसकलार्थानां मननं यत्तु मानसे।
तदर्पणं शिवे साक्षन्मानसो भाव उच्यते।।५१।।

भाव एव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः।
भावशुद्धौ भवेन्मुक्तिर्विपरीते तु संसृतिः।।५२।।

भावस्य शुद्धिराख्याता शिवोऽहमिति योजना।
विपरीतसमायोगे कुतो दुःखनिवर्तनम्।।५३।।

भोक्ता भोग्यं भोजयिता सर्वमेतच्चराचरम्।
भावयन् शिवरूपेण शिवो भवति वस्तुतः।।५४।।

मिथ्येति भावयन् विश्वं विश्वातीतं शिवं स्मरन्।
सत्तानन्दचिदाकारं कथं बद्धुमिहार्हति।।५५।।

सर्वं कर्मार्चनं शम्भोर्वचनं तस्य कीर्तनम्।
इति भावयतो नित्यं कथं स्यात्कर्मबन्धनम्।।५६।।

सर्वेन्द्रियगतं सौख्यं दुःखं वा कर्मसम्भवम्।
शिवार्थं भावयन् योगी जीवन्मुक्तो भविष्यति।।५७।।

शासनीयो भवेद्यस्तु परकायेन सर्वदा।
तत्प्रसादात्तु मोक्षार्थी स शिष्य इति कीर्तितः।।५८।।

चौपाई - निज बस करि इंद्रिय समुदाया। भोगहि साधन नस्वर काया।।
सिव पूजा कँह अंग जो भावइ। सो नर अवसि मोच्छ धन पावइ।।
जो सिवलिंग बिसय मन लाई। अबिचल दृढ़ भावना बनाई।।
वँह पुनि करइ समरपन भावा। चित्त अन्यथा कछु नहिं लावा।।
एहि थल भावार्पित सबु कहहीं। सिव सद्भावहि जानत अहहीं।।
बिसय चित्तगत संतत आना। मन मँह मनन होइ बिधि नाना।।
तासु समरपन सिव मँह होई। मानस भाव कहै सबु कोई।।

दोहा - कारन बन्धन मोच्छ कँह नर कै केवल भाव।
भावसुद्धि तौ मोच्छप्रद उलटे बंध लगाव॥432॥

चौपाई - सिव संबंध करै जो कोई। तेहि ते बड़ भागी को होई।।
'सिव हौं स्वयं' जोजना ऐसी। भाव सुद्धि नहिं दूसर वैसी।।
जदि एहि समाजोग बिपरीता। दुक्ख कहाँ कब तेहि कर बीता।।
बिसय भोग्य सबु भोक्ता जीवा। भोजयिता परमेस्वर सीवा।।
सकल चराचर यहु संसारा। एहि सबु जो सिवरूप बिचारा।।
सो प्रत्यच्छ संभु सिव जोगी। भव मँह रहि भवरोग निरागी।।
यहु संसार मृषा करि जाना। बिस्वातीत सुमिरि भगवाना।।
सिव सच्चिदानन्द गुन गाई। कबहुँ न सो भवफंद फँसाई।।

दोहा - सबुइ करम सिव अर्चना किरतन बचनहु तासु।
करम फाँस काहे फँसइ मन सिवभावन जासु॥433॥

चौपाई - सुख दुख सकल करम फल नाना। सबु इन्द्रिय गत बिसय बिधाना।।
सकल करम फल सिवहि बिभावइ। जोगी जीवन्मुकुत कहावइ।।
सिव जोगी परकाय कहावा। तेहि ते सासनीय होइ आवा।।
तेहि कँह कृपा मोच्छ जो चाहइ। उहै सिष्य एहि जग मँह आहइ।।

भावो यस्य स्थिरो नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।
गुरौ निजे गुणोदारे स शिष्य इति गीयते।।५९।।

शान्तो दान्तस्तपश्शीलः सत्यवाक् समदर्शनः।
गुरौ शिवे समानस्थः स शिष्याणामिहोत्तमः।।६०।।

गुरुमेव शिवं पश्येच्छिवमेव गुरुं तथा।
नैतयोरन्तरं किञ्चिद्विजानीयाद्विचक्षणः।।६१।।

शिवाचारे शिवध्याने शिवज्ञाने च निर्मले।
गुरोरादेशमात्रेण परां निष्ठामवाप्नुयात्।।६२।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूतं मायासिन्धुं महत्तरम्।
गुरोः कवलयत्याशु कटाक्षवडवानलः।।६३।।

गुरोः कटाक्षवेधेन शिवो भवति मानवः।
रसवेधाद् यथा लोहो हेमतां प्रतिपद्यते।।६४।।

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां ज्ञानमेव प्रकाशयन्।
शिवासक्तेन मनसा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।।६५।।

शिवादन्यज्जगन्मिथ्या शिवः संवित्स्वरूपकः।
शिवस्त्वमिति निर्दिष्टो गुरुणा मुक्त एव सः।।६६।।

गुरोर्लब्ध्वा महाज्ञानं संसारामयभेषजम्।
मोदते यः सुखी शान्तः स जीवन्मुक्त एव हि।।६७।।

बोध्यमानः स गुरुणा परकायेन सर्वदा।
तच्छुश्रूषारतः शिष्यः शुश्रूषुरिति कीर्त्यते।।६८।।

मन बानी सरीर निज करमा। नित्य भाव थिर मानइ धरमा।।
जेहि के गुन उदार गुरु पाहीं। भगति भाव ते सिष्य कहाहीं।।

दोहा - **सांत दांत तपसील सुचि सत्यबचन समभाव।**
गुरु कौ सिव करि पूजिअत उत्तम सिष्य कहाव॥434॥

चौपाई - जो गुरु सो सिव अस जो देखइ। अरु सिव कौ ही गुरु करि लेखइ।।
एहि दूनउँ मँह भेद न कोई। जानइ सिष्य बिचच्छन सोई।।
सो गुनवान सिष्य सिवध्याना। सिवाचार निरमल सिवग्याना।।
गुरु अग्यां गहि इन्हके बारे। अतिसय निष्ठा पाव अगारे।।
गुरु कँह कृपा कटाच्छ सरूपा। बडवानल अति घोर अनूपा।।
माया सागर तुरत सुखावइ। जेहि ब्रम्हांड बुद्द उपजावइ।।

दोहा - **जस पारद कँह बेध ते लोहा सुबरन होय।**
तस गुरु कृपा कटाच्छ ते बेधे नर सिव होय॥435॥

चौपाई - गुरु अग्यां कबहुँ नहिं नाँघइ। सिर धरि सदा अनुग्रह माँगइ।।
अग्यां धरइ सिष्य गुरु पाहीं। मन तल्लीन रहइ सिव माँहीं।।
पावै सिवाद्वैत सो ग्याना। ताके करगत सिद्धि निधाना।।
सिव ते इतर जगत सब झूठा। संबित् रूप महेस अनूठा।।
'तुम्ह हू सिव' अस गुरु जबु कहई। सिष्य असंसय मुकुती लहई।।
महाग्यान भवरोग दवाई। सहित कृपा गुरु सों जो पाई।।
अति प्रसन्न सो सान्त सुखारी। मुकुत होइ प्रानी संसारी।।

दोहा - **गुरु परकाय सों सर्वदा लहइ उचित उपदेस।**
सो सुस्त्रूषु सेवानिरत कहिअत विगत कलेस॥436॥

चौपाई - का असच्च पुनि सच का होई। का आतम का परसिव होई।।
जो उपदेस गहइ एहि भाँती। गुरु सेवा नहिं कबहुँ अघाती।।
तासों अस सिष अवसि बड़ाई। जो गुरु सेवा भरि उर लाई।।

किं सत्यं किं नु वासत्यं क आत्मा कः परः शिवः।
इति श्रवणसंसक्तो गुरोः शिष्यो विशिष्यते।।६९।।

श्रुत्वा श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिवसाक्षात्क्रियावहम्।
उपशाम्यति यः स्वान्ते स मुक्तिपदमाप्नुयात्।।७०।।

न बुध्यति गुरोर्वाक्यं विना शिष्यस्य मानसम्।
तेजो विना सहस्रांशोः कथं स्फुरति पङ्कजम्।।७१।।

सूर्यस्योदयमात्रेण सूर्यकान्तः प्रकाशते।
गुरोरालोकमात्रेण शिष्यो बोधेन भासते।।७२।।

अद्वैतपरमानन्दप्रबोधैकप्रकाशकम् ।
उपायं शृणुयाच्छिष्यः सद्गुरुं प्राप्य प्राञ्जलिः।।७३।।

किं तत्त्वं परमं ज्ञेयं केन सर्वे प्रतिष्ठिताः।
कस्य साक्षात्क्रिया मुक्तिः कथयेति समासतः।।७४।।

इति प्रश्ने कृते पूर्वं शिष्येण नियतात्मना।
ब्रूयात्तत्त्वं गुरुस्तस्मै येन स्यात् संसृतेर्लयः।।७५।।

शिव एव परं तत्त्वं चिदानन्दसदाकृतिः।
स यथार्थस्तदन्यस्य जगतो नास्ति नित्यता।।७६।।

अयथार्थप्रपञ्चोऽयं प्रतितिष्ठति शङ्करे।
सदात्मनि यथा शुक्तौ रजतत्त्वं व्यवस्थितम्।।७७।।

शिवोऽहमिति भावेन शिवे साक्षात्कृते स्थिरम्।
मुक्तो भवति संसारान्मोहग्रन्थेर्विभेदतः।।७८।।

सिव साच्छातकार रस साने। सुनि सुनि गुरु के बचन सयाने।।
जो सिष निजमन सान्ति लहाई। सोइ परम मुकुती पद पाई।।
गुरु उपदेस बिना कछु काहू। नहिं प्रबोध नहिं सिष्य निबाहू।।
बिनु दिनकर कर उदित प्रकासू। कबहुँ कि होइअ कमल विकासू।।

दोहा - **उदित होत केवल सुरुज सुरुजकान्त मनि भास।**
दीठि परत गुरु कै सहज ग्यानहि सिष्य प्रकास॥437॥

चौपाई - जदि कोऊ उत्तम गुरु पावै। हाथ जोरि अति बिनय जनावै।।
सादर सो जिग्यासा करई। श्रद्धासहित सुस्रूषा धरई।।
तबु उपदेस सुनै मन लाई। ग्यान सहित अद्वैत सुहाई।।
परमानन्द प्रबोध प्रकासक। सबुबिधि जगत जाल कँह नासक।।
कवन तत्व सबसे बढ़ि ग्येया। केहि आधार सबुइ आधेया।।
का साक्षात् क्रिया कह मुकुती। हे गुरु कहहु होइ मम तृपिती।।
चित्त अचंचल सिष्य बनाई। निज जिग्यासा गुरुहि सुनाई।।
तब गुरु सिष्य तत्व समुझावै। जा ते भवबंधन कटि जावै।।

दोहा - **तत्व सच्चिदानन्द सिव परम ग्येय आधार।**
सोइ जथारथ भिन्न तेहि सबु असार संसार॥438॥

चौपाई - रजत भाव जस परै लखाई। सीपी मँह झूठइ चमकाई।।
तस मिथ्या प्रपंचु यहु नाना। सतसरूप सिव जाइ समाना।।
'हौं सिव' अस आवै मन भावा। सिव साच्छातकार होइ जावा।।
मोह गाँठ जबु जाइ नसाई। भव ते मुकुति होइ तबु थाई।।
आपुहि सिव समझहु थिर होई। सिव ते अनत न सोचहु कोई।।
सिव अद्वैत भाव थिर जाके। जीवन्मुकुति पंथ भा ताके।।

दोहा - **एहि प्रकार उपदेसई सिष्यहि गुरु गुन खान।**
सिष्य जगत सिवमय लखइ जीवन्मुकुत सुजान॥439॥

शिवं भावय चात्मानं शिवादन्यं न चिन्तय।
एवं स्थिरे शिवाद्वैते जीवन्मुक्तो भविष्यसि।।७९।।

एवं प्रचोदितः शिष्यो गुरुणा गुणशालिना।
शिवमेव जगत् पश्यन् जीवन्मुक्तोऽभिजायते।।८०।।

गुरुवाक्यामृतास्वादात् प्राप्तबोधमहाफलः।
शुश्रूषुरेव सर्वेषां सेव्यत्वात् सेव्य उच्यते।।८१।।

गुरूपदिष्टे विज्ञाने चेतसि स्थिरतां गते।
साक्षात्कृतशिवः शिष्यो गुरुवत् पूज्यते सदा।।८२।।

ज्ञानादाधिक्यसम्पत्तिर्गुरोर्यस्मादुपस्थिता ।
तस्माज्ज्ञानागमाच्छिष्यो गुरुवत् पूज्यतां व्रजेत्।।८३।।

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् विशेषतः।
शिवभावे समुत्पन्ने शिववत् पूज्य एव सः।।८४।।

विषयासक्तचित्तोऽपि विषयासङ्गवर्जितः।
शिवभावयुतो योगी सेव्यः शिव इवापरः।।८५।।

मुक्तः संशयपाशतः स्थिरमना बोधे च मुक्तिप्रदे
मोहं देहभृतां दृशा विघटयन् मूलं महासंसृतेः।
सत्तानन्दचिदात्मके निरुपमे शैवे परस्मिन् पदे
लीनात्मा क्षयितप्रपञ्चविभवो योगी जनैः सेव्यते।।८६।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गप्रसादिस्थले कायानुग्रहादिनवविध-स्थलप्रसङ्गो नाम सप्तदशः परिच्छेदः ।।१७।।

चौपाई - गुरु के बचन सुधा आस्वादा। पाइ ग्यान फल महाप्रसादा।।
सोइ सुस्रूषु सिष सेवहिं सादर। सबुइ सेव्य कहि जाइ सिवाधर।।
गुरु उपदेसा जे बिग्याना। थिर चित प्रबिसि भयउ सिवग्याना।।
सिव साच्छात्कार जबु कीना। गुरु सम पूजिअ सिष्य अदीना।।
जबहिं होइ गुरु ते अधिकाई। सिष्यहि ग्यान संपदा जाई।।
ग्यानागम कारन एहि बीसा। गुरु समान सो पूज्य सुसीषा।।

दोहा - **‘हौं सिव’- भाव निरन्तर मन मँह होइ बिसेष।**
सो सिवभाग दिढाइ जबु सिव सम पूज्य हमेस॥440॥
जदपि रहइ आसक्त मन बिसयासक्ति न होइ।
जोगी सह सिवभावना सिव सम पूजिअ सोइ॥441॥

छन्द - मिथ्या अभिमाना हौं सिव माना संसय फंद नसावा।
जे मुकुति बनाई ग्यान उपाई थिर मन तहाँ धँसावा।।
यहु बड़ संसारा मोह अपारा जीवहि मूल कहावा।
करि करुन बिलोकन किरपा लोचन ताहि समूल हटावा।।

दोहा - **सत्तानन्द चिदात्मक निरुपम पद परमान।**
सिवपद आतम लीन करि निरमल चित्त सुजान॥442॥
कतहुँ न बिसयासक्ति कछु नहिं प्रपंच बिस्तार।
अस सिव जोगी सेव जन श्रद्धा सहित अपार॥443॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह सतरहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

अष्टादशः परिच्छेदः

अगस्त्यप्रश्नः—

प्रसादिस्थलसम्बद्धाः स्थलभेदाः प्रकीर्तिताः।
प्राणलिङ्गिस्थलारूढान् स्थलभेदान् वदस्व मे।।१।।

रेणुककृतनिरूपणम्—

स्थलानां नवकं प्रोक्तं प्राणलिङ्गिस्थलाश्रितम्।
आदावात्मस्थलं प्रोक्तमन्तरात्मस्थलं ततः।।२।।

परमात्मस्थलं पश्चान्निर्देहागमसंज्ञितम्।
निर्भावागमसंज्ञं च ततो नष्टागमस्थलम्।।३।।

आदिप्रसादनामाथ ततोऽन्त्यप्रसादकम्।
सेव्यप्रसादकं चाथ शृणु तेषां च लक्षणम्।।४।।

जीवभावं परित्यज्य यदा तत्त्वं विभाव्यते।
गुरोश्च बोधयोगेन तदात्मायं प्रकीर्तितः।।५।।

बालाग्रशतभागेन सदृशो हृदयस्थितः।
अश्नन् कर्मफलं सर्वमात्मा स्फुरति दीपवत्।।६।।

आत्मापि सर्वभूतानामन्तःकरणमाश्रितः।
अणुभूतो मलासङ्गादादिकर्मनियन्त्रितः।।७।।

जपायोगाद्यथा रागः स्फटिकस्य मणेर्भवेत्।
तथाऽहङ्कारसम्बन्धादात्मनो देहमानिता।।८।।

अशरीरोऽपि सर्वत्र व्यापकोऽपि निरञ्जनः।
आत्मा मायाशरीरस्थः परिभ्रमति संसृतौ।।९।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

अठारहवाँ परिच्छेद

चौपाई - तब कुंभज बोलेउ मृदु बानी। थल प्रसादि जुत भेद बखानी।।
प्रानलिंगि थल कहहु बहोरी। भेद सहित जिग्यासा मोरी।।
प्रेमसहित गननायक बोलेउ। प्रानलिंगिथल बिबरन खोलेउ।।
नाउँ सुनहु धरि ध्यान मुनीस्वर। प्रानलिंगि थल नौ कह ईस्वर।।
पहिला भेद आत्मथल होई। दूसर अन्तरात्मथल सोई।।
तीसर परमातमथल मानहु। चउथा निर्देहागम जानहु।।
पुनि थल निर्भावागम आही। नष्टागमथल छठाँ कहाही।।
सतवाँ थल कह आदि प्रसादा। अउर आठवाँ अन्त्यप्रसादा।।

दोहा - नौवाँ सेव्यप्रसाद थल आगम कहइ बिचारि।
लच्छन सबु कर सुनहु मुनि श्रद्धासहित सँभारि।।444।।

चौपाई - गुरु प्रसाद जबु उपजइ बोधा। तेहि कारनहि सेब्य थल सोधा।।
जीव भाव निज तजि मुनिराया। तत्वरूप जबु प्रगट जनाया।।
तबु सोइ तत्व आतमा होई। कबहुँ न एहि मँह संसय कोई।।
तेहि कर अति सूच्छम आकारा। नोक अंस सौवाँ कर बारा।।
आत्मा सदा हृदय मँह रहई। भोग करमफल कबहुँ न करई।।
फुरइ आतमा दीआ नाईं। तेहि ते रह प्रकास सबु ठाँईं।।
सबु प्रानिन्ह कै अन्तःकरना। रहइ आतमा मल संसरना।।
आदि करम दिढ़ पास बन्हावा। सूच्छ्म रूप परमानु बनावा।।

दोहा - रंग लाल निरमल फटिक संजुत गुडहल फूल।
गहइ देह अभिमान सो अहंकार जुत भूल।।445।।

आत्मस्वरूपविज्ञानं देहेन्द्रियविभागतः।
अखण्डब्रह्मरूपेण तदात्मप्राप्तिरुच्यते।।१०।।

न चास्ति देहसम्बन्धो निर्देहस्य स्वभावतः।
अज्ञानकर्मयोगेन देही भवति भुक्तये।।११।।

नासौ देवो न गन्धर्वो न यक्षो नैव राक्षसः।
न मनुष्यो न तिर्यक्च न च स्थावरविग्रहः।।१२।।

नानाकर्मविपाकाश्च नानायोनिसमाश्रिताः।
नानायोगसमापन्नाः नानाबुद्धिविचेष्टिताः।।१३।।

नानामार्गसमारूढाः नानासङ्कल्पकारिणः।
अस्वतन्त्राश्च किञ्चिज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वहेतवः।
लीलाभाजनतां प्राप्ताः शिवस्य परमात्मनः।।१४।।

चोदिता परमेशेन स्वस्वकर्मानुसारतः।
स्वर्गं वा नरकं वापि प्राणिनो यान्ति कर्मिणः।।१५।।

पुनः कर्मावशेषेण जायन्ते गर्भकोटरात्।
जाता मृताः पुनर्जाताः पुनर्मरणभाजिनः।
भ्रमन्ति घोरसंसारे विश्रान्तिकथया विना।।१६।।

जीवत्वं दुःखसर्वस्वं तदिदं मलकल्पितम्।
निरस्यते गुरोर्बोधाज्ज्ञानशक्तिः प्रकाशते।।१७।।

यदा निरस्तं जीवत्वं भवेद् गुर्वनुबोधतः।
तदान्तरात्मभावोऽपि निरस्तस्य भवेद् ध्रुवम्।।१८।।

चौपाई - सो सबु ठाउँ जदपि निरदेहा। दोसरहित अति ब्यापकु एहा।।
मायारचित सरीर अधारा। आत्मा बिचरइ इह संसारा।।
देह अउर इंद्रिय बिलगाई। जबु आत्मा निज रूप लखाई।।
ब्रम्ह अखंड रूप ते भासा। आत्मप्राप्ति सो नित्य प्रकासा।।
जो निर्देह निसर्ग सुभावा। कबहुँ कि देह संबंध बनावा।।
निज अग्यान करम कै जोगा। धरइ सरीर कारने भोगा।।

दोहा - आत्मा देव न राच्छस नहि गंधर्व न जच्छ।
पसु पच्छी नर कछु नहीं नहिं थावर कोउ पच्छ॥446॥

चौपाई - जीव अनेकन करम बिपाका। नाना जोनि घूमि कै थाका।।
सुख दुख पाइ भोग करि नाना। क्रिया अनेक बिचार बिधाना।।
पंथ बिभिन्न रहइ आरूढ़ा। धरि संकल्पहु गूढ़ अगूढ़ा।।
माया बिबस ताहि आधीना। बिसय बोध बिग्यान बिहीना।।
कछु करि सकइ न समरथ ओही। जदि कछु करइ गरब बड़ होही।।
परमेस्वर सिव लीला करई। जीव पुतरिका बनि अनुहरई।।
जीव जनम निज करम खपावा। जथा करम संस्कार सुभावा।।
सिव सों परम प्रेरना पाई। सरग नरक वा जीव भँजाई।।

दोहा - करम भोग जो बचि रहा तेहि कारन पुनि आय।
जनम लेइ संसार मँह गरभ खोह मँह जाय॥447॥
जनम मरन पुनि पुनि लहै दुसह कलेस लगाय।
भ्रमइ घोर संसार मँह नहिं बिस्राम लखाय॥448॥

चौपाई - जीव भाव दुख सरबस माना। जीव होन मल कलप विधाना।।
दूर होइ लहि गुरु ते बोधा। मिले ग्यान जगजीव निरोधा।।
गुरु उपदेस गहइ जबु कोई। जीवभाव निरसन तबु होई।।
जेहि जीवत्व निरासा भावा। आन्तरात्म निहचय उपजावा।।

देहस्थितोऽप्ययं जीवो देहसङ्गविवर्जितः।
बोधात् परात्मभावित्वादन्तरात्मेति कीर्तितः।।१९।।

आत्मान्तरालवर्तित्वाज्जीवात्मपरमात्मनोः।
योगादुभयधर्माणामन्तरात्मेति कीर्तितः।।२०।।

अहङ्कारस्य सम्बन्धान्मनुष्यत्वादिविभ्रमः।
न स्वभाव इति ज्ञानादन्तरात्मेति कथ्यते।।२१।।

यथा पद्मपलाशस्य न सङ्गो वारिणा भवेत्।
तथा देहजुषोऽप्यस्य न शरीरेण सङ्गतिः।।२२।।

नीडस्थितो यथा पक्षी नीडाद्भिन्नः प्रदृश्यते।
देहस्थितस्तथात्मायं देहादन्यः प्रकाशते।।२३।।

आच्छाद्यते यथा चन्द्रो मेघैरसङ्गवर्जितैः।
तथात्मा देहसङ्घातैरसङ्गपरिवेष्टितः।।२४।।

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तोपाधिविक्लवः।
देहस्थोऽपि सदा ह्यात्मा शिवं पश्यति योगतः।।२५।।

भोक्तृभोज्यपरित्यागात् प्रेरकस्य प्रसादतः।
भोक्तृताभावगलितः स्फुरत्यात्मा स्वभावतः।।२६।।

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तःस्थितः सदा।
तत्परिज्ञानयोगेन योगी नन्दति मुक्तवत्।।२७।।

निर्धूते तत्प्रबोधेन मले संसारकारणे।
सामरस्यात् परात्मस्थात् परमात्मायमुच्यते।।२८।।

जदपि जीव रह देह अधारा। तदपि देह सों कसइ किनारा।।
जुत्त परात्मभाव गहि बोधा। अन्तरात्म कहि जाइ सुबोधा।।

दोहा - जीवात्मा परमातमहु बीच आतमा होइ।
धरम दुहूँ संजुत भयो अन्तरात्म कहि सोइ।।449।।

चौपाई - अहंकार संबंध सहाई। मानुसता लगि जीव भ्रमाई।।
मानुसता नहिं आत्मस्वभावा। अस जाने अन्तरात्म कहावा।।
पदुमपलास संग नहि होई। बारि लेस तँह टिकइ न कोई।।
आत्मा जद्यपि गहइ सरीरा। नहिं कवनिउँ बिधि संगति थीरा।।
पंछी जस कोउ नीड़ रहाई। सो तेहि भिन्न सदैव देखाई।।
रहइ देह मँह आतम तैसे। देह ते बिलग प्रकासित वैसे।।
दूर बहुत बादर आकासा। तेहि ऊपर सो ससी प्रकासा।।
बादर ससी न कोउ संबंधा। जो बिपरीत कहै सो अंधा।।

दोहा - जद्यपि दूर असंग पुनि मेघ ढँकहि ससि घेरि।
तथा असंगहि आतमहि देह बहुत ढँक फेरि।।450।।

चौपाई - निरमम अहंकार ते हीना। रहित उपाधि समस्त अदीना।।
अन्तर देह आतमा रहई। जोग साधि सिवदरसन करई।।
भोक्ता भोज्य छाँड़ि सबु भाँती। लहि प्रेरक सिवकृपा सँघाती।।
रहित भाव भोक्तृत्व बनावा। आत्मा भासइ निजहि स्वभावा।।
प्रेरक सिव सबु अन्त निवासी। सो सच्चिदानन्द घट बासी।।
जोगी एहि परिग्यान सहाई। मुकुत नियर आनन्द मनाई।।

दोहा - सिवाद्वैत कँह ग्यान ते भव कारन मल जाइ।
पर आतम समरस भए जिउ परमात्म कहाइ।।451।।

चौपाई - हेतु तेज निज सिव सबु गामी। ब्यापकु सो सिव अन्तरजामी।।
स्वयं प्रकास प्रकासक सोई। आतमभेद अनुत्तर होई।।
एहि कारन सिव सबु पर भारी। परमात्मा भयउ अधिकारी।।

सर्वेषामात्मभेदानामुत्कृष्टत्वात् स्वतेजसा।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः सर्वगोऽपि प्रकाशवान्।।२९।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदस्तोमा यस्य मायामहोदधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति परमात्मा स उच्यते।।३०।।

यस्मिन् ज्योतिर्गणाः सर्वे स्फुलिङ्गा इव पावकात्।
उत्पत्य विलयं यान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३१।।

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ।
सम्भूय लयमायान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३२।।

निरस्तमलसम्बन्धं निःशेषजगदात्मकम्।
सर्वतत्त्वोपरि प्रोक्तं स्वरूपं परमात्मनः।।३३।।

यथा व्याप्य जगत्सर्वं स्वभासा भाति भास्करः।
तथा स्वशक्तिभिर्व्याप्य परमात्मा प्रकाशते।।३४।।

विश्वतो भासमानोऽपि विश्वमायाविलक्षणः।
परमात्मा स्वयंज्योतीरूपो जीवात्मनां भवेत्।।३५।।

देहिनोऽपि परात्मत्वभाविनो निरहङ्कृतेः।
निरस्तदेहधर्मस्य निर्देहागम उच्यते।।३६।।

गलिते ममताहन्ते संसारभ्रमकारणे।
पराहन्तां प्रविष्टस्य कुतो देहः कुतो रतिः।।३७।।

केवले निष्प्रपञ्चौघे गम्भीरे चिन्महोदधौ।
निमग्नमानसो योगी कथं देहं विचिन्तयेत्।।३८।।

जाके माया उदधि अपरा। यहु ब्रह्माण्ड बुलबुला सारा।।
छन बूड़इ छन मँह उतराई। परमात्मा सोई कहि जाई।।
जस लुकाठ अगिनी चिनगारी। निकसइ छनहिं बिलाइ बुझारी।।
अइसँइ जोति समूह बिलाहीं। जामें सो परमातम आहीं।।

दोहा - **लोल लहर जस जलधि मँह उठि उठि जाइँ समाइ।**
तस जामे सबु बस्तु कँह परमात्मा सो कहाइ।।452।।

चौपाई - परमातम सरूप परसिद्धा। जग जेते मल नहिं संबद्धा।।
मल तेहि कबहुँ परस नहिं करई। जदपि असेष रूप जग धरई।।
तदपि परे सबु तत्व बिहाई। परमातम सरूप कहि जाई।।
जथा लोक सबु ब्यापि दिनेसा। निज तेजहि दपदपइ हमेसा।।
तथा सक्ति निज सगरों ब्यापा। परमात्मा प्रकासित आपा।।
भासमान जद्यपि चहुँ ओरा। माया बिस्व बिलच्छन कोरा।।
स्वयं जोति परमात्मा सासक। जग जीवातम केर प्रकासक।।

दोहा - **जुत परमातम भाव ते सिवजोगी जबु होइ।**
रहित अहंकृति भावना मन मँह रहइ सँजोइ।।453।।
जद्यपि धारइ देह सो देहधरम ते हीन।
निर्देहागम तेहि कहैं सास्त्रधरम जे लीन।।454।।

चौपाई - संसृति भ्रम कँह कारनभूता। अहंकार ममकार सबूता।।
ई दूनहु जबहीं बिनसाई। हंता परा जोगि प्रबिसाई।।
तबु कहँ देह कहाँ सो प्रीती। मिटइ सकल नस्वर परतीती।।
निष्प्रपंच सचराचर लोका। सिवजोगी नित रहइ बिसोका।।
केवलग्यान गभीर अगाधा। सो चित् जलधि पैठि निर्बाधा।।
तँह मनु बोरि समाहित चित्ता। जोगी काह देह करि चिन्ता।।
अपरिछेद्य आपु जो मानइ। चिदाकास निज रूप बखानइ।।
देह धरेउ नहिं देह बिकारा। ब्यापइ तेहि बिगत आधारा।।

अपरिच्छेद्यमात्मानं चिदम्बरमिति स्मरन्।
देहयोगेऽपि देहस्थैर्विकारैर्न विलिप्यते।।३९।।

अखण्डसंविदाकारमद्वितीयं सुखात्मकम्।
परमाकाशमात्मानं मन्वानः कुत्र मुह्यति।।४०।।

उपाधिविहिता भेदा दृश्यन्ते चैकवस्तुनि।
इति यस्य मतिः सोऽयं कथं देहमितो भवेत्।।४१।।

भेदबुद्धिः समस्तानां परिच्छेदस्य कारणम्।
अभेदबुद्धौ जातायां परिच्छेदस्य का कथा।।४२।।

शिवोऽहमिति यस्यास्ति भावना सर्वगामिनी।
तस्य देहेन सम्बन्धः कथं स्यादमितात्मनः।।४३।।

व्यतिरेकात्स्वरूपस्य भावान्तरनिराकृतेः।
भावो विकारनिर्मुक्तो निर्भावागम उच्यते।।४४।।

अहं ब्रह्मेति भावस्य वस्तुद्वयसमाश्रयः।
एकीभूतस्य चिद्व्योम्नि तदभावो विनिश्चितः।।४५।।

एकभावनिरूढस्य निष्कलङ्के चिदम्बरे।
क्व जातिवासनायोगः क्व देहित्वं परिभ्रमः।।४६।।

शून्ये चिदम्बरे स्थाने दूरे वाङ्मानसाध्वनः।
विलीनात्मा महायोगी केन किं वापि भावयेत्।।४७।।

अविशुद्धे विशुद्धे वा स्थले दीप्तिर्यथा रवेः।
पतत्येवं सदाद्वैती सर्वत्र समवृत्तिमान्।।४८।।

दोहा - आपुहि मान अखंड जो चिदाकार सुखरूप।
अनुपम परमाकास पुनि होइ न मोहबिरूप॥455॥

चौपाई - बस्तु एक पुनि भेद देखाई। ते उपाधि सों जाहिं बनाई।।
अस बिबेक जेहि होइ मुनीसा। कस सरीर सीमित सो खीसा।।
भेद बुद्धि परिसीमन कारन। ग्यान जथारथ करइ निवारन।।
जबुइ अभेद बुद्धि उपजानी। परिच्छेद कँह कवन कहानी।।
'हौं सिव' अस भावना आपनी। उपजइ जेहि सो सर्वगामिनी।।
सो जोगी अमितातम भारी। कबहुँ कि देहजुतत्व निहारी।।

दोहा - निज सरूप ब्यतिरेक ते भावान्तर ठुकराइ।
रहित बिकारहि भाव सो निर्भावागमहु कहाइ॥456॥

चौपाई - 'अहौं ब्रम्ह हौं'- अस जो भावा। सो दुइ बस्तु अधार बनावा।।
एक 'ब्रम्ह' एक 'हौं' अस होई। दूनउँ भिन्न कहै सबु कोई।।
चिदाकास दोउ समरस होहीं। निहचय द्वित्व अभाव घटोहीं।।
नित्य निरंजन चित् आकासा। तहँ इकभाव धरइ सुख पासा।।
तेहि देही कँह कहाँ भावना। कहाँ बिराजइ जाति बासना।।
कहाँ भ्रमन संसार कराई। जनम मरन कँह पास फँसाई।।
बानी मन मारग ते दूरी। चिदाकास थल सूना भूरी।।
तँह बिलीन आतमा निरोगी। केहि ते केहि कँह भावइ जोगी।।

दोहा - थल देखइ नहिं रबि किरन को वा सुद्ध असुद्ध।
परइ सदा अद्वैति तस सम बरतइ न बिरुद्ध॥457॥

चौपाई - जरा मरन सों नहिं सो डरई। भूख पिआस न बस कहुँ परई।।
निजानंद परिपूर्न अघाई। सिवजोगी अतिसय सुख पाई।।
द्वैतसून्य सिवग्यान बड़ेरे। रहित ग्येयग्यातादिक केरे।।
ग्यान जोगि कँह स्वयं नसाई। तबु सो नष्टागम कहि जाई।।
भरि अद्वैत बासना थाती। जेहि कर चित्त सदा दिन राती।।

न बिभेति जरामृत्योर्न क्षुधया वशं व्रजेत्।
परिपूर्णनिजानन्दं समास्वादन् महासुखी।।४९।।

भेदशून्ये महाबोधे ज्ञात्रादित्रयहीनकः।
ज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टागम इहोच्यते।।५०।।

अद्वैतवासनाविष्टचेतसां परयोगिनाम्।
पश्यतामन्तरात्मानं ज्ञातृत्वं कथमन्यथा।।५१।।

अकर्ताऽहमवेत्ताहमदेहोऽहं निरञ्जनः।
इति चिन्तयतः साक्षात् संविदेव प्रकाशते।।५२।।

निरस्तभेदजल्पस्य निरीहस्य प्रशाम्यतः।
स्वे महिम्नि विलीनस्य किमन्यज्ज्ञेयमुच्यते।।५३।।

एकीभूते निजाकारे संविदा निष्प्रपञ्चया।
केन किं वेदनीयं तद्वेत्ता कः परिभाष्यते।।५४।।

महासत्ता महासंविद् विश्वरूपा प्रकाशते।
तद्विना नास्ति वस्त्वेकं भेदबुद्धिं विमुञ्चतः।।५५।।

सर्वाधिष्ठातृकः शम्भुरादिस्तस्य प्रसादतः।
आदिप्रसादीत्युक्तोऽयं निर्विकारपदे स्थितः।।५६।।

अनेकजन्मशुद्धस्य निरहङ्कारभाविनः।
अप्रपञ्चस्यादिदेवः प्रसीदति विमुक्तये।।५७।।

शिवप्रसादसम्पत्त्या शिवभावमुपेयुषि।
शिवादन्यज्जगज्जालं दृश्यते न च दृश्यते।।५८।।

निरखइ अन्तरातमा संतत। जोगी अमल अचल मन संजत।।
कवन हेतु बिसयान्तर ग्याना। तँह पुनि कवन परोजन आना।।

दोहा - **नहिं कर्ता ग्याता नहीं हौं नहिं देह बिलास।**
एकु निरंजन चिंतई संबित् करै प्रकास॥458॥

चौपाई - भेद बचन कँह करइ निरासू। सम दम सहित रहित अभिलासू।।
निज महिमा बिलीन रह जोई। तेहि पुनि अपर ग्येय का होई।।
रहित प्रपंच संबिदाकारा। निज सरूप ते एकाकारा।।
भए केहि का जानन जोगू। बेत्ता तासु कवन कह लोगू।।
सत्ता महा महा जो संबित। बिस्व रूप सों होइ प्रकासित।।
बस्तु न ताहि बिना कहुँ काहू। भेद बुद्धि बिगलित भइ जाहू।।

दोहा - **सबहि अधिष्ठाता सिव कारन आदि प्रपंच।**
आदि प्रसादी तत्कृपा निर्बिकार थित मंच॥459॥

चौपाई - बिगत अनेक जनम जो पूता। अहंकार कँह भाव बिधूता।।
जेहि कर सो समरथ सिवजोगी। साधक बिस्व प्रपंच बियोगी।।
तेहि के मुकुति हेतु जगदीसा। करहिं सो किरपा सुनहु मुनीसा।।
सिव प्रसाद सम्पत्ति सहाई। जोगी जबु सिव भाग लहाई।।
निज इच्छा बल दीठि धराई। जगत परै सिव भिन्न लखाई।।
अथवा तेहि जस होइ सुभीता। दीठि बनइ ताकी बिपरीता।।
सिव स्वरूप देखइ भव सोई। पुनि तेहि आत्मस्वरूप सँजोई।।
नित्यानित्य भेद जो जाना। परम बिबेकी सुधी सयाना।।

दोहा - **पाइ परम कल्यानमय संभु प्रसाद पुनीत।**
जो काटै संसार कौ सकल दुरागम जीत॥460॥
निजता परता मोह कै गाँठि परी अति जोरि।
भया मुकुति भाजन अचल गाँठि जुगुति ते छोरि॥461॥

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिः विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः।।५९।।

विना प्रसादमीशस्य संसारो न निवर्तते।
विना सूर्योदयं लोके कुतः स्यात् तमसो लयः।।६०।।

सर्वानुग्राहकः शम्भुः केवलं कृपया प्रभुः।
मोचयेत् सकलान् जन्तून् न किञ्चिदिह कारणम्।।६१।।

लयः सर्वपदार्थानामन्त्य इत्युच्यते बुधैः।
प्रसादोऽनुभवस्तस्य तद्वानन्त्यप्रसादवान्।।६२।।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिव्यवहारविकल्पना ।
मायाकृता परे तत्त्वे तल्लये तत्क्षयो भवेत्।।६३।।

साक्षात्कृते परे तत्त्वे सच्चिदानन्दलक्षणे।
क्व पदार्थपरिज्ञानं कुतो ज्ञातृत्वसंभवः।।६४।।

सुषुप्तस्य यथा वस्तु न किञ्चिदपि भासते।
तथा मुक्तस्य जीवस्य न किञ्चिद्वस्तु दृश्यते।।६५।।

यथाकाशमविच्छिन्नं निर्विकारं स्वरूपतः।
तथा मुक्तस्य जीवस्य स्वरूपमवशिष्यते।।६६।।

न किञ्चदपि मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यमेव वा।
सुखस्फूर्तिस्वरूपेण निश्चला स्थितिरुच्यते।।६७।।

शिवाद्वैतपरिज्ञानशिथिलाशेषवस्तुनः ।
केवलं संविदुल्लासदर्शिनः केन को भवेत्।।६८।।

चौपाई - बिनु परमेस प्रसाद मुनीसा। कवनिउ बिधि न जाइ जग खीसा।।
सूर्जोदय बिनु एहि संसारा। कबहुँ कि मिटइ कतहुँ अन्हिआरा।।
सबु पर करिहिं अनुग्रह स्वामी। परमेस्वर सिव अन्तरजामी।।
केवल आपनु कृपा पसारी। मुकुत करहिं सब जन्तु पुरारी।।
मुकुति हेतु बस ईस कृपा ही। इहाँ अउर कछु कारन नाहीं।।
अन्त्य कहहिं बुध लय सब काहू। लय अनुभव प्रसाद पतिआहू।।
यहु प्रसाद जेहि पास रहाई। अन्त्यप्रसादी सो कहि जाई।।

दोहा - देव मनुज पसु पच्छि कँह मायाकृत ब्यौहार।
परमतत्व मँह लय भए ताहू कौ निस्तार॥462॥
दीख सच्चिदानन्द जबु परमतत्व साच्छात।
कहाँ पदारथ ग्यान पुनि कहँ ग्यातापन बात॥463॥

चौपाई - जो प्रगाढ़ निद्रा मँह सोवै। ताको नहिं प्रतीति कछु होवै।।
तैसइ मुकुत जीव कँह कोई। बस्तु कतहुँ भासित नहिं होई।।
निज स्वरूप ते जस आकासा। निर्बिकार अबिच्छिन्न प्रकासा।।
तस जे मुकुत जीव इह लोका। निज सरूप ते भास बिसोका।।
मुकुत जीव जो जान जथारथ। देखन जोग न कोउ पदारथ।।
कारज नहिं कोऊ करनीया। फुरइ अनन्द ताहि कमनीया।।
तासु अचल थिति कारन एहा। सिवजोगी कहँ नहि संदेहा।।

दोहा - सिवाद्वैत परिग्यान सों बस्तु भेद नहिं मान।
रमइ जो संबिदुल्लास मँह तेहि कासों को भान॥464॥

चौपाई - सबु कँह सेब्य गुरू सिव एहा। एहि मँह नहिं काहू संदेहा।।
सिव गुरु कँह प्रसाद जग माहीं। पर आनन्द प्रकास कहाहीं।।
सिवजोगी गुरु सेब्य कहाई। अनुभव एहि प्रसाद मुनिराई।।

सेव्यो गुरुः समस्तानां शिव एव न संशयः।
प्रसादोऽस्य परानन्दप्रकाशः परिकीर्त्यते।।६९।।

सेव्यो गुरुः स्मृतो ह्यस्य प्रसादोऽनुभवो मतः।
तदेकावेशरूपेण तद्वान् सेव्यप्रसादवान्।।७०।।

गुरुदेवः परं तत्त्वं परतत्त्वं गुरुः स्मृतः।
तदेकत्वानुभावेन न किञ्चिदवशिष्यते।।७१।।

अपरिच्छेद्यमात्मस्थमवाङ्मानसगोचरम्।
आनन्दं पश्यतां पुंसां रतिरन्यत्र का भवेत्।।७२।।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य किमन्यैर्भोज्यवस्तुभिः।
ज्ञानादेव परानन्दं प्रकाशयति सच्छिवः।।७३।।

मुक्तिरेव परा तृप्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।
नित्यतृप्तस्य मुक्तस्य किमन्यैर्भोगसाधनैः।।७४।।

न बाह्यकर्म तस्यास्ति न चान्तर्नैव कुत्रचित्।
शिवैक्यज्ञानरूढस्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतः।।७५।।

न कर्मबन्धे न तपोविशेषे न मन्त्रयोगाभ्यसने तथैव।
ध्याने न बोधे च तथात्मतत्त्वे मनःप्रवृत्तिः परयोगभाजाम्।।७६।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
लिङ्गस्थलान्तर्गतप्राणलिङ्गिस्थले आत्मस्थलादिनवविध-
लिङ्गस्थलप्रसङ्गो नाम अष्टादशः परिच्छेदः ।।१८।।

जो गुरु सोइ प्रसाद अस मानहि। सेब्य प्रसादी तेहि सबु जानइ।।
गुरु देवहि पर तत्व बखाना। जो पर तत्व सो गुरु नहिं आना।।
जो तिन्ह दूनउँ एकहि जाना। ताहि सेस नहिं कछु समझाना।।

दोहा - **मन बानी कँह बिसय नहिं आतम बसै असीम।**
अस आनंदहि अनुभवत अनत प्रीति का जीम?॥465॥

चौपाई - ग्यानसुधारस पिअत अघाई। भोज्य बस्तु तेहि काह सुहाई।।
सत सिव कइ कइ ग्यान विकासा। परानंद कर करहिं प्रकासा।।
नित्य सच्चिदानन्दस्वरूपा। मुकुति अन्तिमा तृपिति अनूपा।।
सो बड़ भागी जो अस होई। अति दुष्कर न पाव सबु कोई।।
नित्य मुकुति जेहि देहिं महेसा। अचल तृपित सो रहइ हमेसा।।
जो एहि भाँति भयउ सिवजोगी। इतर उपाय होइ कस भोगी।।

दोहा - **परम तत्व सिवग्यान कँह ऐक्य होइ आरूढ़।**
दृढ़ निश्चल सिव ऐक्य मय ग्यान धरै अति गूढ़॥466॥
देह न समुझै आतमा यहु करि भरम निरास।
सकल करन तजि सुख सहित जग मँह करै निवास॥467॥

छन्द - पावै सिवजोगी सकल बिजोगी मुकुति धाम अबिनासी।
कछु करम न बाहर नहिं कछु भीतर सबहीं भाँति उदासी।।
तेहि करम न बाँन्हइ तपहु न फांसइ नहिं करनीय बकाया।
मंतर नहिं जापइ जोग न साधइ नहिं कछु करै उपाया।।

दोहा - **जे साधक थिर चढ़ि रह्यो ऊँचे थल पर जोग।**
ध्यान बोध ते का जदा आत्मतत्व संजोग॥468॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह अठारहवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

एकोनविंशः परिच्छेदः

अगस्त्य उवाच —

स्थलभेदाः समाख्याताः प्राणलिङ्गिस्थलाश्रिताः।
कथय स्थलभेदं मे शरणस्थलसमाश्रितम्।।१।।

अथास्योत्तरं वक्ति रेणुकः —

शरणस्थलमाश्रित्य स्थलद्वादशकं मया।
उच्यते नाम सर्वेषां स्थलानां शृणु तापस ।।२।।

दीक्षापादोदकं पूर्वं शिक्षापादोदकं ततः।
ज्ञानपादोदकं चाथ क्रियानिष्पत्तिकं ततः।।३।।

भावनिष्पत्तिकं चाथ ज्ञाननिष्पत्तिकं ततः।
पिण्डाकाशस्थलं चाथ बिन्द्वाकाशस्थलं ततः।।४।।

महाकाशस्थलं चाथ क्रियायाश्च प्रकाशनम्।
भावप्रकाशनं पश्चात् ततो ज्ञानप्रकाशनम्।।
स्वरूपं पृथगेतेषां कथयामि यथाक्रमम्।।५।।

दीक्षयाऽपगतद्वैतं यज्ज्ञानं गुरुशिष्ययोः।
आनन्दस्यैक्यमेतेन दीक्षापादोदकं स्मृतम्।।६।।

अथवा पादशब्देन गुरुरेव निगद्यते।
शिष्यश्चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।७।।

परमानन्द एवोक्तः पादशब्देन निर्मलः।
ज्ञानं चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।८।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चौपाई - मुनि अगस्ति बोलेउ मृदु बानी। आदर सहित बिनय नय सानी।।
प्रनालिंगि थल आश्रय कीन्हा। तेहि कर सकल भेद कहि दीन्हा।।
कहहु सरन थल भेद जे अहहीं। सैवागम जस निर्नय करहीं।।
रेनुक गननायक तबु बोलेउ। मनहु कान मँह अमरित घोलेउ।।
सुनहु तपोनिधि तिन्ह थल नामा। सरन थलहि जिन्ह बारह थामा।।
पहिल अहइ दीच्छापादोदक। दूसर पुनि सिच्छापदोदक।।
ग्यानपादोदक तीसर आना। चउथ क्रियानिष्पत्ति सुजाना।।
पाँचव अहइ भावनिष्पत्ती। छठाँ कहाइ ग्याननिष्पत्ती।।
सातवँ पिंडाकास कहाना। बिन्द्वाकास आठवाँ माना।।
नौवाँ महाकास थल अहई। क्रियाप्रकास दसम सबु कहई।।

दोहा - भावप्रकासन ग्यारवाँ अन्तिम ग्यानप्रकास।
एहि बिधि बारह थल भए भेद सरनथल खास।।469।।

चौपाई - अबु क्रम सों कहिहउँ इन्ह लच्छन। सावधान होइ सुनहु तपोधन।।
दीच्छा परंपरा सों पावै। पहिले गुरु होइ सिष्य बनावै।।
सिष्य होइ गुरु गुरु ते सीषा। जानहु क्रम तुम्ह सकल मुनीसा।।
गुरु अरु सिष्य ग्यान जे होऊ। दीच्छहि द्वैत निवारन सोऊ।।
दूनउ कँह आनंद सरूपा। तेहि ते मिलि होवैं इकरूपा।।
जो आनन्द एकता होई। दीच्छापादोदक कह सोई।।

परसंवित्प्रकाशात्मा परमानन्दभावनाम्।
अधिगम्य महायोगी न भेदं क्वापि पश्यति।।९।।

देशकालाद्यवच्छेदविहीनं नित्यनिर्मलम्।
आनन्दं प्राप्य बोधेन नान्यत् काङ्क्षति संयमी।।१०।।

ज्ञानामृतमपि स्वच्छं गुरुकारुण्यसम्भवम्।
आस्वाद्य रमते योगी संसारामयवर्जितः।।११।।

गुरुशिष्यमयं ज्ञानं शिक्षा योगिनमीर्यते।
तयोः समरसत्वं हि शिक्षापादोदकं स्मृतम्।।१२।।

मथिताच्छास्त्रजलधेर्युक्तिमन्थानवैभवात्।
गुरुणा लभ्यते बोधसुधा सुमनसां गणैः।।१३।।

ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां परमानन्दचन्द्रिकाम्।
पश्यन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः।।१४।।

दृष्टे तस्मिन् परानन्दे देशकालादिवर्जिते।
द्रष्टव्यं विद्यते नान्यच्छ्रोतव्यं ज्ञेयमेव वा।।१५।।

आत्मानन्देन तृप्तस्य का स्पृहा विषये सुखे।
गङ्गाजलेन तृप्तस्य कूपतोये कुतो रतिः।।१६।।

यस्मिन्नप्राप्तकल्लोले सुखसिन्धौ निमज्जति।
सामरस्यान्महायोगी तस्य सीमा कुतो भवेत्।।१७।।

गुरुप्रसादचन्द्रेण निष्कलङ्केन चारुणा।
यन्मनःकुमुदं नित्यबोधितं तस्य को भ्रमः।।१८।।

दोहा - पाद सबद अथवा इहाँ कहइ गुरुहि सबिबेक।
उदक सबद ते सिष्य पुनि दीच्छा ते दोउ एक॥470॥

चौपाई - निरमल परमानंद कहाया। पाद सबद सों सुनु मुनिराया।।
उदक सबद ते ग्यान कहाई। दीच्छा ते दोउ ऐक्य भवाई।।
जोगी महा स्वतंत्र कहावै। परमानंद भावना पावै।।
परसंबित्प्रकासमय होई। भेद कतहुँ नहिं देखइ कोई।।
देस काल सीमा नहिं रोका। निरमल नित्य अनंद बिसोका।।
पाइ ग्यान नित सिवहि उपासइ। संजमसील न कछु अभिलासइ।।

दोहा - अति निरमल ग्यानामृत गुरु किरिपा सों पाइ।
पान किए जोगी रमै भव कँह ब्याधि नसाइ॥471॥

चौपाई - ग्यान मनन पूरब कहि आवा। सिच्छा पद ते सोइ कहावा।।
गुरु अरु सिष्य ऐक्य कँह ग्याना। सो प्रेरइ जोगिहि बिधि नाना।।
जब दूनहु मिलि समरस होई। सिच्छापादोदक कह सोई।।
बार बार मथि जुगुति मथानी। सास्त्र पयोधि रतन कँह खानी।।
गुरु करुना करि सुमन बोलाई। ग्यान सुधा निज हाथ पिलाई।।
सज्जन सुधी अहहिं बड़ भागी। गुरु श्रम करहिं जेहि हित लागी।।
मति जाकर अति सूच्छ्म बड़ाई। मुकुति राति तेहि परइ लखाई।।
जोन्हा परमानंद सरूपा। ग्यान सुधाकर छिटकि अनूपा।।
निरमल चिदाकास मँह सोहा। दीठि दीन्ह गुरु करि अति छोहा।।
परानंद अनुभव करि लीन्हा। देसकाल बरजित तेहि चीन्हा।।
जानइ जोग न देखइ जोगू। नहिं कछु सुनइ जोग कह लोगू।।

दोहा - आत्मानंद अघान जे तेहि सुख बिसय न काम।
अँचइ गंगजल तृपित कौ कूपोदक का नाम?॥472॥

तदैक्यसम्पदानन्दज्ञानं ज्ञानगुरुर्मतः।
तत्सामरस्यं शिष्यस्य ज्ञानपादोदकं विदुः।।१९।।
अविद्याराहुनिर्मुक्तो ज्ञानचन्द्रः सुनिर्मलः।
प्रकाशते पराकाशे परानन्दमहाद्युतिः।।२०।।

अज्ञानमेघनिर्मुक्तः पूर्णज्ञानसुधाकरः।
आनन्दजलधेर्वृद्धिमनुपश्यन् विभासते।।२१।।

ज्ञानचन्द्रोदये जाते ध्वस्तमोहतमोभराः।
पश्यन्ति परमां काष्ठां योगिनः सुखरूपिणीम्।।२२।।

मायारजन्या विरमे बोधसूर्ये प्रकाशिते।
निरस्तसर्वव्यापारश्चित्रं स्वपिति संयमी।।२३।।

अनाद्यविद्याविच्छित्तिवेलायां परयोगिनः।
प्रकाशते परानन्दः प्रपञ्चेन विना कृतः।।२४।।

नित्यानन्दे निजाकारे विमले परतेजसि।
विलीनचेतसां पुंसां कुतो विश्वविकल्पना।।२५।।

कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः कुतो रुद्रः कुतो रविः।
साक्षात्कृतपरानन्दज्योतिषः साम्यकल्पना।।२६।।

अपरोक्षपरानन्दविलासस्य महात्मनः।
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा विशेषाः सुखबिन्दवः।।२७।।

यन्मात्रासहितं लोके वाञ्छन्ति विषयं नराः।
तदप्रमेयमानन्दं परमं को न वाञ्छति।।२८।।

चौपाई - बिसम बिसाल तरंग बिहीना। सुखसागर जेहि समरस लीना।।
मगन महाजोगी थित रहई। सीमा ताहि भला को कहई।।
सुघर कलंकरहित छबि छाई। गुरु किरिपा ससि जबहिं उआई।।
जो मन कुमुद प्रबोध सुहावा। कबहुँ कि भ्रम तँह तनिकहु आवा।।
ब्रम्ह होइ बिग्यान अनंदा। ग्यान गुरू सोइ मान अमंदा।।
तेहि कर बैभव ऐक्य सुहावा। सिष्य ग्यान समरस होइ आवा।।
आगम सामरस्य सोइ माना। तहाँ ग्यानपादोद कहाना।।

दोहा - छूटि अबिद्या राहु ते सोहइ बिमल अतंद्र।
परांनद दुतिमान अति चित् नभ ग्यान कौ चंद्र॥473॥

चौपाई - हटइ जबहिं अग्यान बलाहक। पूरन ग्यान सुधाकर नभ टक।।
देखि जलधि आनंद उठाना। अति उल्लास प्रकास सुहाना।।
ग्यान सुधाकर उदित देखाने। मोह तिमिर झट दुरित पराने।।
बिमल दीठि जोगी मन लाई। देखहिं सुख असीम समुदाई।।
माया रजनी जबहिं सिरानी। उदित ग्यान दिनकर अस जानी।।
अति बिचित्र तबु सोवै जोगी। सकल जगत ब्यौहार बिजोगी।।

दोहा - जाकर आदि न बिदित जग जबहिं अबिद्या नास।
सुखी होइ जोगी परम छूट्यौ भव कौ फाँस॥474॥
बिनु प्रपञ्च तब जोगि कै भासइ परमानंद।
करइँ अनुग्रह सिव स्वयं अमित जरठ सुखकंद॥475॥

चौपाई - जे नित परमानंद सरूपा। निराकार निरमल सुखरूपा।।
परम तेज मँह चित्त बिलीना। सदा बिभासित भाव अदीना।।
ऐसे नर बिचरहिं निर्देहा। नहिं तिन्ह बिस्व कल्पना एहा।।
परम तेज कीन्हे साच्छाता। ताहि कि सन्मुख होइ बिधाता।।

परकाये क्रियापत्तिः कल्पितैव प्रकाशते।
रज्जौ भुजङ्गवद् यस्मात् क्रियानिष्पत्तिमानयम्।।२९।।

ज्ञानिनां यानि कर्माणि तानि नो जन्महेतवः।
अग्निदग्धानि बीजानि यथा नाङ्कुरकारणम्।।३०।।

कर्मणा कृतेनापि ज्ञानिनो निरहङ्कृतेः।
विक्रिया प्रतिबिम्बस्था किं करोति हिमद्युतेः।।३१।।

चन्द्रस्य मेघसम्बन्धाद् यथा गमनकल्पना।
तथा देहस्य सम्बन्धादारोप्या स्यात् क्रियात्मनः।।३२।।

ज्ञानी कर्मनिरूढोऽपि लिप्यते न क्रियाफलैः।
घृतादिना यथा जिह्वा भोक्त्री चापि न लिप्यते।।३३।।

निरस्तोपाधिसम्बन्धे जीवे या या क्रियास्थितिः।
सा सा प्रतीतिमात्रेण निष्फला चात्र लीयते।।३४।।

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि न निष्कर्मास्ति कश्चन।
स्वभावो देहिनां कर्म ज्ञानिनां तत्तु निष्फलम्।।३५।।

परिपूर्णमहानन्दभाविनः शुद्धचेतसः।
न भवेत् कर्मकार्पण्यं नानाभोगफलप्रदम्।।३६।।

भावः प्रतीयमानोऽपि परकाये तु कल्पितः।
शुक्तौ रजतवद् यस्माद्भावनिष्पत्तिमानयम्।।३७।।

भावेन नास्ति सम्बन्धः केवलज्ञानयोगिनः।
तथापि भावं कुर्वीत शिवे संसारमोचके।।३८।।

बिस्नु रुद्र रबि जे केउ होई। तेहि कर समता पाव कि कोई।।
परानंद अपरोच्छ बिलासा। महापुरुस जे तेहि न पासा।।
तुलना मँह आवइ तँह कोई। ब्रम्हा बिस्नु देव अपि होई।।
परस सकहिं नहिं तेहि सयाना। कछु बिसिष्ट सुख बिन्दु समाना।।

दोहा - **चाहहिं नर इह बिसय सुख अंसमात्रमपि जाहि।**
अति असीम सो परमसुख को अस ताहि न चाहि॥476॥

चौपाई - सिवजोगी परकाय कहाई। तेहि मँह कल्पित क्रिया देखाई।।
जस रसरी मँह भासइ कीरा। तस यहु क्रियावान् कह बीरा।।
जे ग्यानिन्ह के करम देखाहीं। जनम हेतु ते नाहिं कहाहीं।।
जथा अगिनि मँह बीज जराई। सो कि कतहुँ कबहूँ अँखुवाई।।
अनहंकारी ग्यानी कोई। तेहि के किए करम का होई।।
जदि बिकार झलकै परछाईं। तेहि कारन ससि काह कराई।।
पवन बेग नभ मेघ चलाहीं। तेहि लागे जस चंद्र चलाहीं।।
तस देहहि संबंध लगाई। क्रियारोप आतमहि देखाई।।

दोहा - **करम करै ग्यानी जदपि किरिआ फलहि न लेप।**
रसन करइ रसना जथा घृत आदिक निरलेप॥477॥

चौपाई - अहंकार ममकार सरूपा। आगम जीव उपाधि निरूपा।।
सो उपाधि संबंध बिहाई। जो जो क्रिया जीव करि आई।।
सो सो क्रिया मात्र परतीती। लीन आतमहि निष्फल रीती।।
नहिं बिनु करम रहइ जग कोई। बैठइ चलइ रहइ वा सोई।।
जे सरीर धारी जग माहीं। करम सुभाउ तँह संसय नाहीं।।
फरइ करम अग्यान बगीचा। ग्यानिन्ह फरइ न केतनहु सींचा।।
परिपूरन आनंद महाई। चित्त सुद्धि जो आपु बनाई।।
करमजन्य दुख होइ न ताही। नाना भोगरूप फल गाही।।

परिपूर्णप्रबोधेऽपि भावं शम्भौ न वर्जयेत्।
भावो हि निहितस्तस्मिन् भवसागरतारकः।।६९।।

निवर्त्य जन्मजं दुःखं भावः शैवो निवर्तते।
यथा काष्ठादिकं दग्ध्वा स्वयं शाम्यति पावकः।।४०।।

प्रकाशिते शिवानन्दे तद्भावैः किं प्रयोजनम्।
सिद्धे साध्ये चिरेणापि साधनैः किं प्रयोजनम्।।४१।।

एकीकृते शिवे भावे ज्ञानेन सह संयमी।
विस्मितात्मसमावेशः शिवभावे विभासते।।४२।।

न भावेन विना ज्ञानं न भावो ज्ञानमन्तरा।
मोक्षाय कारणं प्रोक्तं तस्मादुभयमाश्रयेत्।।४३।।

ज्ञानस्य व्यवहारेऽपि ज्ञेयाभावात् स्वभावतः।
स्वप्नवज्ज्ञाननिष्पत्त्या ज्ञाननिष्पन्न इत्यसौ।।४४।।

स्वप्नजातं यथा ज्ञानं सह स्वार्थैर्निवर्तते।
तथात्मनि प्रकाशे तु ज्ञानं ज्ञेयं निवर्तते।।४५।।

परिपूर्णे महानन्दे परमाकाशलक्षणे।
शिवे विलीनचित्तस्य कुतो ज्ञेयान्तरे कथा।।४६।।

अखण्डानन्दसंवित्तिस्वरूपं ब्रह्म केवलम्।
मिथ्या तदन्यदित्येषा स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४७।।

सत्तात्मनानुवृत्तं यद् घटादिषु परं हि तत्।
व्यावर्तमाना मिथ्येति स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४८।।

दोहा - **सिवजोगी परकाय मँह जो प्रतीत ह्वै भाव।**
सोउ कल्पित नहिं वास्तविक अस बुधजन पतियाव॥478॥
सीपी भासइ रजत सम एहि भाँती परतीति।
एहि कारन परकाय यहु सहित भावनिष्पत्ति॥479॥

चौपाई - केवलग्यान जोगि जो अहई। भाव संग संबंध न रहई।।
तदपि करउ सो भाव अमाना। भव मोचक सिव मँह धरि ध्याना।।
जदि प्रबोध परिपूरन होई। सिव मँह भाव न छाँड़ै कोई।।
भवसागर जो पार कराई। भाव रहइ सिव माँहि थिराई।।
जनमहेतु दुख नियत हटाई। सैव भाव अपुनेहि सधि जाई।।
काठ आदि जस पूर जराई। दाहक अगिनि स्वयं बुझि जाई।।

दोहा - **सिवानन्द परगट भए केहि परोजन भाउ।**
सिद्ध भए पुनि साध्य के साधन रहै कि जाउ॥480॥

चौपाई - ग्यान संग सिव भाउ एकाई। निज सिव समाबेस हरषाई।।
चकित होइ संजमी बिरागी। सदा प्रकासित होइ सुभागी।।
भाउ बिना नहिं उपजै ग्याना। नहिं बिनु ग्यान भाउ हिअ आना।।
मुकुति मिलै जबु दूनउँ होई। करिअ सो आस्रय दूनउँ जोई।।
सिवजोगी संजुत सिवग्याना। नहिं ब्यौहार ग्येय कछु आना।।
अस ताके स्वभाव बस होई। सिव कँह छाँड़ि जान नहिं कोई।।
ग्यान होइ तेहि सपन अभिन्ना। एहि कारन सो ग्यान निष्पन्ना।।

दोहा - **जथा ग्यान सो सपनगत सहित निजार्थ नसाय।**
तथा प्रकासित आतमहि ग्यान ग्येय मिटि जाय॥481॥

चौपाई - महानंद परिपूरन होई। परमाकास रूप सिव सोई।।
तेहि मँह जाकर चित्त बिलीना। अनत ग्येय का चरचा कीना।।

अकारणमकार्यं यदशेषोपाधिवर्जितम्।
तद्ब्रह्म तदहं चेति निष्ठा ज्ञानमुदीर्यते।।४९।।

ज्ञाताप्यहं ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः।
अभेदब्रह्मस्वारस्ये निरस्ताखिलवस्तुनि।।५०।।

यथा पिण्डस्थ आकाशस्तथात्मा पूर्ण उच्यते।
एतदर्थविवेको यः पिण्डाकाशस्थलं विदुः।।५१।।

घटोपाधिर्यथाकाशः परिपूर्णः स्वरूपतः।
तथा पिण्डस्थितो ह्यात्मा परिपूर्णः प्रकाशते।।५२।।

अन्तःस्थितं पराकाशं शिवमद्वैतलक्षणम्।
भावयेद् यः सुमनसा पिण्डाकाशः स उच्यते।।५३।।

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम्।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं सुमनःपद्मपीठकम्।।५४।।

पराकाशस्वरूपेण प्रकाशः परमेश्वरः।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्तः शरीरिणाम्।।५५।।

एतच्छिवपुरं प्रोक्तं सप्तधातुसमावृतम्।
अत्र हृत्पङ्कजं वेश्म सूक्ष्माम्बरमनोहरम्।।५६।।

तत्र सन्निहितं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणम्।
नित्यसिद्धं प्रकाशात्मा जलस्थाकाशवच्छिवः।।५७।।

अन्तराकाशबिम्बस्थमशेषोपाधिवर्जितम् ।
घटाकाश इव च्छिन्नं भावयेच्चिन्मयं शिवम्।।५८।।

एक अखंड ग्यान आनन्दा। सो सिव ब्रम्ह सच्चिदानन्दा।।
परम सत्य एकमात्र कहाई। सेष सकल मिथ्या समुदाई।।
एहि संसार इहै थिति ग्याना। आगम निगम प्रसिद्ध प्रमाना।।
जो सत्ता घट आदिक होई। अज परतत्व परमसिव सोई।।
जो ब्यावर्तमान सो मिथ्या। ग्यान कहाइ थिती सोइ इत्था।।
जो नहिं कारन नाहिन काजा। रहित उपाधि समस्त बिराजा।।
सोइ ब्रम्ह हमहूँ सोइ सोई। ग्यान इहै निष्ठा दिढ़ होई।।

दोहा - 'हौं ग्याता' 'यहु ग्येय' पुनि कहाँ भेद ब्यौहार?।
समरस ब्रम्ह अभेद ते जगत प्रपंच बिचार।।482।।

चौपाई - पूरन जथा सरीर अकासा। तथा आतमा पूरन भासा।।
जो बिबेक एहि अरथ प्रकासा। सो जानहि थल पिंडाकासा।।
घट उपाधि संजुत नभ जोई। सो सरूप परिपूरन होई।।
तस आतम जो देह निवासा। परिपूरन नित होइ प्रकासा।।
पराकास आभ्यन्तर थाना। लच्छन सिव अद्वैत बखाना।।
तेहि निरमल मन जे कोउ भावा। सो नित पिंडाकास कहावा।।

दोहा - सुमन पदुम कँह पीठ जुत छत्तीस तत्व रचाइ।
बोध प्रकासित देह यहु सिवमंदिर कहि जाइ।।483।।

चौपाई - पराकास धरि रूप प्रकासा। जीव बीच परमेस निवासा।।
हृदयाकास गुहा अति सुंदर। लीन परेस देखु तेहि अंदर।।
सात धातुमय देह बनाई। सो जंगम सिव पुर कहि जाई।।
हृदय कमल अन्तःपुर सोहा। अति महीन नभ पट मन मोहा।।
तहाँ रहइँ प्रत्यच्छ पुरारी। सच्चित् सुखमय लच्छन धारी।।
नित्य सिद्ध सो करइ प्रकासा। सिव जल मध्य सुद्ध आकासा।।

यथाकाशो विभुर्ज्ञेयः सर्वप्राण्युपरि स्थितः।
तथात्मेत्युपमानार्थं बिन्द्वाकाशस्थलं विदुः।।५९।।

यथैको वायुराख्यातः सर्वप्राणिगतो विभुः।
तथात्मा व्यापकः साक्षात् सर्वप्राणिगतः स्वयम्।।६०।।

यथा वह्नेरमेयात्मा सर्वत्रैकोऽपि भासते।
तथा शम्भुः समस्तात्मा परिच्छेदविवर्जितः।।६१।।

सर्वेषां देहिनामन्तश्चित्ततोऽयं प्रकाशते।
तस्मिन् प्रतिफलत्यात्मा शिवो दर्पणवद् विभुः।।६२।।

एको वशीकृतः संवित्प्रकाशात्मा परात्परः।
सर्वप्राणिगतो भाति तथापि विभुरुच्यते।।६३।।

एक एव यथा सूर्यस्तेजसा भाति सर्वगः।
तथात्मा शक्तिभेदेन शिवः सर्वगतो भवेत्।।६४।।

पिण्डाण्डस्थं महाकाशं न भिन्नं तद्वदात्मनः।
अभिन्नः परमात्मेति महाकाशस्थलं विदुः।।६५।।

यथा न भिन्नमाकाशं घटेषु च मठेषु च।
तथाण्डेषु पिण्डेषु स्थितो ह्यात्मा न भिद्यते।।६६।।

अनिर्देश्यमनौपम्यमवाङ्मानसगोचरम्।
सर्वतोमुखसम्पन्नं सत्तानन्दं चिदात्मकम्।।६७।।

कालातीतं कलातीतं क्रमयोगादिवर्जितम्।
स्वानुभूतिप्रमाणस्थं ज्योतिषामुदयस्थलम्।।६८।।

दोहा - हृदाकास मंडल बसइ रहित समस्त उपाधि।
घटाकासनिभ चित् शिवहि भावइ साधि समाधि॥484॥

चौपाई - सबन्हि जीव कँह ऊपरि छाई। ब्यापकु जस आकास कहाई।।
आतम घट भीतर पुनि होई। ब्यापकु अलख निरंजन सोई।।
सुधी अरथ उपमान प्रकासा। यहु थल कह सबु बिन्द्वाकासा।।
एक जथा सबु प्रानि सरीरा। भीतर बाहर ब्यापु समीरा।।
तथा आत्मा ब्यापकु होई। जद्यपि जीवन्ह भीतर सोई।।
जद्यपि पावकु एकु अमाना। सगरो भासइ सबु कोई जाना।।
तैसइँ सबु कँह आतम रूपा। बिभु अभेद सिव अनत अनूपा।।
चेतन जल सब प्रानि सरीरा। प्रगट होइ यह भास गभीरा।।

दोहा - तेहि मँह सिव प्रतिबिंबित ब्यापक आतम रूप।
निरमल दर्पन मँह जथा प्रतिबिंबित सबु रूप॥485॥

चौपाई - संबित् स्वयं प्रकास सरूपा। एकमात्र अबसीकृत रूपा।।
सर्ब प्रानिगत परिमित होई। तदपि आतमा बिभु सुठि सोई।।
जथा एक निज तेज सहाई। सर्बगामि रबि भासि लखाई।।
सक्तिभेद ते तथा परातम। सिव ब्यापकु अस कह सबु आगम।।
जथा पिंड ब्रम्हांड लगाई। भिन्न अकास होत नहिं भाई।।
तस अभिन्न जीवहि परमातम। महाकास थल इहै महातम।।

दोहा - घट मठ मँह ब्यापत जथा होइ अकास न भिन्न।
अंड पिंड थित आत्मा सो नित तथा अभिन्न॥486॥

चौपाई - अतुलनीय निरदेस्य न होई। मन अरु बानि बिसय नहिं सोई।।
सबुहि दिसन्ह मँह होइ प्रसारा। सत्तानंद चिदात्मक सारा।।
कलातीत अरु कालातीता। उतपति आदि सृष्टिक्रम रहिता।।
निज अनुभव प्रमानथित होई। रबि ससि आदि बनावै सोई।।

शिवाख्यं परमं ब्रह्म परमाकाशलक्षणम्।
लिङ्गमित्युच्यते सद्भिर्यद्विना न जगत्स्थितिः।।६९।।

परमाकाशमव्यक्तं प्रबोधानन्दलक्षणम्।
लिङ्गं ज्योतिर्मयं प्राहुर्लीयन्ते यत्र योगिनः।।७०।।

संविदेव परा काष्ठा परमानन्दरूपिणी।
तामाहुः परमाकाशं मुनयो मुक्तसंशयाः।।७१।।

तरङ्गादि यथा सिन्धोः स्वरूपान्नातिरिच्यते।
तथा शिवाच्चिदाकाशाद् विश्वमेतन्न भिद्यते।।७२।।

यथा पुष्पपलाशादि वृक्षरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता।।७३।।

यथा ज्योतींषि भासन्ते भूताकाशे पृथक्पृथक्।
तथा भान्ति पराकाशे ब्रह्माण्डानि विशेषतः।।७४।।

निरस्तोपाधिसम्बन्धं निर्मलं संविदात्मकम्।
पराकाशं जगच्चित्रविलासालम्बभित्तिकाम्।।७५।।

शिवस्य परिपूर्णस्य चिदाकाशस्वरूपिणः।
आत्मत्वेनानुसन्धानात् क्रियाद्योतनवान् यमी।।७६।।

निष्कलङ्कचिदानन्दगगनोपमरूपिणः ।
शिवस्य परिपूर्णस्य वृत्तिश्चैतन्यरूपिणी।।७७।।

निष्कलङ्के निराकारे नित्ये परमतेजसि।
विलीनचित्तवृत्तस्य तथा शक्तिः क्रियोच्यते।।७८।।

सिव अस नाउँ ब्रम्ह पर दीन्हा। परम अकास होइ जिसु चिन्हा।।
संत लिंग कहि ताहि बखाना। जेहि बिनु बिस्व न होइ प्रमाना।।

दोहा - पराकास अव्यक्त यहु रूप प्रबोधानन्द।
जामे जोगी लीन होइँ सो लिंग जोति अमन्द॥487॥

चौपाई - संबित् अंतिम सीम कहाई। परमानंद रूप लहराई।।
संसय रहित कहहिं मुनि ग्यानी। तेहि कँह परमाकास बखानी।।
जिमि सागर उच्छलित तरंगा। नहिं सरूप ते भिन्न अभंगा।।
तिमि सिव चित् आकास समाना। तेहि भव बिस्व भिन्न नहिं जाना।।
पत्ती फूल जे साख उगाहीं। बिरिछ रूप नहिं भिन्न लखाहीं।।
पराकास सिव ते एहि भाँती। जगत भिन्न नहिं बात सोहाती।।

दोहा - जोतिपिंड जस भासहीं भूताकास बिभिन्न।
तस भासहिं ब्रम्हांड सबु पराकास बिच्छिन्न॥488॥

चौपाई - रहित उपाधि सकल संबंधा। निर्मल संबित् रूप प्रबंधा।।
जगत बिचित्र बिलास प्रसारा। पराकास सास्वत आधारा।।
चिदाकास निजरूप सँवारा। सिव परिपूरन एहि संसारा।।
आतमरूप ताहि जो सोधा। क्रियप्रकासजुत संजमि बोधा।।
चिदानंद निरमल आकासा। तेहि समान जेहि रूप बिलासा।।
तेहि परिपूरन सिव कँह बृत्ती। चित् स्वरूपिनी जग कँह भित्ती।।

दोहा - परम तेजमय नित्य सिव निराकार अकलंक।
चित्तबृत्ति भइ लीन जेहि सक्ति सो क्रिया असंक॥489॥

चौपाई - सबु जानइ जो सबु कछु करई। सबुहि ब्यापि परमेस्वर रहई।।
तेहि संग करइ एकता चिंतन। जोगी तैसइ बनइ चिरंतन।।
इंद्रिय सकल करइँ ब्यापारा। जोगी तिन्ह प्रति मनहि नेवारा।।
संजम साधि सिवहि जो ध्यावा। परमानंद परम सो पावा।।

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वगः परमेश्वरः।
तदैक्यचिन्तया योगी तादृशात्मा प्रकाशते।।७९।।

सर्वेन्द्रियाणां व्यापारे विद्यमानेऽपि संयमी।
प्रत्युन्मुखेन मनसा शिवं पश्यन् प्रमोदते।।८०।।

कूटस्थमचलं प्राज्ञं गुणातीतं गुणोत्तरम्।
शिवतत्त्वस्वरूपेण पश्यन् योगी प्रमोदते।।८१।।

परात्मनि क्रिया सर्वा गन्धर्वनगरीमुखा।
प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियायास्तु प्रकाशनम्।।८२।।

तरङ्गाद्या यथा सिन्धौ न भिद्यन्ते तथात्मनि।
भावा बुद्ध्यादयः सर्वे यत्तद् भावप्रकाशनम्।।८३।।

शिव एव जगत्सर्वं शिव एवाहमित्यपि।
भावयन् परमो योगी भावदोषैर्न बाध्यते।।८४।।

शिवभावे स्थिरे जाते निर्लेपस्य महात्मनः।
ये ये भावाः समुत्पन्नास्ते ते शिवमयाः स्मृताः।।८५।।

अद्वितीयशिवाकारभावनाध्वस्तकर्मणा ।
न किञ्चिद्बाध्यते साक्षात् शिवादन्यन्महात्मना।।८६।।

गलिताज्ञानबन्धस्य केवलात्मानुभाविनः।
यत्र यत्र इन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र शिवात्मता।।८७।।

रागद्वेषादयो भावाः संसारक्लेशकारणम्।
तेषामुपरमो यत्र तत्र भावः शिवात्मकः।।८८।।

यथा सूर्यसमाक्रान्तौ न शक्नोति तमः सदा।
तथा प्रकाशमात्मानं नाविद्याक्रामति स्वयम्।।८९।।

जो कूटस्थ अचल प्रग्याना। गुनातीत गुन बादि बखाना।।
सोइ सिवतत्व स्वरूप निहारी। जोगी नित प्रमुदित रह भारी।।

दोहा - **परमात्मा मँह क्रिया सबु पुर गंधर्ब लखाय।**
क्रिया घटन ऐसो तहाँ क्रियाप्रकास कहाइ॥490॥

चौपाई - उठइ लहर जस सिंधु अनेका। सबु अभिन्न जलबीचि बिबेका।।
आत्महि तस बुद्ध्यादिक भावा। सोई भाव प्रकास कहावा।।
सिव एकमात्र सकल संसारा। हमहूँ सिव सबु भाँति सँवारा।।
बड़ जोगी अस भावइ जोई। भाव दोस तेहि लिप्त न होई।।
भौतिक लिप्सा जिन्ह मन नाहीं। महामना जे जगत कहाहीं।।
जबु सिवभाव अचल होइ जाई। तिन्ह के मन सो जाइ थिराई।।
तबु तिन्ह कँह मन जोइ जोइ भावा। सोइ सोइ सबु सिवमय होइ आवा।।

दोहा - **सिवाकार एक भावना करइ करम निर्धूत।**
जोगी सिव ते अनत कछु नहिं देखइ अनुभूत॥491॥

चौपाई - जेहि अग्यान बंध छुटि जाई। आत्मा अनुभव भरि रहि जाई।।
तेहि जँह जँह इंद्रिय ललचाहीं। तँह सिवत्व अनुभूति कराहीं।।
रागद्वेष आदिक जे भावा। ते संसृति दुख हेतु कहावा।।
जँह उपरम तिन्हकर होइ जाई। तहाँ सिवात्मक भाव कहाई।।
तिमिर पटल आबरन न होई। कबहुँ कि सूरज ढाँकै सोई।।
जैसेहिं नभ सूरज उइ आवा। अंधकार भगि जान बचावा।।
वैसेहिं जँह आतमा प्रकासा। स्वयं अविद्या अतिक्रम नासा।।

दोहा - **मुख्य अरथ बाधित भए घटित लच्छना होय।**
तासों आवै ग्यान जो ग्यान प्रकासन सोय॥492॥

चौपाई - मुक्त होइ ग्यानहि संबंधा। ग्यान सोउ लच्छ्यार्थ प्रबन्धा।।
एहि कारन दूनहुँ जुति होई। सोउ संबंध स्वभाविक होई।।

मुख्यार्थेऽसम्भवे जाते लक्षणायोगसंश्रयात्।
तज्ज्ञानयोजनं यत्तदुक्तं ज्ञानप्रकाशनम्।।९०।।

मुक्तस्य ज्ञानसम्बन्धो ज्ञेयाभावः स्वभावतः।
उपाधिसहितं ज्ञानं न भेदमतिवर्तते।।९१।।

ज्ञानमित्युच्यते सद्भिः परिच्छेदोऽपि वस्तुनः।
परात्मन्यपरिच्छेदे कुतो ज्ञानस्य सम्भवः।।९२।।

ज्ञानस्याविषये तत्त्वे शिवाख्ये चित्सुखात्मनि।
आत्मैकत्वानुसन्धानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।९३।।

अपरिच्छिन्नमानन्दं सत्ताकारं जगन्मयम्।
ब्रह्मेति लक्षणं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमिहोच्यते।।९४।।

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विश्वोपाधिविवर्जिते।
सर्वं संविन्मयं भाति तदन्यन्नैव दृश्यते।।९५।।

तस्माददद्वैतविज्ञानमपवर्गस्य कारणम्।
भावयन् सततं योगी संसारेण न लिप्यते।।९६।।

नित्ये निर्मलसत्त्वयोगिषु परे निर्वासने निष्कले
सर्वातीतपदे चराचरमये सत्तात्मनि ज्योतिषि।
संविद्व्योम्नि शिवे विलीनहृदयस्तद्भेदवैमुख्यतः
साक्षात् सर्वगतो विभाति विगलद्विश्वः स्वयं संयमी।।९७।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गतशरणस्थले दीक्षापादोदकस्थलादि-द्वादशविधलिङ्गस्थलप्रसङ्गो नाम एकोनविंशः परिच्छेदः ।।१९।।

असफल भए स्वभाविक आवा। तहाँ ग्येय कँह होइ अभावा।।
ग्यान उपाधि सहित जो होई। भेद अभाव तहाँ नहिं गोई।।
तेहु विद्वान कहहिं पुनि ग्याना। जेहि परिछिन्न पदारथ जाना।।
परिच्छेद ते रहित परातम। कइसे तँह संबंध समागम।।
नहिं तँह बिसयबिसयि कर भावा। एहि कारन तँह ग्यान अभावा।।
अबिसय ज्ञान तत्व सिवनामा। चिदानंदमय रूप ललामा।।
तेहि संग होइ जो अनुसंधाना। ऐक्य आतमा कँह सोइ ग्याना।।
अस बुध कहहिं सकल मत सोधा। जोगी हृदय होइ दिढ़ बोधा।।

दोहा - **ब्रम्ह अखंड आनंदमय बिस्वरूप सद्रूप।**
अस लच्छनमय ग्यान सो ब्रम्हग्यान अभिरूप॥493॥

चौपाई - ब्रम्हग्यान जबु उपजै सोई। बिस्व उपाधि बिबर्जित होई।।
तबु सबु कछु संबित्मय भासा। नहिं कछु दीखै भिन्न प्रकासा।।
सो अद्वैत रूप बिग्याना। परम मोच्छ कारन नहिं आना।।
जोगी अस भावइ जो संतत। भव सों लिप्त न होइ असंगत।।

छन्द - जो नित्य कहावा निरमल भावा सत्वजोगि परधाना।
जो रहितबासना निष्कल बाना सच्चित् तेज निधाना।
जो सर्बातीता परम पुनीता सकल चराचर रूपा।
सो चित् आकासा बिसद प्रकासा सिव परमेस अनूपा।।

दोहा - **भेदरहित सिवलीन चित तृन सम तजि संसार।**
सिवजोगी साच्छात् बिभु स्वयं प्रकास अपार॥494॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह उन्नीसवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

विंशः परिच्छेदः

अगस्त्यप्रश्नः—

स्थलभेदास्त्वया प्रोक्ताः शरणस्थलसंश्रिताः।
ऐक्यस्थलगतान् ब्रूहि स्थलभेदान् गणेन्द्र मे।।१।।

रेणुक उवाच —

स्थलानां नवकं चैक्यस्थलेऽस्मिन् प्रकीर्त्यते ।।२।।

तत्स्वीकृतप्रसादैक्यस्थलमादौ प्रकीर्तितम्।
शिष्टोदनस्थलं चाथ चराचरलयस्थलम्।।३।।

भाण्डस्थलं ततः प्रोक्तं भाजनस्थलमुत्तमम्।
अङ्गालेपस्थलं पश्चात् स्वपराज्ञास्थलं ततः।।४।।

भावाभावविनाशं च ज्ञानशून्यस्थलं ततः।
तदेषां क्रमशो वक्ष्ये शृणु तापस लक्षणम्।।५।।

मुख्यार्थो लक्षणार्थश्च यत्र नास्ति चिदात्मनि।
विशृङ्खलतया तस्य प्रसादः स्वीकृतो भवेत्।।६।।

मातृमेयप्रमाणादिव्यवहारे विहारिणीम्।
संवित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी स्वात्मनि तिष्ठति।।७।।

अद्वैतबोधनिर्धूतभेदावेशस्य योगिनः।
साक्षात्कृतमहासंवित्प्रकाशस्य क्व बन्धनम्।।८।।

चिदात्मनि शिवे न्यस्तं जगदेतच्चराचरम्।
जायते तन्मयं सर्वमग्नौ काष्ठादिकं यथा।।९।।

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

बीसवाँ परिच्छेद

चौपाई - मुनि अगस्ति बोलेउ मिदु बानी। रेनुक गननायकहि बखानी।।
तात कहेउ तुम्ह मोंहि समुझाई। सरनथलहि सबु भेद सुहाई।।
गननायक अबु मोहिं समुझावहु। ऐक्यथलहि सबु भेद बतावहु।।
तब रेनुक कह सुनहु मुनीसा। भेद इहाँ नौ कहेउ महेसा।।
लच्छन सहित कहउँ तोहि पाँहीं। राखउँ नहिं संसय एहि माहीं।।
पहिले नाममात्र तिन्ह कहऊँ। पाछिल क्रम पुनि एहि अनुसरऊँ।।
स्वीकृतप्रसादैक्यथल पहिला। सिष्टोदनथल दूसर कहिला।।
तीसर थल चर अचर लयाही। नाउँ भांडथल चउथ कहाही।।
भाजन थल उत्तम पुनि होई। अंगालेप छठाँ थल सोई।।

दोहा - स्वपराग्याथल बहुरि भावाभाव बिनास।
नौवाँ ग्यानसून्य थल क्रम सों लछन बिकास॥495॥

चौपाई - ग्यान प्रकास संपन्न महात्मा। सोइ इहाँ कहि जाय चिदात्मा।।
तेहि मँह मुख्य लच्छ्य दुहुँ अरथा। बिलग बिलग नहिं होहिं बिअरथा।।
तासु प्रसाद पुनि ग्यान प्रसादा। स्वीकृत होइ न तहाँ प्रमादा।।
संबित् रमन करइ ब्यौहारा। मातृमेय परमान दुआरा।।
सिवजोगी लहि तेहि परतच्छा। निज सरूप मँह ठाढ़इ अच्छा।।
गहि निरमल अद्वैत प्रबोधा। टारइ द्वैताबेस बिरोधा।।
जोगी लह संबित् परकासा। तेहि पुनि कहाँ बंध अवकासा।।

न भाति पृथ्वी न जलं न तेजो नैव मारुतः।
नाकाशो न परं तत्त्वं शिवे दृष्टे चिदात्मनि।।१०।।

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे ज्वलत्यन्तर्निरन्तरम्।
विलीनं निखिलं तत्त्वं पश्यन् योगी न लिप्यते।।११।।

अन्तर्मुखेन मनसा स्वात्मज्योतिषि चिन्मये।
सर्वानप्यर्थविषयान् जुह्वन् योगी प्रमोदते।।१२।।

सच्चिदानन्दजलधौ शिवे स्वात्मनि निर्मलः।
समर्प्य सकलान् भुङ्क्ते विषयान् तत्प्रसादतः।।१३।।

प्रकाशते या सर्वेषां माया सैवोदनाकृतिः।
लीयते तत्र चिल्लिङ्गे शिष्टं तत्परिकीर्तितम्।।१४।।

जगदङ्गे परिग्रस्ते मायापाशविजृम्भिते।
स्वात्मज्योतिषि बोधेन तदेकमवशिष्यते।।१५।।

अखण्डसच्चिदानन्दपरब्रह्मस्वरूपिणः ।
जीवन्मुक्तस्य धीरस्य माया कैङ्कर्यवादिनी।।१६।।

विश्वसंमोहिनी माया बहुशक्तिनिरङ्कुशा।
शिवैकत्वमुपेतस्य न पुरः स्थातुमीहति।।१७।।

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे निमग्नेन महात्मना।
भुज्यमाना यथायोगं नश्यन्ति विषयाः स्वतः।।१८।।

शब्दादयोऽपि विषया भुज्यमानास्तदिन्द्रियैः।
आत्मन्येव विलीयन्ते सरितः सागरे यथा।।१९।।

दोहा - चित्स्वरूप सिव मँह कियो जगत चराचर न्यस्त।
तन्मय तस होइ जाइ जस अगिनि काठ बिन्यस्त॥496॥

चौपाई - चित्स्वरूप सिव कँह जो जानइ। तेहि ते बिलग न सो कछु मानइ।।
अनल अनिल जल धरनी नाहीं। कोउ परतत्व न नभ बिलगाहीं।।
जोइ कारन सोइ कारज आही। कबहुँ कि घट माटी न कहाही।।
कारज रूप भूत सबु होई। कारन सिव सों बिलग न कोई।।
निज हिरदै चिद्रूप बिलासा। संतत ज्योतिलिंग प्रकासा।।
सकल तत्व तँह देखि बिलीना। कबहुँ लिप्त नहिं जोगि प्रबीना।।

दोहा - चिन्मय आतम अगिनि मँह अंतरमुखी बनाय।
मन सों जोगी हवन करि नित आनंद समाय॥497॥

चौपाई - जलधि पूर सत चित आनंदा। स्वात्मसिवहि सिवजोगि अमन्दा।।
सकल बिसय अरपन करि भारी। करइ भोग तेहि कृपा सुखारी।।
माया सकल जीव परकासइ। देहेन्द्रिय ब्यौहार बिकासइ।।
नित ओदन समान सो माया। जेहि बस नाचइ जीव निकाया।।
चित्स्वरूप सिवलिंग समाना। तेहि कँह सिष्ट कहहिं बुध नाना।।
माया पास प्रकृति ते धरनी। कंचुक तीस तत्व कँह बन्हनी।।
जगत रूप एहि बँध्यो सरीरा। आतम जोति बिलीन अचीरा।।
तब तँह तत्व एक अवसेसा। सो माया जेहि जान महेसा।।

दोहा - अखंड सच्चिदानंद परम ब्रम्ह कँह फेरि।
जोगी जो जीवन्मुकुत माया तेहि की चेरि॥498॥

चौपाई - माया जगत मोहिनी जानहु। सक्ति असीम निरंकुस मानहु।।
जो जोगी सिव ऐक्य बनाई। तेहि सम्मुख कहुँ माया आई।।
जोति लिंग जे चित् आकारा। मगन ताहि मँह करइ बिहारा।।

अर्थजातमशेषं तु ग्रसन् योगी प्रशाम्यति।
स्वात्मनैवास्थितो भानुस्तेजोजालमशेषतः।।२०।।

लिङ्गैक्ये तु समापन्ने चरणाचरणे गते।
निर्देही स भवेद्योगी चराचरविनाशकः।।२१।।

अनाद्यविद्यामूला हि प्रतीतिर्जगतामियम्।
स्वात्मैकबोधात्तन्नाशे कुतो विश्वप्रकाशनम्।।२२।।

यथा मेघाः समुद्भूता विलीयन्ते नभस्थले।
तथात्मनि विलीयन्ते विषयाः स्वानुभाविनः।।२३।।

स्वप्ने दृष्टं यथा वस्तु प्रबोधे लयमश्नुते।
तथा सांसारिकं सर्वमात्मज्ञाने विनश्यति।।२४।।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभ्यः परावस्थामुपेयुषः।
किं वा प्रमाणं किं ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम्।।२५।।

तुर्यातीतपदं यत्तद् दूरं वाङ्मनसाध्वनः।
अनुप्रविश्य तद्योगी न भूयो विश्वमीक्षते।।२६।।

नान्यत् पश्यति योगीन्द्रो नान्यज्जानाति किञ्चन।
नान्यच्छृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे।।२७।।

असदेव जगत्सर्वं सदिव प्रतिभासते।
ज्ञाते शिवे तदज्ञानं स्वरूपमुपपद्यते।।२८।।

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्ब्रह्माण्डस्थलमुच्यते।।२९।।

महाजोगि अस भोग जो करई। बिसय सो बिनसन मुँह करि सरई।।
बिसय कहे सबदादिक नाना। इंद्रिय करइँ भोग मनमाना।।
भुगुत आतमहि तेउ बिलाहीं। जइसे सरिता सागर माहीं।।

दोहा - **सकल बिसय करि भोग पुनि जोगी उपरम होइ।**
जइसे भानु प्रकासि सबु तेजु समेटइ सोइ॥499॥

चौपाई - जगत चराचर जेते आहीं। लिंग संग होइ एक बनाहीं।।
देहरहित भावै सो जोगी। चर अरु अचर बिनास संजोगी।।
जेहि ते होइ जगत कँह भाना। मूल अनादि अबिद्या माना।।
जब संसार आत्म सिव एका। होइ बोध सुधि सहित बिबेका।।
तबहिं अबिद्या जाइ नसाई। पुनि कँह जग प्रतीति सरसाई।।
जथा मेघ नभ मँह उपजाहीं। बहुरि नभहिं ते मेघ बिलाहीं।।
निज स्वरूप अनुभव जुत जोई। बिसय लीन तेहि आतम होई।।

दोहा - **सपन दिखाई जो परै जागे सो मिटि जाय।**
आतमग्यान भए पुनि भवप्रपंच हटि जाय॥500॥

चौपाई - जागत सपन सुसुप्ति बिहाई। दसा तुरीयातीत थिराई।।
जो जोगी तेहि का परमाना। ग्येय न कछु नहिं ग्यान सधाना।।
दसा तुरीयातीत जो होई। मन बानी तँह पहुँच न कोई।।
जदि जोगी तँह करइ प्रबेसा। कबहुँ न देख बिस्व लवलेसा।।
सिव अपरोच्छ ग्यान करि जोगी। रहि न जाइ भव बिभव कऽ भोगी।।
सिव अतिरिक्त सो नहि कछु देखइ। नहि दूसर कछु जानइ पेखइ।।
चिदानंदमय सिव तजि आना। सो कछु दूसर सुनइ न काना।।

दोहा - **असत जगत सत भासई जबु सिवग्यान न होय।**
सिव जाने अग्यान सो निज सरूप गत होय॥501॥

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्वोद्भासनकारिणी।
साक्षिणी सर्वभूतानां समिन्धे सर्वतोमुखी।।३०।।

विश्वं यत्र लयं याति विभात्यात्मा चिदाकृतिः।
सदानन्दमयः साक्षात् सा विमर्शमयी कला।।३१।।

पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः।।३२।।

विश्वाधारमहासंवित्प्रकाशपरिपूरितम्।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः।।३३।।

विमर्शभाण्डविन्यस्तविश्वतत्त्वविजृम्भणः।
अनन्यमुखसम्प्रेक्षी मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति।।३४।।

समस्तजगदण्डानां सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
विमर्शो भासते यत्र तद्भाजनमिहोच्यते।।३५।।

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्ववैचित्र्यकारिणी।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं ब्रह्म तदिदं विश्वभाजनम्।।३६।।

अन्तःकरणरूपेण जगदङ्कुररूपतः।
यस्मिन् विभाति चिच्छक्तिर्ब्रह्मभूतः स उच्यते।।३७।।

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिविमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता।।३८।।

अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म स्थितमेकमहंपदे।।३९।।

चौपाई - ब्रम्ह अंड सत कोटि अपारा। तेहि उत्पति थिति लय परचारा।।
जो बिमर्स तेहि प्रति थल भूता। सो कहि जाइ भांडथल पूता।।
ईस बिमर्स सक्ति परचंडा। जेहि ते प्रगट होंहि ब्रम्हंडा।।
सकल पदारथ साच्छी सोई। बिबिध रूप चहुँओर अँजोई।।
आत्मा चिदानंद सद्रूपा। जेहि कारन भासइ सुखरूपा।।
जेहि मँह सकल बिस्व लय होई। कही बिमर्स कला प्रभु सोई।।

दोहा - जे बिमर्स परिपूरन पराहन्त आबेस।
ब्यापक साच्छी सृष्टिकृत् सो सर्बग्य महेस॥502॥

चौपाई - सकल बिस्व आधार कहाई। संबित् महा प्रकास भराई।।
परमेस्वरहि बिमर्स सो होई। पराहंत मय कह सबु कोई।।
बिस्वतत्व कँह जो बिस्तारा। भांड बिमर्स घालि रखवारा।।
जो नहिं अन्य अपेच्छा करई। सिवजोगी स्वरूप निज रहई।।
जो ब्रम्हांड सकल उपजाया। कइ पालन पुनि अंत नसाया।।
सो बिमर्स जँह भास निरंतर। भाजन थल सोइ कहहिं धुरंधर।।

दोहा - रचना बिस्व बिचित्र अति करइ जो सक्ति महान।
सो बिमर्स जेहि ब्रम्ह मँह तेहि जग भाजन जान॥503॥

चौपाई - जग अँखुवा धरि रूप बहोरी। अंतः करन रूप नहिं थोरी।।
सिव कै चित् सक्ती जँह भासी। ब्रम्हभूत सो सिव अबिनासी।।
जथा चंद थिर रहइ जोन्हाई। करि अँजोर सब बस्तु देखाई।।
तथा ब्रम्ह थित होइ बिमर्सा। सक्ति प्रकासइ बिस्व सहर्षा।।
सिव बोधक श्रुति कहइ अकारा। सक्ति रूप थित रहइ हकारा।।
एहि प्रकार पद 'अहं' बनाई। ब्रम्ह सोइ सिवसक्ति कहाई।।

अहन्तां परमां प्राप्य शिवशक्तिमयीं स्थिराम्।
ब्रह्मभूयंगतो योगी विश्वात्मा प्रतिभासते।।४०।।

वृक्षस्थं पत्रापुष्पादि वटबीजस्थितं यथा।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतत् परात्मनः।।४१।।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं चिदानन्दमयं महत्।
यस्य रूपमिदं ख्यातं सोऽङ्गालेप इहोच्यते।।४२।।

समस्तजगदात्मापि संविद्रूपो महामतिः।
लिप्यते नैव संसारैर्यथा धूमादिभिर्नभः।।४३।।

न विधिर्न निषेधश्च न विकल्पो न वासना।
केवलं चित्स्वरूपस्य गलितप्राकृतात्मनः।।४४।।

घटादिषु पृथग्भूतं यथाऽऽकाशं न भिद्यते।
तथोपाधिगतं ब्रह्म नानारूपं न भिद्यते।।४५।।

अनश्वरमनिर्देश्यं यथा व्योम प्रकाशते।
तथा ब्रह्मापि चैतन्यमत्र वैशेषिकी कला।।४६।।

न देवत्वं न मानुष्यं न तिर्यक्त्वं न चान्यथा।
सर्वाकारत्वमाख्यातं जीवन्मुक्तस्य योगिनः।।४७।।

अप्रमेये चिदाकारे ब्रह्मण्यद्वैतवैभवे।
विलीनः किं नु जानाति स्वात्मानं परमेव वा।।४८।।

यत्र नास्ति भिदायोगादहं त्वमिति विभ्रमः।
न संयोगो वियोगश्च न ज्ञेयज्ञातृकल्पना।।४९।।

दोहा - **परम अहंता पाइ थिर सो सिवसक्ति सरूप।**
जोगी ब्रम्हसरूप होइ भासइ बिस्व स्वरूप॥504॥

चौपाई - तरु मँह पात फूल जस होई। पहिले रहइ बीज मँह सोई।।
तैसइँ भाजनथल सिवजोगी। हृदय बीज रह बिस्व निरोगी।।
दिक् कालादि रहित अवछेदा। चिदानंदमय रूप अभेदा।।
सो महान यहु रूप धराई। अंगालेप इहाँ कहि जाई।।
सकल जगत आतम अस गावा। संबिदरूप महामति आवा।।
तेहि संसार न ब्यापइ कोई। जस नभ धुआँ प्रभाव न होई।।

दोहा - **सकल प्रकृति गुन रहित जो चित्स्वरूप भरि होइ।**
बिधि निसेध तेहि बासना नहिं बिकल्प कछु कोइ॥505॥

चौपाई - जथा घटादिक पृथक् अकासा। बिलग न होइ सकल दिसि बासा।।
तैसइ सहित उपाधि अनेका। भिन्न न होइ ब्रम्ह बस एका।।
जस आकास अनस्वर होई। अनिर्देस्य होइ भासइ सोई।।
तैसइँ ब्रम्ह कहहिं सबु ग्यानी। चिति बिसेस इहँ कला समानी।।
नहिं सो देव मनुस्य न होई। नहि पसु पच्छी अथवा कोई।।
जोगी जीवन्मुक्ति बनाई। सबु आकार करै भरपाई।।

दोहा - **चिदाकार अद्वैत जो ब्रम्ह प्रमेय बिहीन।**
आपु न पर नहिं जानई जोगी तेहि मँह लीन॥506॥

चौपाई - भेद अजोग जहाँ नहिं होई। मैं अरु तूँ अस बिभ्रम कोई।।
जँह संजोग बिजोग न बना। ग्यान ग्येय कऽ नाहिं कल्पना।।
बंधन मुक्ति न कछु मन आवै। नहि देवत्व गरब हठि धावै।।
नहिं तँह सुख नहिं दुख कछु माना। नहिं अग्यान होइ नहिं ग्याना।।
नहिं कोउ ऊँच नीच नहिं काहू। नहिं कोउ ऊपर नीचे जाहू।।

न बन्धो न च मुक्तिश्च न देवाद्यभिमानिता।
न सुखं नैव दुःखं च नाज्ञानं ज्ञानमेव वा।।५०।।

नोत्कृष्टत्वं न हीनत्वं नोपरिष्टान्न चाप्यधः।
न पश्चान्नैव पुरतो न दूरे किञ्चिदन्तरे।।५१।।

सर्वाकारे चिदानन्दे सत्यरूपिणि शाश्वते।
पराकाशमये तस्मिन् परे ब्रह्मणि निर्मले।।५२।।

एकीभावमुपेतानां योगिनां परमात्मनाम्।
परापरपरिज्ञानपरिहासकथा कुतः।।५३।।

देशकालानवच्छिन्नतेजोरूपसमाश्रयात् ।
स्वपरज्ञानविरहात् स्वपराज्ञस्थलं विदुः।।५४।।

त्वन्ताहन्ताविनिर्मुक्ते शून्यकल्पे चिदम्बरे।
एकीभूतस्य सिद्धस्य भावाभावकथा कुतः।।५५।।

अहंभावस्य शून्यत्वादभावस्य तथात्मनः।
भावभावविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः प्रकाशते।।५६।।

सुखदुःखादिभावेषु नाभावो भाव एव वा।
विद्यते चित्स्वरूपस्य निर्लेपस्य महात्मनः।।५७।।

यस्मिन् ज्योतिषि चिद्रूपे दृश्यते नैव किञ्चन।
सद्रूपं वाप्यसद्रूपं भावाभावं विमुञ्चतः।।५८।।

प्रतीयमानौ विद्येते भावाभावौ न कुत्रचित्।
लिङ्गैक्ये सति यत्तस्माद्भावाभावलयस्थलम्।।५९।।

नहिं कछु आगा पीछ बनाई। नहिं कछु निकट न दूर लखाई।।

दोहा - **सत्य रूप सास्वत परम चिदानन्द सबु रूप।**
पराकास मय भासित निरमल ब्रम्ह अनूप॥507॥
तेहि मँह एकीभाव गत जोगिराज परमेस।
ताहि ग्यान पर-अपर कौ चरचा मात्र भदेस॥508॥

चौपाई - देस काल अवछिन्न न होई। तेज रूप परब्रम्ह सँजोई।।
तेहि ते सामरस्य बैठाई। ग्यानहु निज पर भेद बिहाई।।
सिवजोगी कँह दसा इदीसा। स्वपराग्यथल होइ मुनीसा।।
मैं तूँ मोर तोर यहु भावा। एहि ते रहित स्वरूप बनावा।।
अइसन सून्य सरिस आकासा। जँह चिद्भाव अनंत प्रकासा।।
तेहि मँह समरस सिद्ध उपाई। सिवजोगी दिढ़ दसा बनाई।।
तब तेहि बिसय न कइसहु भावा। का पुनि कथा कि होइ अभावा।।

दोहा - **अहं भाव कँह सून्यता आत्महि नाहिं अभाव।**
जीवन्मुक्त प्रकासई रहित जो भावाभाव॥509॥

चौपाई - पाप पुन्य सों जो नहिं रंगा। चित्स्वरूप सिवजोगि अभंगा।।
तेहि कँह सुख दुख आदिक भावा। भावाभाव न कछू कहावा।।
भावाभाव द्वंद तजि आई। चित्स्वरूप तेजोमय साँईं।।
असद्रूप सद्रूप झवाँई। तेहि दूनहुँ नहि परै लिखाई।।
जेहि कारन सिवलिंग समाना। सामरस्य सिवजोगी आना।।
प्रतीयमान जद्यपि जग माहीं। भाव अभाव कतहुँ कछु नाहीं।।
ताकी दसा हेतु एहि जोई। भावाभाव प्रलय थल सोई।।

दोहा - **पर अरु अपर अपेच्छि जो भावाभाव बिबेक।**
ज्ञान न रह सिव जोगि मँह ग्यान सून्य कह छेक॥510॥

परापरसमापेक्षभावाभावविवेचनम् ।
ज्ञानं ब्रह्मणि तन्नास्ति ज्ञानशून्यस्थलं विदुः।।६०।।

जले जलमिव न्यस्तं वह्नौ वह्निरिवार्पितम्।
परे ब्रह्मणि लीनात्मा विभागेन न दृश्यते।।६१।।

सर्वात्मनि परे तत्त्वे भेदशङ्काविवर्जिते।
ज्ञात्रादिव्यवहारोत्थं कुतो ज्ञानं विभाव्यते।।६२।।

निर्विकारं निराकारं नित्यं सीमाविवर्जितम्।
व्योमवत् परमं ब्रह्म निर्विकल्पतया स्थितम्।।६३।।

न पृथ्व्यादीनि भूतानि न ग्रहा नैव तारकाः।
न देवा न मनुष्याश्च न तिर्यञ्चो न चापरे ।।६४।।

तस्मिन् केवलचिन्मात्रसत्तानन्दैकलक्षणे।
त्वन्ताहन्तादिसंरूढं विज्ञानं केन भाव्यते।।६५।।

ज्ञेयाभावाद्विशेषेण शून्यकल्पं विभाव्यते।
ज्ञातृज्ञेयादिभिः शून्यं शून्यं ज्ञानादिभिर्गुणैः।।६६।।

आदावन्ते च मध्ये च शून्यं सर्वत्र सर्वदा।
द्वितीयेन पदार्थेन शून्यं शून्यं विभाव्यते।।६७।।

केवलं सच्चिदानन्दप्रकाशाद्वयलक्षणम्।
शून्यकल्पं पराकाशं परब्रह्म प्रकाशते।।६८।।

शून्यज्ञानादिसङ्कल्पे शून्यसर्वार्थसाधने।
ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे स्वप्रकाशे निरुत्तरे।।
एकीभावमुपेतस्य कथं ज्ञानस्य सम्भवः।।६९।।

चौपाई - जल मँह जस जल जाइ बहाई। अगिनि डारि जस अगिनि जराई।।
परम ब्रम्ह जेहि आत्मा लीना। सो कि बिलग कहुँ जाइअ चीना।।
जहाँ भेद संका कछु नाहीं। परम तत्व सबु आतम माहीं।।
ग्याता ग्येय ग्यान ब्यौहारा। प्रगट ग्यान अनुभव केहि द्वारा।।
रहित बिकार अकार बिहाई। नित्य असीम न सकइ कहाई।।
परम ब्रम्ह आकास समाना। निरबिकल्प थित एक समाना।।
पृथिवी आदि भूत जे पाँचा। नहिं ग्रह नव नहिं तारक साँचा।।
देव मनुज पसु पच्छिउ नाहीं। अउर कछू नहिं तहाँ लखाहीं।।

दोहा - मात्र सच्चिदानन्दमय ब्रम्हरूप सिव माँहिं।
त्वंताऽहंताभाव दिढ़ ग्यान न काहु लखाहि॥511॥

चौपाई - कारन ग्येय अभाव बिसेषा। सून्य समान ग्यान चित देखा।।
ग्याता ग्येय ग्यान ते हीना। सो अनुभव कह सून्य प्रबीना।।
इच्छा आदि अनत गुन नाना। सून्य ग्यान इनहूँ ते भाना।।
यहु तो आदि मध्य अवसाना। सदा सबुइ थल सून्य बिधाना।।
ब्रम्ह बिहाइ सून्य यहु जोई। अन्य बस्तु सों सूनो होई।।
केवल सच्चित् सुखद प्रकासा। अद्दुतीय लच्छन संकासा।।
पराकास सो सून्य समाना। परंब्रम्ह भासइ बहु माना।।

दोहा - सकल अरथ साधन रहित ग्यान संकलपहीन।
सर्बोपरि लोकोत्तर बिसद न कतहुँ मलीन॥512॥
स्वप्रकास चिद्रूप जो ज्योतिर्लिंग महान।
तेहि संग जो एक होइ गा ता कँह पुनि का ग्यान॥513॥

चौपाई - जाकी कारज दसा न होई। कारनतापि कतहुँ रह खोई।।
नहिं कहुँ सेष न कबहूँ सेषी। सो जोगी परमुकुत बिसेषी।।

यस्य कार्यदशा नास्ति कारणत्वमथापि वा।
शेषत्वं नैव शेषित्वं स मुक्तः पर उच्यते।।७०।।

एतावदुक्त्वा परमप्रबोध
मद्वैतमानन्दशिवप्रकाशम्।
देव्यै पुरा भाषितमीश्वरेण
तूष्णीमभूद् ध्यानपरो गणेन्द्रः।।७१।।

एवमुक्त्वा समासीनं शिवयोगपरायणम्।
रेणुकं तं समालोक्य बभाषे प्राञ्जलिर्मुनिः।।७२।।

शिवयोगविशेषज्ञ शिवज्ञानमहोदधे।
समस्तवेदशास्त्रादिव्यवहारधुरन्धर ।।७३।।

आलोकमात्रनिर्धूतसर्वसंसारबन्धनः ।
स्वच्छन्दचरितोल्लासस्वप्रकाशात्मवच्छिव।।७४।।

अवतीर्णमिदं शास्त्रमनवद्यं त्वदाननाम्।
श्रुत्वा मे मोदते चित्तं ज्योतिः पश्ये शिवाभिधम्।।७५।।

अद्य मे सफलं जन्म गतो मे चित्तविभ्रमः।
सञ्जाता पाशविच्छित्तिस्तपांसि फलितानि च।।७६।।

इदानीमेव मे जातं मुनिराजोत्तमोत्तमम्।
इतः परं मया नास्ति सदृशो भुवनत्रये।।७७।।

शास्त्रं तव मुखोद्गीर्णं शिवाद्वैतपरम्परम्।
मां विना कस्य लोकेषु श्रोतुमस्ति तपः शुभम्।।७८।।

तपसां परिपाकेन शङ्करस्य प्रसादतः।
आगतस्त्वं महाभाग मां कृतार्थयितुं गिरा ।।७९।।

एतना कहि रेनुक गननायक। सैव ग्यान सुभ बोध प्रदायक।।
अद्दुतीय अद्वैत अनन्दा। सिव प्रकास जो करइ अमन्दा।।
गुपुत रूप जेहि ग्यान महेसा। गिरिजा कँह कीन्हेउ उपदेसा।।
सोइ सिद्धांत सैव मनहारी। महिमा जासु जान त्रिपुरारी।।
कहि कुंभज सों रहे चुपाई। गननायक रह ध्यान लगाई।।

दोहा - **सिवजोगी कहि मौन भे बैठेउ ध्यान लगाय।**
देखि हाथ जोरे जुगल तेहि बोलेउ मुनिराय।।514।।

चौपाई - हे सिवजोग बिसेष महौषधि। हे सिवग्यान बिधान महोदधि।।
सकल बेद बेदांत शास्त्र कर। धरमादिक ब्यौहार धुरंधर।।
दृष्टिमात्र केवल करि पूता। सबु संसृति बंधन निर्धूता।।
हे स्वच्छन्द चरित उल्लासा। निज प्रकास सिव तत्व बिलासा।।
सैव सास्त्र यहु बाहर आवा। तव मुख ते अनवद्य सुहावा।।
यहु सुनि चित्त भयउ आनन्दा। जोति सिवाख्या लखउँ अमंदा।।

दोहा - **आजु जनम मम सफल भा गयउ चित्तसंदेह।**
भई तपस्या फलित सबु पास कटेउ जस खेह।।515।।

चौपाई - उत्तम मुनिराजत्व सुहावा। मोहिं मँह अबहिं तुरंतहि आवा।।
मोहिं समान अब कोऊ नाहीं। देखेउँ सकल भुवन भरि बाँहीं।।
तुम्हरे मुँह सों बाहेर आवा। सास्त्र सिवाद्वय जो तुम गावा।।
छाँड़ि मोहिं को तेहि सुनि आजू। संकर कृपा भयउ बड़ काजू।।
मोहिं कृतारथ करन पधारेउ। महाभाग जो सास्त्र उचारेहु।।

दोहा - **सहित बिनय अस्तुति करत लखि अगस्ति मुनिराय।**
गननायक करुना करेउ बोलेउ सहज सुभाय।।516।।

इति स्तुवन्तं विनयादगस्त्यं मुनिपुङ्गवम्।
आलोक्य करुणादृष्ट्या बभाषे स गणेश्वरः।।८०।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल तपःसिद्धमनोरथ।
त्वां विना शिवशास्त्रस्य कः श्रोतुमधिकारवान्।।८१।।

पात्रं शिवप्रसादस्य भवानेको न चापरः।
इति निश्चित्य कथितं मया ते तन्त्रमीदृशम्।।८२।।

स्थाप्यतां सर्वलोकेषु तन्त्रमेतत् त्वया मुने।
ईदृशं शिवबोधस्य साधनं नास्ति कुत्रचित्।।८३।।

रहस्यमेतत् सर्वज्ञः सर्वानुग्राहकः शिवः।
अवादीत् सर्वलोकानां सिद्धये पार्वतीपतिः।।८४।।

तदिदं शिवसिद्धान्तसाराणामुत्तमोत्तमम्।
वेदवेदान्तसर्वस्वं विद्याचारप्रवर्तकम्।।८५।।

वीरमाहेश्वरग्राह्यं शिवाद्वैतप्रकाशकम्।
परीक्षितेभ्यो दातव्यं शिष्येभ्यो नान्यथा क्वचित्।।८६।।

एतच्छ्रवणमात्रेण सर्वेषां पापसंक्षयः।
अवतीर्णं मया भूमौ शास्त्रस्यास्य प्रवृत्तये।
प्रवर्तय शिवाद्वैतं त्वमपि ज्ञानमीदृशम्।।८७।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गतैक्यस्थले स्वीकृतप्रसादिस्थलादि-नवविधलिङ्गस्थलप्रसङ्गो नाम विंशः परिच्छेदः ।।२०।।

चौपाई - हे अगस्ति मुनिबर सिवप्यारे। हे तपसिद्ध मनोरथ बारे।।
तुम्ह बिनु दूसर को अधिकारी। सुनि सिवसास्त्र जो होई सुखारी।।
सिव कँह कृपा पात्र तुम्ह एका। नहि कोउ दूसर सहित बिबेका।।
करि निहिचय गत संसय लेसा। सैव तंत्र तुम्ह कँह उपदेसा।।
हे मुनिबर यहु तंत्र सम्हारहु। सकल लोक अबु एहि परचारहु।।
साधन एहि प्रकार सिवग्याना। कतहुँ कबहुँ नहि होइहि आना।।

दोहा - सबु लोगन कँह सिद्धि हित यहु रहस्य सिव खोलि।
सो सर्बग्य कृपानिधि सबहि सुनायउ बोलि॥517॥

छन्द - जे संभु महातम कह सैवागम तिन्ह मँह उत्तम माना।
जे स्रुति स्रुत्यन्ता सार कहन्ता विद्याचार विधाना।।
जेहि गहहिं बीरेस्वर दिढ़ माहेस्वर सिव अद्वैत प्रकासा।
एहि ताहि दिआई परख कराई अन्य न काहूँ पासा।।

दोहा - कान परे यहु सबन्हि कँह नासै पाप बिकार।
सास्त्र प्रबर्तन हेतु एहि लियो धरनि अवतार॥518॥
सुनेहु चित्त एकाग्र करि कुम्भज सहित सनेह।
सिवाद्वैत परचार करि करहु धन्य यहु देह॥519॥
एहि समान नहिं ग्यान कोउ जो कर मुकुति बिधान।
उपदेसहु यहु लोक मँह सकल सिद्धि कँह खान॥520॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह बीसवाँ परिच्छेद समाप्त।।

अथ

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

एकविंशः परिच्छेदः

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य पुरस्तादेव रेणुकः।
अन्तर्दधे महादेवं चिन्तयन्नन्तरात्मना।।१।।

य इदं शिवसिद्धान्तं वीरशैवमतं परम्।
शृणोति शुद्धमनसा स याति परमां गतिम्।।२।।

स्वच्छन्दाचाररसिकः स्वेच्छानिर्मितविग्रहः।
आससाद पुरीं लङ्कां रेणुको गणनायकः।।३।।

समागतं महाभागं सर्वागमविशारदम्।
विभीषणः समालोक्य गेहं प्रवेशयन्निजम्।।४।।

भद्रासने निजे रम्ये निवेश्य गणनायकम्।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सर्वैरुपचारैरपूजयत्।।५।।

पूजितेन प्रसन्नेन रेणुकेन निरूपितः।
निषसाद तदभ्याशे स निजासनमाश्रितः।।६।।

आबभाषे गणेन्द्रं तं कृताञ्जलिर्विभीषणः।
मानुषाकारसम्पन्नं साक्षाच्छिवमिवापरम्।।७।।

रेणुक त्वां गणाधीश शिवज्ञानपरायण।
अवतीर्णं महीमेनामिति सम्यक् श्रुतं मया।।८।।

मद्भाग्यगौरवादद्य समायास्त्वं पुरीमिमाम्।
कथं भाग्यविहीनानां सुलभाः स्युर्भवादृशाः।।९।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस

इक्कीसवाँ परिच्छेद

चौपाई - अस कहि सो रेनुक गननायक। सुमिरत महादेव सबु दायक।।
अन्तर्धान भयउ छन माहीं। कुंभज रिसि ताकत रहि जाहीं।।
जो यहु सिव सिद्धांत पुनीता। बीरसैव सद्धर्म प्रतीता।।
सुनइ बिमल निज मनहि बनाई। सो तनु तजइ परम पद पाई।।
जेहि स्वच्छंदचार रस भावै। निज इच्छा तनु आपु बनावै।।
सो रेनुक गननायक भेसा। लंका पुरी कीन्ह परबेसा।।

दोहा - सर्बागमपंडित महा देखि बिभीषन ताहि।
पैठारेउ पुनि रेनुकहि सादर निज घर माँहिं।।521।।

चौपाई - निज रमनीय सुखद सिंहासन। गननायक बैठाइ बिभीषन।।
पूजा कीन्ह सकल उपचारा। अर्घ्यपाद्य निज हाथ सँवारा।।
जथा उचित बिधि पूजा पाई। रेनुक दीन्ह प्रसन्न रजाई।।
तबु तेहि पास डासि निज आसन। बैठ बिभीषन लहि अनुसासन।।
कहेउ बिभीषन दोउ कर जोरे। सबु बिधि भाग फरेउ अबु मोरे।।
जो दरसन गननायक दीन्हा। किरपा कीन्ह बड़ाई दीन्हा।।
हे गननायक मनुज सरीरा। अपर संभु परतच्छ सुधीरा।।
मो ते कवन आजु बड़ भागी। अनायास आयहु मोहि लागी।।

दोहा - हे सिवग्यान परायन रेनुक सिवप्रिय आप।
धरती पर अवतरेउ अस सुनत रहेउँ निष्पाप।।522।।

चौपाई - आजु आप एहि नगरी आयउ। एहि ते मो बड़ भाग जनायउ।।
आप सरिस जन एहि जग आई। भागहीन नर कबहुँ कि पाई।।
सकल लोक मँह मो सम नाहीं। भागवंत नहिं कोउ कहि जाहीं।।
सिव सरूप जाके घर आए। स्वयं आप साच्छात् सुहाए।।

मत्समो नास्ति लोकेषु भाग्यातिशयवत्तया।
यस्य गेहं स्वयं प्राप्तो भवान् साक्षान्महेश्वरः।।१०।।

कृतार्था मे पुरी ह्येषा कृतार्थो राक्षसान्वयः।
जीवितं च कृतार्थं मे यस्य त्वं दृष्टिगोचरः।।११।।

इति ब्रुवाणं कल्याणं राक्षसेन्द्रं गणेश्वरः।
बभाषे सस्मितो वाणीं विश्वोल्लासकरीं शुभाम्।।१२।।

विभीषण महाभाग जाने त्वां धर्मकोविदम्।
त्वां विना कस्य लोकेषु जायते भक्तिरीदृशी।।१३।।

समस्तशास्त्रसारज्ञं सर्वधर्मपरायणम्।
अध्यात्मविद्यानिरतमाहुस्त्वां राक्षसेश्वर।।१४।।

त्वदीयधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाहं विस्मिताशयः।
व्रजन् कैलासमचलं त्वदन्तिकमुपागतः।।१५।।

प्रीतोऽस्मि तव चारित्रैः शोभनैर्लोकविश्रुतैः।
दास्यामि ते वरं साक्षात् प्रार्थयस्व यथेप्सितम्।।१६।।

इति प्रसादसुमुखे भाषमाणे गणेश्वरे।
प्रणम्य परया प्रीत्या व्याजहार विभीषणः।।१७।।

आगमानुग्रहादेव भवतः शिवयोगिनः।
दुर्लभाः सर्वलोकानां समपद्यन्त सम्पदः।।१८।।

तथापि प्रार्थनीयं मे किञ्चिदस्ति गणेश्वर।
सुकृते परिपक्वे हि स्वयं सिद्ध्यति वाञ्छितम्।।१९।।

भयउ धन्य मम लंका नगरी। राच्छस जाति कृतारथ सगरी।।
जीवन मोर भयउ कृतकृत्या। जाके दीठि परेउ तुम्ह सत्या।।

दोहा - गननायक सों सुभबचन रहेउ बिभीषन बोलि।
मंदहास रेनुक कहेउ सुभ हुलास अति घोलि।।523।।

चौपाई - महाभाग कछु अगम न मोंही। जानउँ धरम धुरंधर तोही।।
छाँड़ि तोहि एहि लोक न काहू। अइसन भगति कि उपजइ जाहू।।
राच्छसेन्द्र हे बच्छ बिभीषन। सकल सास्त्र जानहु तुम नीमन।।
धरमपरायन सबु बिधि अहहू। सैवाध्यात्म निरत नित रहहू।।
सुनि सुनि धरम संपदा तोरी। अतिसय भइ बिस्मित मति मोरी।।
जात रहेउँ हरगिरि अभिरामा। चलि आयउँ पुनि तुम्हरे धामा।।

दोहा - अति प्रसन्न ते चरित सुनि सुंदर लोक प्रसिद्ध।
देउँ माँगु बर जो चहै सकल मनोरथ सिद्ध।।524।।

चौपाई - बोलत अति प्रसन्न गननायक। रेनुक देखि सुमुख सुखदायक।।
परम प्रेम जुत कीन्ह प्रनामा। कहेउ बिभीषन गिरा ललामा।।
आप सरिस सिवजोगी आयउ। मोहि पर परम कृपा दरसायउ।।
सकल लोक कँह दुरलभ जोई। सम्पत्ति मो घर आयउ सोई।।
जेहि पर कृपा तुम्हारी होई। यहु सम्पति पावै सबु कोई।।
राउर दरस भाग ते पावा। तुम्हरी कृपा न कोउ अभावा।।
तदपि नाथ हौं माँगन चाही। तुम्ह कँह कछु अदेय जग नाहीं।।
जबहि पुन्य परिपाक प्रकासा। स्वयं सिद्ध होवै अभिलाषा।।

दोहा - रावन अग्रज रहेउ मम माहेस्वर सिरमौर।
सासन तीनहुँ लोक किय सत्रु न काहू ठौर।।525।।

चौपाई - जेहि के अतुल प्रताप सहाई। नहि समरथ इंद्रादि रहाई।।
तासों भए देव श्रीहीना। राजरहित बिचरहिं अति दीना।।
सोपि दसानन काल प्रभावा। निज चरित्रबिपरीत बिभावा।।
गयउ राम के हाथे मारी। रन मँह पुरुषोत्तम अवतारी।।

रावणो हि मम भ्राता माहेश्वरशिखामणिः।
अदृष्टशत्रुसम्बाधं शशास हि जगत्त्रयम्।।२०।।

यस्य प्रतापमतुलं सोढुमक्षतशक्तयः।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे राज्यलक्ष्म्या वियोजिताः।।२१।।

स तु कालवशेनैव स्वचरित्रविपर्ययात्।
रणे विष्णवतारेण रामेण निहतोऽभवत्।।२२।।

स तु रामशराविद्धः कण्ठस्खलितजीवितः।
अवशिष्टं समालोक्य मामवादीत् सुदुःखितः।।२३।।

विभीषण विशेषज्ञ महाबुद्धे सुधार्मिक।
अवशिष्टोऽसि वंशस्य रक्षसां भाग्यगौरवात् ।।२४।।

वयमज्ञानसम्पन्ना महत्सु द्रोहकारिणः।
ईदृशीं तु गतिं प्राप्ता दुस्तरा हि विधिस्थितिः।।२५।।

नवकं लिङ्गकोटीनां प्रतिष्ठाप्यमिह स्थले।
इति सङ्कल्पितं पूर्वं मया तदवशिष्यते।।२६।।

कोटिषट्कं तु लिङ्गानां मया साधु प्रतिष्ठितम्।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां स्थापनीयमतस्त्वया।।२७।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा दीनबुद्धेर्मरिष्यतः।
तथा साधु करोमीति प्रतिज्ञातं मया तथा।।२८।।

युगपच्छिवलिङ्गानां कोटित्रयमनुत्तमम्।
प्रतिष्ठाप्यं यथाशास्त्रमिति मे निश्चयोऽभवत्।।२९।।

लिङ्गकोटित्रयस्येह युगपत् स्थापनाविधौ।
अविदन्नेकमाचार्यमहमेवमवस्थितः ।।३०।।

राम बान ते बेधा रावन। भयउ कंठगत प्रान भयावन।।
देखि मोहिं कुल एकहि बाँचा। मो सन सो अति दुखी उवाचा।।

दोहा - **हे बिसेष बिग्यान जुत अनुज बिभीषन तात।**
धरमसील मतिमान अति कहउँ तोहि इक बात॥526॥
राच्छस कुल कँह भाग ते अपनेहु पुन्य प्रताप।
एकमात्र तुम्ह बचि रहेउ करउँ न तनिक प्रलाप॥527॥

चौपाई - अति अग्यान मोह बस भाई। ठानि बड़न्ह सन द्रोह लराई।।
देखहु तुम्ह दुर्गति अस पाई। भाग्यरेख लाँघी नहिं जाई।।
नौ करोड़ सिवलिंग प्रतिष्ठा। करउँ इहाँ अस आई निष्ठा।।
अजहूँ सो संकलप अधूरा। कछु बचि रहेउ करहु तुम्ह पूरा।।
छः करोड़ बिधिवत हौं थापेउँ। सम्मुख लिंग मंत्र बड़ जापेउँ।।
तीन करोड़ अबहुँ रहि गयऊ। एहि बिच महासमर यहु भयऊ।।
अब तोहि देउँ इहै अधिकारा। पूर करहु संकलप हमारा।।

दोहा - **मलिन दीन मति रावन अस कहि मरनासन्न।**
भयउ 'तात अस करब हौं' अस सुनि मनहिं प्रसन्न॥528॥

चौपाई - करिहउँ लिंग थापना भाई। तीन कोटि बल बुद्धि उपाई।।
कीन्ह प्रतिज्ञा तेहि छन तहवाँ। अबहूँ पूर भयउ नहिं इहवाँ।।
निहिचय मोर न अबहुँ डिगाई। तीन कोटि सिवलिंग बनाई।।
लंका पुरी थापिहउँ सुन्दर। जाके चारिउँ ओर समुन्दर।।
थपिहउँ एक साथ तिन कोटी। सिव संकलप बुद्धि नहिं खोटी।।
नहिं ज्ञानी आचार्ज समर्था। पायउँ बीत काल बहु ब्यर्था।।
सैवसास्त्र प्रभु तुम्ह सब जानहु। बिनती एकु मोर अब मानहु।।
सिवसरूप तुम्ह भल सिवग्यानी। परम उदार दास निज मानी।।
होइ आचार्ज पीठ आसीना। पुरवहु मो संकलप अहीना।।

दोहा - **राच्छसराज बिभीषन धरमसील धीमान।**
दीन बचन गननायकहि कहेउ देइ अतिमान॥529॥
करुन बचन सुनि रेनुक 'अति उत्तम यहु काज।'
कहेउ 'अबुहिं पूरन करउँ राखउँ तव बच लाज'॥530॥

शिवशास्त्रविशेषज्ञ शिवज्ञाननिधिर्भवान्।
आचार्यभावमासाद्य मम पूरय वाञ्छितम्।।३१।।

तस्येति वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य धीमतः।
तथेति प्रतिशुश्राव सर्वज्ञो गणनायकः।।३२।।

ततः सन्तुष्टचित्तस्य पौलस्त्यस्येष्टसिद्धये।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां यथाशास्त्रं यथाविधि।
त्रिकोट्याचार्यरूपेण स्थापितं तेन तत्क्षणे।।३३।।

तादृशं तस्य माहात्म्यं समालोक्य विभीषणः।
प्रणनाम मुहुर्भक्त्या पादयोस्तस्य विस्मितः।।३४।।

प्रणतं विनयोपेतं प्रहृष्टं राक्षसेश्वरम्।
अनुगृह्य स्वमाहात्म्याद् रेणुकोऽन्तर्हितोऽभवत्।।३५।।

विभीषणोऽपि हृष्टात्मा रेणुकस्य प्रसादतः।
शिवभक्तिरसासक्तः स्थिरराज्यमपालयत्।।३६।।

रेणुकोऽपि महातेजाः सञ्चरन् क्षितिमण्डले।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च परमाद्वैतभावितः।।३७।।

कांश्चिद् दृष्टिनिपातेन करुणारसवर्षिणा।
अपरानुपदेशेन शिवाद्वैताभिमर्शिना।।३८।।

अन्यांश्च सहवासेन समस्तमलहारिणा।
कृतार्थयन् जनान् सर्वान् कृतिनः पक्वकर्मिणः।।३९।।

दर्शयित्वा निजाधिक्यं शिवदर्शनलालसः।
खण्डयित्वा दुराचारान् पाषण्डान् भिन्नदर्शनान्।।४०।।

चौपाई - भयउ बिभीषन अति संतुष्टा। सिद्ध अवसि अबु मोर अभीष्टा।।
रेनुक तबु अतिसय सुख माना। करन बिभीषन प्रिय मन ठाना।।
जथा सास्त्र सबु बिधि अपनाई। तीन कोटि सिवलिंग सुहाई।।
पलक झपत थल थापेउ ताही। आचारज तिरकोटि निबाही।।
महिमा तस रेनुक कँह देखी। भयउ बिभीषन चकित बिसेषी।।
भगति सहित अभिबादन करहीं। बार बार पद पंकज परहीं।।
प्रनत बिनयजुत भयउ बिभीषन। पूरन काम सो अति प्रसन्न मन।।
निज महिमा कइ तेहि कृतारथ। रेनुक अन्तर्धान जथारथ।।

दोहा - अति प्रसन्न लंकापती रेनुक कृपा सनेह।
संभुभगतिरस लीन होइ पालु राज जस गेह।।531।।

चौपाई - रेनुक महातेज महि लाई। बिचरहिं नित आपुहि मन भाई।।
कबहुँ प्रगट कहुँ जाहिं दुराई। सिवाद्वैत परमारथ पाई।।
काहू कँह भरि नजर निहारी। करुनारस बरसाइ सुखारी।।
सिवाद्वैतमय करि उपदेसा। काहु कृतारथ करहिं गनेसा।।
केहू के निज सन्निधि देहीं। तेहि कर सकल पाप हरि लेहीं।।
सुकृती होइँ कृतारथ देखी। जिन्हके पाक करमफल लेखी।।

दोहा - दुराचार पाखंड अरु भिन्न भिन्न मतबाद।
खंडन करहिं देखाइ निज अधिकाई निरबाद।।532।।

चौपाई - जंत्र मंत्र अरु कला प्रसिद्धा। जे बिरोधि मत थापक सिद्धा।।
निज प्रभाउ तिन्ह दीन्ह हराई। सैवागम सबु थापि थिराई।।
हिरदै रखि अंबिका महेसू। गननायक आयउ निज देसू।।
सिवदरसन इच्छा मन माँहीं। पहुँचेउ कोल्लिपाकिपुर पाहीं।।
तँह सिवभगत सकल जन आई। कीन्ह तासु सम्मान बड़ाई।।
गयउ रेनुकाचार्ज बहोरी। सोमनाथ सिवमंदिर ओरी।।
सिव संमुख ठाढ़ेउ कर जोरी। रेनुक अस्तुति कीन्ह न थोरी।।

दोहा - देखहिं अति बिस्मय करहिं जोगी सबु सिवभक्त।
भक्तिभाव अस्तुति करहिं रेनुक अति अनुरक्त।।533।।

यन्त्रमन्त्रकलासिद्धान् विमतान् सिद्धमण्डलान्।
विजित्य स्वप्रभावेण स्थापयित्वा शिवागमान्।
आजगाम निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरम्।।४१।।

तत्र सम्भावित: सर्वैर्जनै: शिवपरायणै:।
सोमनाथाभिधानस्य शिवस्य प्राप मन्दिरम्।।४२।।

पश्यतां तत्र सर्वेषां भक्तानां शिवयोगिनाम्।
तन्वानो विस्मयं भावैस्तुष्टाव परमेश्वरम्।।४३।।

देव देव जगन्नाथ जगत्कारणकारण।
ब्रह्माविष्णुसुराधीशवन्द्यमानपदाम्बुज।।४४।।

संसारनाटकभ्रान्तिकलानिर्वहणप्रद।
समस्तवेदवेदान्तपरिबोधितवैभव।।४५।।

संसारवैद्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिनिरङ्कुश।
सच्चिदानन्द सर्वस्व परमाकाशविग्रह।।४६।।

समस्तजगदाधारज्योतिर्लिङ्गविजृम्भण।
सदाशिवमुखानेकदिव्यमूर्तिकलाधर।।४७।।

गुणत्रयपदातीत मलत्रयविनाशन।
जगत्त्रयविलासात्मन् श्रुतित्रयविलोचन।।४८।।

पाहि मां परमेशान पाहि मां पार्वतीपते।
त्वदाज्ञया मयैतावत्कालमत्र महीतले।
अचारि भवदुक्तानामागमानां प्रसिद्धये।।४९।।

अत: परं स्वरूपं ते प्राप्तुकामोऽस्मि शङ्कर।
अन्तरं देहि मे किञ्चिदनुकम्पाविशेषत:।।५०।।

छन्द - जय जय सुरनायक जन सुखदायक जगन्नाथ महदेवा।
हे सबु जग कारन हेतु अकारन भव सागर कँह खेवा।।
बंदित पद पंकज तुम्हहि नमत अज बिस्नू सहित सुरेसा।
भ्रम संसृति नाटक कला निबाहक परम नरेस महेसा।।
बोधित ऐस्वर्जा बेद अचर्जा हे बेदान्त असेसा।
हे बइद सयाना भवरुज जाना सक्ति स्वधीन बिसेसा।।
सत् चित आनंदा सकल अमंदा परमाकास सरीरा।
जो जग बिस्तारा तेहि अधारा ज्योतिर्लिंग बिकीरा।।
हे सदासिवादी प्रमुख प्रसादी दिब्यमूर्तिकलाकारा।
हे त्रिगुनातीता जोगि प्रतीता तीनहुँ मलहु निवारा।।
सरगादि बिसाला नरक पताला सृष्टि बिचित्र बनावा।
जो ऋग् यजु सामा बेद ललामा तीनहुँ नयन सुहावा।।

चौपाई - रच्छ रच्छ मोहिं हे परमेस्वर। पार्वती पति संभु महेस्वर।।
आयसु मानि प्रभो ततकाला। धरती पर बिचरेउँ बहुकाला।।
रउरे मुँह आगम जित पाई। किएउँ प्रचार तिन्ह बहुताई।।
खंडन किएउँ बिरुध मतवादा। किएउँ निवारन धरम प्रबादा।।
सैवागम बहुबिध समझायउँ। भरि धरिनी सिवभगत बनायउँ।।
हे संकर सं करहु हमारा। नाउँ जथारथ होउ तिहारा।।
किरपा करि अपनावहु मोंही। सिवसरूप अब चाहउँ ओही।।
प्रभो बुलावहु मोहिं निज पासा। अंतर देहु तनिक अवकासा।।

दोहा - अस कहि रेनुक चुप भयउ गननायक सिवबीर।
तबु सहसा सिवलिंग ते निकसेउ बोल अधीर॥534॥
महानुभाव हे बच्छ अबु आवहु करहु न देर।
राउर भगति प्रसन्न हौं तुम्ह अतिसय प्रिय मेर॥535॥
सुनि बानी सिवलिंग ते बिस्मित भयउ समाज।
दिब्य दुंदुभी नभ बजी गन बरसहिं पुहुराज॥536॥

इत्युक्ते गणनायकेन सहसा लिङ्गात् ततः शाङ्करात्
वत्सागच्छ महानुभाव भवतो भक्त्या प्रसन्नोऽस्म्यहम्।
इत्युच्चैरगदद् वचस्तनुभृतामाश्चर्यमासीत्तदा
दिव्यो दुन्दुभिराननाद गगने पुष्पं ववर्षुर्गणाः।।५१।।

श्रुत्वा लिङ्गाद् वचनमुदितं शाङ्करं सानुकम्पं
संहृष्टात्मा गणपतिरथो ज्योतिषा दीप्यमानः।
जातोत्कण्ठैः परमनुचरैर्योगिभिः स्तूयमानो
ज्योतिर्लिङ्गं परमनुविशत् स्वप्रकाशं तदानीम्।।५२।।

लीने तस्मिन् शाङ्करे स्वप्रकाशे
दिव्याकारे रेणुके सिद्धनाथे।
सर्वो लोको विस्मितो भूत्तदानीं
शैवी भक्तिः सप्रमाणा बभूव।।५३।।

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं श्रीगोप्यचिन्तामणिम्।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां भाक्तिं च मुक्तिं पराम्।।५४।।

ॐ तत्सदिति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
विभीषणाभीष्टवरप्रदानप्रसङ्गो
नामैकविंशः परिच्छेदः समाप्तः ।।२१।।

।।सम्पन्नश्चायं ग्रन्थः।।

चौपाई - सुने बचन सिवलिंग निकासे। जनु घनगर्जन सिखी अकासे।।
यहु बानी संकर कै होई। तेहि बिनु किरपा करै कि कोई।।
गनपति मन प्रसन्न अति भयऊ। आसा जोति सुदीपित ठयऊ।।
अति उत्कंठित अनुचर बृंदा। करहिं प्रसंसा भरि आनंदा।।
रेनुक तबहिं स्वकीय प्रकासा। ज्योतिलिंग प्रबिसेउ अनयासा।।
सिद्धनाथ रेनुक गननायक। दिब्याकार जगत सुखदायक।।
स्वप्रकास सिवलिंग समाना। देखि लोग सबु अचरज माना।।
अद्भुत लीला लखि हरषाने। सैवी भगति प्रमानित माने।।

दोहा - बीरसैव सिद्धान्त यहु बेदागम परमानु।
श्रीजीवेस्वर जोग कँह बिकसित पंकज भानु॥537॥
पावन थल जे छह कहे भास्वर मनि तिन्ह भब्य।
अति उत्तम चिंतामनी गोपनीय कर्तब्य॥538॥
श्रीसिद्धांतासिखामनी महिमाजुत अति पूत।
परम ग्रंथ सिवग्यान कँह बेदागम उद्भूत॥539॥
जो एहि लिखई आपुने अथवा पर लिखवाइ।
सुनइ बिमल मन एकचित अथवा काहु सुनाइ॥540॥
भुक्ति परम सुचि आवई स्वयं साधु तेहि पास।
परम मुक्ति सो पावई जुत श्रद्धा बिस्वास॥541॥
श्रीसिद्धान्तसिखामनी दीपित ग्यान प्रकास।
जो नर करइ परायन लहै मोच्छ अनयास॥542॥

।।श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस मँह इक्कीसवाँ परिच्छेद समाप्त।।

॥वैद्यशिरोमणि पं. गङ्गाप्रसादद्विवेदी के पौत्र,
श्रीमती रामकुमारी देवी एवं श्रीनन्दकिशोरद्विवेदी के पुत्र
तथा आचार्य श्री अमरनाथ पाण्डेय के शिष्य आचार्य प्रभुनाथ द्विवेदी
द्वारा अनूदित ग्रन्थ 'श्रीसिद्धान्तसिखामनिमानस' सम्पन्न॥

।।ॐ नमः शिवाय।।

अथ
॥ पूजा पंजिरी ॥

चौपाई - श्रीसिद्धांतसिखामनि पाई। अवधी छंद रुचिर अपनाई।।
कीन्हेउँ जस मति तस अनुबादा। सुचि रेनुक कुंभज संबादा।।
परम हुलास भगति हिअ आनी। सुमिरि सारदहि बीना पानी।।
स्वामि[1] निदेस परम सुख पावा। सुभ कारज मोरे मन भावा।।
पाइ प्रसाद महेस भवानी। श्रीगुरु[2] महिमा मनहि बखानी।।
हौं प्रभुनाथ द्विवेदी मूढ़ा। ग्रंथ बिसय अति दुर्गम गूढ़ा।।
गुरु किरिपा कारज निरबाहा। मोर इहाँ पुरुषारथ काहा।।
मत्सरहित जे बुध सुधि प्रानी। करिहइँ प्रीति बाल मोहिं जानी।।
कबित बुद्धि नहिं थोरउ ग्याना। साँच कहउँ नहिं कछु अभिमाना।।
पूरब जनम पुन्य फल पाई। कइसहुँ कीन्ह कछुक कबिताई।।
एहि जनम जे साधु सनेही। तिन्ह कर सुकृत सुफल भा एही।।
सबु कर बल भरोस मोंहि आवा। आसिरबाद बड़न्ह कइ पावा।।
तरुन[3] बिनोद[4] सनेह सहाई। एहि मारग पगु दीन्ह बढ़ाई।।
श्रीसिद्धांतसिखामनिमानस। भगति सुधा बरसावन पावस।।
गावइ पढ़इ सुनइ एहि गुनई। जो पुनि सो भवबंध न परई।।

दोहा - **भगति कहाँ श्रद्धा बिना ग्यान न बिनु बिस्वास।**
भजहु भवानी संकरहि पावहु परम प्रकास॥

---

1. श्रीकाशीविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामीजी।
2. श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो. अमरनाथ पाण्डेय जी, पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
3. डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी।
4. डॉ. विनोद राव पाठक।